हि. ६३०

अवधी हिन्दी कहावत कोश

[अवधी की प्रमुख कहावतों का प्रमाणिक कोश]

डा० इन्दु प्रकाश पाण्डेय

काठमाण्डू स्थित भारतीय राजदूतावास
को सौजन्य भाट सप्रेम भेंट
(नेपाल)
With the Compliments of the
Embassy of India in Nepal
Kathmandu

Pandey, Dr. Indu Prakash :
AVADHI HINDI KAHAVAT KOSH
(Dictionary of Avadhi Idioms)
New Delhi 1991.
Rs. 80/-

© डा० इन्दु प्रकाश पाण्डेय

प्रकाशक :
हिन्दी बुक सेन्टर
4/5 बी आसफ अली रोड,
नई दिल्ली 110002.

संशोधित संस्करण : 1991
मूल्य : अस्सी रुपये (80/-)

29223

मुद्रक : जे० आर० प्रिंटर्स, मौजपुर, दिल्ली-53

दो शब्द

आज से लगभग एक दशक पूर्व "अवधी कहावतें" नाम से मैंने एक ग्रन्थ की रचना की थी। 'अवधी कहावतें" प्रकाशित होने पर उसका स्वागत हुआ। पुस्तक इतनी लोक प्रिय और बहुचर्चित हुई कि तीन मास की अल्प अवधि में ही इसका प्रथम संस्करण समाप्त हो गया। उपयोगिता की दृष्टि एवं पुस्तक की माँग इतनी रही कि लेखक के नाते मुझे लेखकीय प्रतियां भी प्राप्त न हो सकी। विषय से सम्बन्धित पाठकों और मित्रों का आग्रह बना रहा कि इसका दूसरा संस्करण प्रकाशित कराया जाये। और इस आग्रह को पूरा करने का संकल्य अत्यन्त व्यस्त होने पर भी मुझे स्वीकार करना पड़ा। पुस्तक को आदि से अन्त तक सम्बधित करके इसे "अवधी कहावत कोश" के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है।

इस ग्रंथ में कुल 563 कहावतें हैं। कोश-पद्धति पर कहावतों को प्रस्तुत किया गया है और उनको अर्थाया गया है। सभी कहावतों के पीछे कथा या कहानियां नहीं होती। विस्तार भय से यहां कोशिश भी नहीं की गयी है कि कथायें दी जायें। कहीं-कहीं भाषा का देशज रुप और ग्रामीण बिम्बीकरण कतिपय "शिष्ट" लोगों को न रुचे। वैसे भी आज का शिष्ट हिन्दी समाज अथवा लेखक मुहावरों और कहावतों का उपयोग करता भी कहां है ? अखबारनवीसियों की बनावटी और सतही भाषा का वह जैसे आदी हो गया है कि उसे अपनी बोली ही बिसर गयी है। यदि अश्लीलता पतनकारी हो सकती है, तो कपटलज्जा स्वास्थ्य के लिए घातक। आवश्यकता तो इस बात की हैं कि समस्त लोक साहित्य को यथावत एकत्र किया जाये और वैज्ञानिक दृष्टि से व्याख्यायित किया जाये। श्लील और अश्लील समझ कर पहले से ही सामग्री को भ्रष्ट न कर दिया जाये। आजादी के 42 साल बाद भी हमारा लोक साहित्य आज तक संचित रुप में कहीं भी उपलब्ध नहीं है। तब फिर अध्ययन किस का और कैसे किया जाये ?

इस दृष्टि से विशेषतः यह संकलन उपयोगी सिद्ध होगा, ऐसा मेरा विश्वास है। मुझे अत्यधिक खुशी होगी अगर कोई इस काम को आगे बढ़ाये और वैज्ञानिक रूप प्रदान करे।

"अवधी कहावत कोश" के प्रकाशन की योजना को "हिन्दी बुक सेन्टर" के संचालक श्री अमरनाथ जी सहर्ष स्वीकार कर इस उपयोगी और संग्रणीय कृति को जिज्ञासु शोध कर्त्ताओं तथा पाठकों के समक्ष उपलब्ध कराया इसके लिये मैं उनका अभारी हूँ।

भारतीय संस्कृति संस्थान,
फ्रांकफुर्ट, पश्चिमी जर्मनी
1-1-1991,

डॉ० इन्दुप्रकाश पाण्डेय

दिवंगत अनुज
प्रेमप्रकाश पाण्डेय
की स्मृति में

भूमिका

कहावत शब्द को ठीक से समझने के लिए उसकी व्युत्पत्ति आवश्यक नही हैं। शिक्षित अशिक्षित समान रूप से कहावत के अर्थ को ठीक से समझते हैं और कहावतों का उचित संदर्भों में प्रयोग भी करते हैं। अशिक्षित समाज में कहावतों का अधिक प्रयोग किया जाता है। अस्तु कहावतों का प्रचलन जितना ग्रामीण समाज में होता है उतना नागरिक समाज में नहीं। अफ्रीका में कुछ समुदायों में कहावतों का प्रयोग पंचायतों में नजीरों के रूप में किया जाता है। कहावतों को प्रमाण रूप में प्रस्तुत करके पक्ष-विपक्ष में निर्णय दिया जाता है। शिक्षित समाज में कहावतों को उतना अधिक महत्व प्राप्त नहीं है। साहित्यिक भाषा में शैली के परिष्कार की दृष्टि से कहावतों का अभाव मिलेगा। यह एक आधुनिक प्रवृत्ति है जो कहावतों के प्रयोग को पुरानापन मानती है। साधारण बातचीत में भी गाँव के लोग जितना कहावतों का प्रयोग करते देखे जाते हैं उतना नगर के लोग नहीं। इतना ही नही कहावतों में अब कुछ ग्रामीणता की गन्ध आने लगी है अतः उन्हें तिरस्कार की दृष्टि से भी देखा जाता है। परिष्कृत सोच वाला व्यक्ति अपने कथन की पुष्टि के लिए कहावतों का प्रयोग न करके कुछ अन्य साहित्यिक और कुछ विद्वानों के कथनों के उदाहरण प्रस्तुत करता है। लम्बे उदाहरण उसे पसन्द हैं परन्तु कहावतों से परहेज। फिर भी कहावतों का विशेष महत्व है और प्रायः अनेक नागरिकों एवं विद्वानों की संक्षिप्त सूक्तियाँ कहावतों का रूप धारण करती चली जाती हैं। कहावतों के उद्भव का एक महत्त्वपूर्ण स्रोत साहित्य भी है। गोस्वामी तुलसीदास की सैकड़ों चौपाइयों का प्रयोग कहावतों के रूप में आज भी होता है।

समाज शास्त्रीय दृष्टि से इस विषय का अच्छा अध्ययन किया जाना चाहिए कि अवध क्षेत्र की ग्रामीण जनता किस सीमा तक कहावतों के अनुसार आचरण करती है। यह भी अध्ययन का रोचक विषय हो सकता है कि कहावतों से इस क्षेत्र के लोगों की भाषा और अभिव्यंजन शैली कहाँ तक प्रभावित है, और आधुनिक नागरिक प्रभाव के संदर्भ में कहावतों का कितना विकास या ह्रास हुआ है। रेडियो के संरक्षणात्मक दृष्टि-कोण से कहावतों की सुरक्षा कहाँ तक हो सकी है। लोक संस्कृति को शिक्षित समाज की स्वीकृति प्राप्त होने पर दो महत्वपूर्ण परिणाम होते है: एक तो यह कि ग्रामीण समाज अपने सांस्कृतिक रूपों को समुचित महत्त्व देने लगता है और उसके संरक्षण का प्रयत्न करता है और दूसरे उसी आधार पर नए-नए ढंग से वर्तमान रूपों में संशोधन एवं परिवर्धन करने लगता है। भोजपुरी प्रदेश में ये दोनों स्थितियाँ द्रष्टव्य है और वहाँ नवीन लोक साहित्य एवं संस्कृति का विकास होता जा रहा है। अवधी क्षेत्र की ग्रामीण जनता में अभी अपने सांस्कृतिक रूपों के प्रति वह आत्मविश्वास नहीं पैदा हो सका है जो

लोक संस्कृति के संरक्षण एवं विकास के लिए आवश्यक है। साहित्यिक हिन्दी और नागरिक संस्कृति के विशेष प्रभाव के कारण लोक सांस्कृतिक परम्परा क्षीण होती जा रही है। इस विषय का समुचित अध्ययन होना चाहिए और इस पृष्ठभूमि में कहावतों के महत्व पर समुचित विचार करना चाहिए। यदि ग्रामीण जनता में अपनी प्रादेशिक संस्कृति के प्रति उचित सम्मान एवं स्वाभिमान न होगा तो निश्चित ही हीन भावना के कारण प्रादेशिक संस्कृति और उसकी परम्परा का ह्रास होगा।

अवध क्षेत्र में, ध्यान देने की बात है, कि कुछ नगरों की संख्या अपेक्षाकृत अधिक है जिसका प्रभाव ग्रामीण जनता पर बराबर पड़ता रहता है अतः अवध क्षेत्र की ग्रामीण जनता निरन्तर नागरिक एवं औद्योगिक विकास के प्रभाव में अपनी प्रादेशिक परम्पराओं को भूलती जा रही है। दूसरी बात जो ध्यान देने की है, वह यह कि अवध क्षेत्र ने अपनी प्रादेशिक भावना को त्यागकर हिन्दी के व्यापक क्षेत्र के साथ अपनी भावना को समान्वत कर दिया है। भोजपुरी बोलने वाले जिस प्रादेशिक स्वाभिमान के साथ आपस में भोजपुरी बोलते हैं उसी स्वाभिमान और स्वाभाविकता के साथ अवध क्षेत्र के व्यक्ति अवधी नहीं बोलते। 'पक्की' या खड़ी बोली के हित में अवध क्षेत्र ने अपेक्षाकृत अधिक समर्पण कर दिया है, जिससे अवध क्षेत्र की ग्रामीण जनता में अवधी के प्रति वांछनीय सम्मान का भाव नहीं रह गया है, इसलिए अवधी लोक साहित्य में नागरिकता और खड़ी बोली की साहित्यिकता का विशेष प्रभाव पड़ा है। अतः कहावतों के प्रयोग में भी काफी कमी आ गई है।

कहावतों के उद्भव एवं विकास के सम्बन्ध में कोई एक निश्चित सिद्धांत नहीं बनाया जा सकता। मानव जीवन के कुछ कार्यकलाप एवं गतिविधियाँ ऐसा सामान्य रूप धारण कर लेती हैं जिनके आधार पर कुछ साधारणीकृत सत्यों का उद्भव होता है। इन्हीं साधारणीकृत व्यापारों की स्वीकृति एवं कथन कहावतों का मूलाधार है। कहावतों में केवल ऐसे सत्यों की स्वीकृति मात्र ही नहीं होती बल्कि ऐसे वांछनीय तत्वों का कथन भी होता है जिन्हें समाज मूल्यवान मानता है। अतः कहावतें जहाँ एक ओर यथार्थवादी जीवन के निरीक्षण पर आधारित साधारणीकृत सत्यों की अभिव्यक्तियाँ हैं, वहाँ वे वांछनीय सामाजिक मूल्यों की आदर्शवादी उद्भावनाएँ भी हैं। सामाजिक जीवन का मापदण्ड भी हैं। सांस्कृतिक मूल्यों की अभिव्यक्ति कहावतों में मिलती है और उपदेश भी जिनके सहारे किसी समाज एवं व्यक्ति का आचरण निर्धारित होता है। अस्तु, प्रत्येक समाज में मोटे तौर पर दो प्रकार की कहावतें प्रचलित होती हैं। एक तो वे कहावतें जो व्यापक एवं सार्वभौतिक होती हैं जिनके समानान्तर रूप संसार के सभी देशों में प्राप्त होते हैं। जैसे : 'जल्द काम शैतान का', 'एक डाड़ दुई कूकुर', 'जैसे देसु तैस भेसु' इत्यादि। दूसरे ऐसी कहावतें होती हैं जो किसी देश विशेष की संस्कृति से सम्बन्ध रखती है या देश विशेष की भौगोलिक सीमाओं में ही सार्थक होती हैं। जैसे, मौसम सम्बन्धी कहावतें जो प्रस्तुत संकलन में दी गई हैं वे उत्तर भारत के, विशेष रूप

से अवध क्षेत्र के लिए सार्थक हैं, कुछ ऐसी कहावतें जिनका सम्बन्ध स्त्रियों से है या परिवार से है वे हमारे देश के बाहर कोई अर्थ नहीं रखतीं। सारांश यह कि स्थिति एवं अनुभवों की सामान्यता कहावतों की आधारशिला है। प्रत्येक भाषा में कुछ ऐसी कहावतें होती हैं जो सर्वक्षेत्रीय सर्वजनीन एवं सर्वशलीन होती हैं और कुछ कहावतें एक देशीय, क्षेत्रीय एवं सामुदायिक होती हैं। जिस प्रकार मानवीय अनुभव सामान्य एवं विशेष होते हैं। उसी प्रकार उन पर आधारित कहावतें भी व्यापक एवं संकुचित होती हैं। प्रत्येक कहावत की उपादेयता उसके उचित संदर्भ में ही प्रकट हो सकती है।

समाजशास्त्रीय दृष्टि से में यहाँ पर एक और महत्वपूर्ण एवं रोचक वर्गीकरण प्रस्तुत करना चाहता हूँ। इस ग्रन्थ में सकलित कहावतों के आधार पर मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि कुछ कहावतों का सामान्य रूप से समाज के सभी लोग प्रयोग करते हैं परन्तु कुछ ऐसी कहावतें हैं जिन्हें केवल स्त्रियाँ ही उपयोग में लाती हैं और साथ ही कुछ ऐसी भी कहावतें हैं जिनका प्रयोग वे कभी नहीं करतीं। इसी प्रकार कुछ कहावतें केवल पुरुष वर्ग तक ही सीमित हैं। अतः इस दृष्टि से कहावतों को तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है : 1. सामान्य, 2. केवल स्त्रियों द्वारा प्रयुक्त; 3. केवल पुरुषों द्वारा प्रयुक्त। सामान्य कहावतों के उदाहरण देने की आवश्यकता नहीं है। अतः यहाँ पर कुछ दूसरे तथा तीसरे वर्ग की कहावतों पर विचार करना ठीक होगा।

केवल स्त्रियों द्वारा काम में लाई जाने वाली कहावतें वे हैं जिनका क्षेत्र घर है और घर के कामकाज हैं। उदाहरण के लिए कुछ कहावतें दृष्टव्य है : 'ऐसी खेती करै मोर भतरा एक दिन खाय तीन दिन अंतरा। इस कहावत में पत्नी अपने असफल, निखट्टू पति पर व्यंग्य करती है। स्पष्ट है कि इस कहावत का प्रयोग पुरुष वर्ग द्वारा साधारणतः नहीं किया जाएगा। 'फूहड़ उठी दुपहरी सोय, हाथ बढ़निया दीन्हेसि रोय,' 'फूहड़ 'पोतैं चुल्हा कि मटकावें कूल्हा, 'बरु न बिआहु छटी खातिर धान कूटै,' 'सगी सासु का सासु न कैहैं, धोबइन जीजी पैयाँ लागौ,' 'सासु ते बैस नग्र ते नाता, ऐसि बहुरियारु देय विद्याता,' इत्यादि। ये सभी कहावतें घरेलू काम-धन्धों एव सम्बन्धों पर आधारित हैं जिनका सीधा सम्पर्क पुरुष वर्ग से नहीं है। ऐसा कोई नियम या निषेध नहीं है कि पुरुष वर्ग इन कहावतों का प्रयोग नहीं कर सकते परन्तु उन्हें इनके प्रयोग का अवसर नहीं मिलता। मतलब यह है कि इन कहावतों का सम्बन्ध स्त्रियों के जीवन एवं कार्य-कलापों से है जिनका क्षेत्र घर की चारदीवारी है—चौपाल नहीं।

इसी प्रकार कुछ कहावतें केवल पुरुष वर्ग तक ही सीमित हैं, जिन्हें स्त्रियाँ कभी नहीं कहतीं। इनका सम्बन्ध केवल पुरुष वर्ग के अनुभवों से है। 'अपनि मराई केहि ते कही पेट मसोसा दै दै रही,' 'गाँड़ि चियाँ असि हाथिन का बयाना, इन दोनों कहावतों का सम्बन्ध समलैंगिग क्रिया से है पुरुष वर्ग की मानसिक विकृत की ओर सकेत करती हैं। शालीनता एवं भद्रता के कारण स्त्रियां इन कहावतों का प्रयोग नहीं करती यद्यपि इन कहावतों की व्यंजना उनके लिए भी उपयोगी हो सकती है। इसी प्रकार 'अनाड़ी

चोदैया बुरि कै खराबी' कहावत का प्रयोग भी साधारणतः स्त्रियां नहीं करतीं। स्वाभाविक है कि स्त्रियां अपनी निन्दा वाली कहावतें नहीं कहतीं। जैसे—'शूद्र गवांर ढोल पशु नारी ई सब ताड़न की अधिकारी', 'तिरिया चरितर जानै न कोई खसम मारि कै सत्ती होई', इत्यादि कहावतें पुरुषों द्वारा ही कही जाती हैं।

इस दृष्टि से अध्ययन करने पर कुछ और भी कहावतें ऐसी मिलेंगी जिनका क्षेत्र प्रारम्भ से ही सीमित था या कालान्तर में परम्परा के कारण सीमित हो गया है। किसी भी सांस्कृतिक रूप का अध्ययन उसके संदर्भ में ही किया जाना चाहिए। उसके आदर्श रूप पर भी समुचित विचार करना चाहिए परन्तु वर्तमान स्थिति पर ध्यान रखते हुए विचार करना अधिक उपयोगी होगा। अतः यहाँ पर एक ऐसी स्थिति की ओर संकेत किया गया है जो कुछ सामाजिक तत्वों को स्पष्ट करती हैं। वस्तुतः कहावतों के आधार पर सामाजिक आदर्शों एवं मान्यताओं को समझा जा सकता है और उनके वर्तमान आचरण की व्याख्या की जा सकती है।

बहुत-सी कहावतें अनेक कारणों से भुला दी जाती हैं और बहुत-सी नई कहावतें नए संदर्भों के उपयुक्त प्रकट हो जाती है। एक बार कहावतों के संकलन एवं समुचित अध्ययन के बाद विकास की इस प्रक्रिया पर भी ध्यान दिया जा सकता है। सैद्धन्तिक वर्गीकरण एवं अध्ययन की अपेक्षा वस्तुपरक ये दृष्टि से विचार करना अधिक आवश्यक होगा। इसीलिए अब कुछ अन्य प्रकार की कहावतों पर भी संक्षेप में विचार कर लेना समीचीन होगा।

कुछ कहावतें ऐसी होती हैं जिनमें जातियों पर कटाक्षपूर्ण एवं विनोदपूर्ण टीकाएँ होती हैं। हमारे देश में तो अनेक जातियां एवं उपजातियां हैं और प्रायः इन जातियां में एक-दूसरे के प्रति विद्वेष की भावना भी रहती हैं। तुर्कों के प्रति अविश्वास की भावना ऐतिहासिक स्थितियों पर आधारित है। यहां पर तुर्कों से तात्पर्य मुसलमानों से हैं जिन्होंने अनेक बार भारत पर हमले किए और भारत पर कई शताब्दियों तक शासन किया। हिन्दुओं को इन शताब्दियों में अनेक प्रकार की कष्टपूर्ण स्थितियों से गुजरना पड़ा जिसके परिणाम स्वरूप उन्होंने यह कहना शुरू किया "चाहे कूकुर पिये सुरुक्का तऊ न करू विश्वास तुरूक का।" इसी प्रकार गंगापुत्रों के बारे में कहावत है कि 'गंगा पुत्रम कभी न मित्रम्, जब मित्रम त दगीदगम'। गंगापुत्र कभी न सच्चा जो सच्चा तो हरामी का बच्चा। जातिगत भेदभाव में ऊँच-नीच की भावना भी प्रमुख है। एक उदाहरण प्रस्तुत है : 'चिरइन माँजस मुर्गी-मुर्गा कैथन माँ सकसेना।' कायस्थों में सक्सेनीओं को सबसे नीचा स्थान दिया गया है। कुछ अन्य उदाहरण भी बड़े रोचक हैं—'अम्बा नींबू बानिया गरू दावै ते देयं। कायथ कौआ करहटा मुर्दा हू ते लेंय।' इसमें बनिया का लोभ और कायस्थ की निर्ममता प्रकट है। 'आए कनागत फूले कांस, बाह्मन उछलै नौ-नौ बांस।' इसमें ब्राह्मण का मजाक बनाया गया है। "कबहूँ पाँड़े घिड पूरी कबहूं कटक उपास' पांड़े समुदाय पर कटाक्ष हैं। 'गगरी में दाना सूद उताना।"

शूद्र वर्ग के लोगों की निन्दा की गई है। 'पीपर पात खराखर डोलैं धकरे कै बिटिया अंकरे कै बोलै।' कान्यकुब्ज ब्राह्मणों में आकर (कुलीन) और धांकर दो वर्ग होते हैं। धांकर जो नीचे होते हैं उनकी लड़की बढ़कर बात करे यह अंकर कान्यकुब्जों को अच्छा नहीं लगता। जातिगत विद्वेष ऊँचनीच, भेदभाव सम्बन्धी तमाम कहावतें हैं। इनके अतिरिक्त अनेक ऐसे छोटी-छोटी कविताएं हैं जिनके द्वारा एक-दूसरे का मजाक बनाया जाता है। इसी प्रकार क्षेत्र एवं गावों से सम्बन्धित कहावतें या कविताएँ होती है जिनका संकलन यहां पर नहीं किया गया है।

कहावतों का सम्बन्ध ग्रामीण जीवन से अधिक है, इसलिए स्वाभाविक है कि कृषि संबंधी बहुत-सी कहावतें हों और क्योंकि कृषि का सीधा सम्बन्ध मौसम से है इसलिए मौसम पर भी अनेक कहावतें हैं जिनमें से कुछ को इस ग्रंथ में संकलित किया गया है। पं० रामनरेश त्रिपाठी ने ग्राम साहित्य भाग 2 में ऐसी तमाम कहावतों को प्रस्तुत किया है। उनमें अधिकाँश कहावतें घाघ और भड्डरी के नाम से प्रस्तुत की गई हैं। यहां पर घाघ और भड्डरी की कतियम ऐसी कहावतों को ही प्रस्तुत किया गया है जो अवधी क्षेत्र में प्रचलित हैं। क्षेत्र की मौखिक परम्परा में प्रचलित कहावतों को ही मैंने महत्व देना उचित समझा हैं। कहावतों के उद्भव एवं विकास के अध्ययन में घाघ एवं भड्डरी जैसे अनुभवी एवं बुद्धिमान व्यक्तियों का बड़ा हाथ होता है परन्तु इन लोगों की सभी उक्तियां न तो प्रचलित हो पाती हैं और न कहावत का काम ही देती हैं। सक्रिय मौखिक परम्परा ही लोक साहित्य की प्रमुख लक्षण हैं।

हमारे देश में ही नहीं बल्कि समस्त संसार में खेती के लिए वर्षा का विशेष महत्व है। अन्य सिंचाई के साधनों के अभाव में वर्षा का महत्व और भी बढ़ जाता है। अतः वर्षा सम्बन्धी कहावतें प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। अनेक आधारों पर खेती के लिए आवश्यक वर्षा के सम्बन्ध में भविष्य वाणियाँ की गई हैं, जिनमें से अधिकांश विश्वास मात्र हैं। वर्षा के सम्बन्ध में भविष्यवाणी का कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है। केवल बादलों के रंग और वायु की दिशा है। फिर भी जनता में ये विश्वास व्यापक रूप से मान्य हैं खेती के लिए अनुकूल तथा प्रतिकूल मौसमों और हवाओं के लिए भविष्य-वाणियां इन कहावतों में की गई हैं। इन कहावतों का आधार निरीक्षणगत अनुभव हैं जो हमेशा सही नहीं सिद्ध होता। फिर भी हवा के रूख से कुछ उत्प्रेक्षाएं अवश्य की जा सकती हैं जिनके प्रति कहावतों में विश्वास व्यक्त किया गया है।

उत्तर भारत में पुरवा हवा से ही अधिकांश पानी बरसता है क्योंकि बंगाल की खाड़ी से उठने वाले मानसूनों से ही यहाँ पानी बरसता है। अतः आषाढ़, सावन, भादों में जब मानसून आयेंगे तो पुरवा हवा के जरिये ही आयेंगे। इसीलिए कहावत है कि, 'आम्बाझोर चलै पुरवाई तौ जान्यो बरखारितु आई।' 'चमकै पच्छिम उत्तर ओर, तौ जान्यो बरखा है जोर।' बादल घिर कर उत्तर पश्चिम से चमकने लगे तो वर्षा की संभावना बढ़ जाती है। ऐसी सामान्य मान्यता है कि जेठ महीने में भयंकर गर्मी होनी

चाहिए नहीं तो वर्षा कम होगी। 'जै दिन जेठ चलै पुरवाई तै दिन सावन सूखा जाई।' अर्थात् पुरवा हवा चलने से जेठ में अधिक गर्मी नहीं हो सकती क्योंकि पुरवा हवा में नमी होती है। इस नम हवा के कारण जेठ के फल फीके हो जाते हैं। खरबूजों तरबूजों की मिठास चली जाती है। कुछ तरकारियाँ इस हवा में खराब हो जाती हैं। पुरवा हवा का प्रभाव नमी के कारण फल-फूल पर विपरीत पड़ता है। पुरवा हवा में गर्भाधान का भी निषेध है। "जो फागुन मास बहै पुरवाई तो जान्यों गोहूँ गेरुइ धाई।" अर्थात् फाल्गुन महीने में पुरवा हवा के चल जाने से गेहूँ में पाई लग जायेगी क्योंकि हवा में नमी के कारण गेहूँ पूरी तरह नहीं सूख पाते। इसीलिए मृगषिरा नक्षत्र जो ज्येष्ठ महीने में होता है तपे तो वर्षा ठीक होगी। कहावत है 'तपै मिगसिरा जोय तौ बरखा पूरन होय।' दिन में बादल आये और रात में निकल जायें अर्थात तारे चमकने लगें तो वर्षा नहीं होगी। कहावत है : दिन का बादर राति तरैयां, ना जानै प्रभु करह करैया। 'दिन मां बादर राति माँ ओस तौ जानौ बरखा सौ-कोस।' अगर आकाश लाल पीला होने लगे तो भी वर्षा की आशा नहीं करनी चाहिए। 'लाल पियर जो होय अकास तौ नाहीं बरखा कै आस।' परन्तु साथ ही यह कहावत भी है कि 'लाल भरैं ताल।' इसी प्रकार वर्षा संबंधी अनेक कहावतें हैं। अन्य ऋतुओं से संबंध रखने वाली कहावतें भी हैं जिनका प्रभाव खेती पर होता है। 'हथिया पूछि डोलावै घर बैठे गोहूँ आवे', उदित अगस्त पंथ जल सोखा', चीत के बरखे तीनि जायँ मोथी, मास, डावर', इत्यादि।

कृषि संबंधी कुछ कहावतों का पालन पूर्ण विश्वास के साथ किया जाता है। कारण भी स्पष्ट है—कृषि संबंधी अनुमान एवं निष्कर्ष अटकलों पर नहीं अनुभवों पर आधारित हैं। इस क्षेत्र में अनुभव के आधार पर लोगों को निश्चयात्मक जानकारी है, अतः कहावतों में अधिक सार है। कुछ कहावतें प्रस्तुत हैं—पाँचै आम, पचीसै महुआ तीस बरस माँ अमिली का कहुआ। पाँच वर्ष में आम, पच्चीस में महुआ और तीस में इमली फलने लगती है, जो ठीक है। 'पाँसि परै तो खेतु नाहीं तो कूड़ा रेतु।' अर्थात् बिना खाद के खेत में धूल ही धूल होगी और कुछ भी न पैदा होगा। खेत में अच्छी उपज के लिए अच्छी खाद पर्याप्त मात्रा में आवश्यक है। 'बिड़रे जोत पुराने बिया तेहि कै खेती छिया छिया।' जिसके खेत दूर-दूर जोते गये हों, बीज पुराना हो तो खेती अच्छी नहीं होगी। गेहूं के खेत के लिए खेत की मिट्टी को मैदा की तरह मुलायम और चने के लिए ढेले रखने चाहिए। 'मैदे गोहूँ ढेलै चना।' किसान को खेत जोतने बोने में देर नहीं करनी चाहिए। जिसके खेत अगहर होते हैं उसकी खेती अच्छी होती है, जो पिछड़ जाता है उसके खेत में कुछ भी नहीं होता। कहावत है "आगे कै खेती आगे आगे, पीछे कै खेती भागिन जागै।' 'अगहर खेती, अगहर भार कहैं धाद्य ते कबहूँ न हार।' वह किसान भाग्यवान समझा जाता है जिसके धान बालों के बोझ से गिर जायें और वह अभागा जिसके गेहूँ गिरे। 'धान गिरै सुभागे का गेहूँ गिरै अभागे का।' पछुवा हवा में, जिसमें नमी नहीं होती, ओसाने के लिए अच्छी होती है क्योंकि दाना पूरी तरह से सूख

जाता है। यथा पछुआ हवा ओसावै, घाघ कहैं द्युन कबौंन लागै।' इस प्रकार कृषि संबंधी अनेक कहावतें इस सकलन में प्रस्तुत है।

कुछ कहावतें पुरानी परम्पराओं और विश्वासों से उत्पन्न हो जाती हैं। जितना ही समाज प्राचीन होगा उतनी ही अधिक परम्पराएं एवं रीति रिवाज संचित हो जाते हैं, जिनके समर्थन के लिए कहावतें भी निर्मित हो जाती हैं। पुरोहितों द्वारा संचालित समाज में और भी अधिक ऐसी धारणाएँ घर कर लेती हैं जिनका पालन धार्मिक कृत्य बन जाता है। अनेक प्रकार के शकुन-विचारों का जन्म होता है जिन पर ध्यान दिये बिना एक कदम भी चलना मुश्किल हो जाता है। हमारे समाज में इस तरह के विश्वासों की प्रचुरता है। सुर विचार करने वाले लोगों की भी कमी नहीं है। दायें सुर में भोजन करना बाएँ में पाखाने जाना, किस दिशा की ओर पैर करके सोना, किस किस दिन यात्रा करना और किस दिन न करना इत्यादि अनेक महत्त्वपूर्ण विश्वास हैं। इनसे संबंध रखने वाली कतिपय कहावतों को प्रस्तुत किया जाता है। नकटे, काने आदमी के देखने से अपशकुन होता है। "अपनि नाक कटाय दूसरे का असगुन करै" और 'तीन कोस तक मिलै जो काना लौट पड़े सो बड़ा सयाना।' नये कपड़े कब पहनने चाहिए इसका भी विचार है। अथा, कपड़ा पहनै तीनि बारबुद्ध, बृहस्पति, शुक्रवार, अटके बिटके इतवार।' यात्रा के समय दृगशूल, भद्रा इत्यादि पर बहुत विचार किया जाता है। बुधवार को लड़की अपनी ससुराल के लिए कभी बिदा नहीं की जायेगी। बुधवार खाली दिन माना जाता है। यात्रा के संबंध में निम्न कहावत महत्वपूर्ण है: मंगल बुध उत्तर दिसि कालू, सोम सनीचर पूरब न चालू, जो बेंफ्फे (बृहस्पतिवार) का दक्खिन जाय, बिना गुनाहे पनहीं खाय।' एक पक्ष में यदि चन्द्र और सूर्य ग्रहण दोनों पड़ें तो समझना चाहिए कि राजा मरेगा या साहूकार। 'एक पाख दुई गहना, राजा मरै कि सहना।' प्रयाग का तीर्थ रूप में बड़ा महत्व है परन्तु ऐसे भाग्य कम ही लोगों के होते हैं जिन्हें प्रयागराज के दर्शन प्राप्त हों; अस्तु कहावत है—'कुकुरी परागै चलीं।' 'चींटिउ चली पराग नहाय।' इस प्रकार की विधि निषेध संबंधी सैकड़ो कहावतें हैं जिनके अनुसार ग्रामीण समाज आज भी संचालित होता है।

समाज नीति संबंधी कहावतों की संख्या भी बहुत अधिक है सांस्कृतिक एवं धार्मिक मूल्यों के अनुपालन के लिए और सामाजिक जीवन में सफलता एवं प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए ऐसे अनेक नीति वाक्य प्रस्तुत किये गये हैं जिनसे व्यक्तियों को मार्ग-दर्शन प्राप्त होता है। गिरधर, वृन्द, रहीम, तुलसीदास इत्यादि कवियों ने नीति संबंधी हजारों दोहे और कुण्डलियों की रचना की है, जिनको कहावतों के रूप में उद्धृत किया जाता है। हिन्दी का नीति साहित्य बहुत समृद्ध है। डा० भोलानाथ तिवारी ने इस विषय को लेकर बहुत ही सुन्दर प्रबंध प्रस्तुत किया है इस प्रकार की कहावतों में उपदेश होते हैं जो समाज के आदर्शवादी दृष्टिकोण को प्रस्तुत करते हैं और कुछ नीति वाक्य बहुत ही यथार्थवादी होते हैं जो व्यक्ति को सावधान करने के लिए बड़ी उपयोगी सलाह

देते हैं। कुछ उदाहरणों से इस कथन की पुष्टि हो जायेगी: 'अब पछताए का होत है जब चिड़िया चुग गईं खेत।' काम बिगड़ने पर पछताने से कोई लाभ नहीं। पहले से ही सावधान रहना चाहिए। कुछ और यथार्थवादी नीति कहावतें देखिये—"आठ गाँव के चौधरी बारह गाँव के राव, अपने काम न आवें तो ऐसी-तैसी माँ जायें।" "आलस नींद किसाने नासै, चोरै नासे खाँसी आँखिन कीचर बेसवा नासै बाबै नासै दासी।" खेतों की श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए कहा गया है 'उत्तम खेती मध्यम बान निखिद चाकरी भीख निदान।' 'खाय के परि रहै मारि कै टरि रहै।' 'खेती पाती, बीनती ओ घोड़े के तंग अपने हाथ सँवारिये लाख लोग होंय संग।' 'समरथ का नाहिं दोस गोसाईं।' तुलसीदास जी ने प्रेम के आदर्श को भी निम्न चौपाई में प्रस्तुत किया है: 'जापर जाकर सत्य सनेहू सोतेहि मिलत न कछु सन्देहू।' तुलसीदास जी ने आदर्श प्रेम से बड़ी ही यथार्थवादी भाषा में विश्वास के साथ रखा है। उपदेशात्मक यथार्थवादी कहावतों की संख्या आदर्शवादी कहावतों की अपेक्षा अधिक है जिससे ग्रामीण जनता के वस्तुवादी दृष्टिकोण का परिचय मिलता है।

स्वास्थ संबंधी कहावतों का भी अभाव नहीं है। अनेक ऐसे उक्तियाँ प्रस्तुत की गई हैं जिनमें रोगों से बचने के उपाय बताये गये हैं। "खाय कै मूतै सूते बायँ ता घर बैद कबौं न जायें" भोजन करके पेशाब करना चाहिए जिससे 'किडनी' पर अवांछनीय दबाव न पड़े और बाईं करवट लेटना चाहिए जिससे 'लीवर' पर दबाव न पड़े और पित्त का बहाव उचित मात्रा में प्राप्त होता रहे। इस कहावत में शरीर रचना और रोग निदान पर काफी ध्यान दिया गया है। 'कम खाय गम खाय हाकिम हकीम के पास कबहु न जाय।' इस नीति वाक्य में कम खाने की सलाह दी गई है। किस महीने किस चीज से शरीर रोगी हो सकता है इस पर भी विचार प्रस्तुत किया गया है। पूरे बारहों महीने का विवरण है। यथा "चैते गुरु, बैसाखे तेलु जेठे पंथु असाढ़ै बेलु, सावन सतुआ भादों दही, कुआँर करैला, कातिक मही, अगहन जीरा पूसै धना, माघै मिसिरी फागुन चना, ई बारह जो देय बचाय कोहि घर बैद कबौ न जाय।' 'भूखे बेर अघाने गांड़ा ता ऊपर मूरी का डाँड़ा' यह कहावत भी इसी के अन्तर्गत आती है क्योंकि इसमें बताया गया है कि भूखे पेट बेर, भरे पेट पर गन्ना और तत्पश्चात मूली खाना चाहिए। खाज के बारे में कहावत की घोषणा है कि इसका कोई इलाज नहीं हैं वह कार्तिक मास में आती है और अपने आप आषाढ़ में चली जाती है। यथा—'आवै कार्तिक जाय अषाढ़ कहा करै गंधक हरतार।' इसी प्रकार अनेक ऐसी लोक मान्यताएँ हैं जो स्वास्थ संबंधी हैं। स्वच्छता को शुचिता से समन्वित करके स्वास्थ्य संबंधी अनेक आवश्यक बातों को धार्मिक दृष्टि से आवश्यक बना दिया गया है। इसी प्रकार भोजन संबंधी तमाम विस्तार दिये गये हैं जिनका स्वास्थ्य से सीधा संबध है। यहाँ पर कुछ ही कहावतों को उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया गया है। यह संकलन पूर्णता का दावा नहीं करता।

इतिहास संबंधी कहावतें सभी भाषाओं में बहुत कम होती हैं। फिर भारतीय भाषाओं में तो और भी कम है क्योंकि हमारे देश में इतिहास पर बहुत कम ध्यान दिया

गया है। दो-चार नामों का उल्लेख तो हो सकता है परन्तु उस समय की वास्तविक स्थिति को ध्यान में रखकर कहावतों को नहीं प्रचारित किया गया। एक दो उदाहरण प्रस्तुत हैं : 'कहाँ राजा भोज कहाँ भोजवा तेली।' इस कहावत में राजा भोज का नाम लिया गया है और उसके वैभव की ओर संकेत किया गया है। 'रामराज्य' शब्द का प्रयोग भी कहावत के रूप में होता है जिससे राज्य की समृद्धि, निष्पक्ष न्याय एवं समानता का परिचय प्राप्त होता है। महात्मा गाँधी ने इस शब्द का खूब प्रचार किया। 'इक लाख पूत सवा लाख नाती तेहि रावन घर दिया न बाती।' इस कहावत का प्रयोग भी अहंकारी व्यक्ति के लिए किया जाता है जिसमें संकेत छिपा है कि रावण की भाँति सभी का अहंकार समाप्त हो जायेगा। विभीषण का नाम भी देश द्रोह और भ्रातृ द्रोह के लिए प्रयुक्त होता है।

कुछ नारे भी प्रायः कहावतों का रूप धारण कर लेते हैं। अवधी क्षेत्र में ऐसे कुछ नारों का मुझे ज्ञान नहीं हे परन्तु पंडित नेहरू द्वारा प्रचारित नारा 'आराम हराम है' सभी जगह प्रचलित हो गया है। कुछ कहावतें मशहूर लोक कथाओं के विषयों के शीर्षकों के आधार पर भी बन जाती है : जैसे 'धान बेचारे भले कूहे खाये चले' या 'ढपोर संख' 'कान छोड़ कनपटी माँ धुनधुन' इत्यादि। ये कहावतें, नारों के पुराने पड़ जाने या कथाओं के अप्रचलित हो जाने पर, समाप्त भी हो जाती हैं। इसी प्रकार अन्य स्रोतों से अनेक नई कहावतों की रचना होती रहती है और पुरानी कहावतों का ह्रास होता रहता है।

कहावतों में प्रायः परिवर्तन भी होते रहते हैं। विशेष रूप से कुछ अश्लील शब्दों वाली कहावतों के अश्लील शब्दों के स्थान पर अन्य योंग्य शब्दों को रख दिया जाता है। जैसे कहावत है : 'तेली का तेल जले मसालची की 'गांड़ि' जले।' इस कहावत के अश्लील शब्द के स्थान पर 'पेट' शब्द का भी इस्तेमाल किया जाता है। जिन कहावतों में इस प्रकार के संशोधन संभव नहीं वहाँ कहावत वैसी ही बनी रहती है। यहाँ यह बात भी ध्यान देने की है कि अश्लीलता और श्लीलता के सामाजिक मानदण्ड बदलते रहते हैं। प्रायः ग्रामीण समाज अपनी बहुत-सी चीजों को अभद्र मानकर छोड़ देता है क्योंकि उसके समक्ष नागरिक भद्रता के मानदण्ड प्रस्तुत हो गये हैं। इस संकलन में कुछ ऐसी कहावतों को प्रस्तुत किया गया है जिन्हें भद्र समाज में अनुचित माना जाता है। परन्तु यह अश्लीलता समाजशास्त्रीय और मनोवैज्ञानिक अध्ययन के लिए बहुत ही सहायक सिद्ध होती है। अभी हाल में गालियों पर एक थीसिस स्वीकृत हो चुकी है। पाश्चात्य देशों में Slangs के कोश बनाये गये हैं। तहियों में लिखे साहित्य का भी प्रकाशन हो रहा हैं।

यहीं आगे बढ़कर कहावतों की भाषा एवं रचनाशैली पर भी विचार किया जा सकता है। प्रायः कहावतें बड़ी ही चुस्त और प्रभावकारी भाषा में होती हैं। संक्षिप्तता और सांकेतिकता उनका प्रमुख गुण होता है। कहावत की भाषा में गठन और

निश्चितता होती है। जहाँ छन्द के रूप में प्रस्तुत नही की जाती वहाँ भी उसकी भाषा में काव्यात्मक गति एवं तीव्रता होती है। उनमें अलंकारों का भी समुचित प्रयोग किया जाता है। भाषा संबंधी चमत्कार भी प्रायः देखने में आते हैं : एक ही क्रिया से चार-चार कर्त्ताओं का समाधान किया जाता है। रूपकों और उपमाओं का प्रयोग होता ही रहता है। तुक और छंद का आवरण भी प्रायः मिल ही जाता है। कुछ कहावतें कथोपकथन के रूप में भी मिलती है। इन सभी विशेषताओं के उदाहरण प्रस्तुत संकलन में मिल जायेंगे। इसीलिए अनेक कहावतों को यथावत साहित्यिक कृतियों में सम्मान का स्थान मिल जाता है और अनेक साहित्यिक सूक्तियों का प्रयोग कहावतों के रूप में होने लगता है। तुलसीदास जी की अनेक पक्तियों का प्रयोग कहावतों के रूप में होता है। मैंने प्रस्तुत संकलन में तुलसीदास जी की कुछ ही चौपाइयों के उदाहरण दिये हैं जब कि हजारों ऐसी सूक्तियों का प्रयोग ग्रामीण समाज में कहावतों के रूप में होता है। यही कहावतों का साहित्यिक पक्ष है जिस पर विस्तार से विचार करने की आवश्यकता है।

नाम और गुण विपर्यय सम्बन्धी कहावतों की अधिकता ने मेरा ध्यान विशेष रूप से खींचा है जिसकी ओर मैं यहां संकेत करना चाहता हूं। 'नाम श्यामसुन्दर मुँह कूकुरि का अस', नाम निरमलदास दैहीं मै दादैदादु', नाम पहाड़ सिंह देहि चियां असि,' नाम पृथ्वीपाल मुँह बिम्बौ भरि नहीं,' नाम फूल सिंह गाँड़ि चैला असि,' नाम सुगन्धा पादै का बिश्णु,' संस्कृत में पापक वाली कहानी भी इसी तथ्य की ओर संकेत करती है जिसमें इस विपर्यय का समाधान किया गया है। परन्तु मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि आज तक किसी का समाधान नहीं हुआ। आज भी सभी 'यथानामः ततः गुणः' की अपेक्षा करते हैं और जब उनकी अपेक्षापूर्ण नहीं होती तो निराक्ष होकर इस प्रकार की कहावत का प्रयोग करते हैं। नाम के अनुसार गुणों का होना असंभव है फिर भी मानव स्वभाव उसी की अपेक्षा करता है। दूसरे की आलोचना और निन्दा करने का यह बड़ा सरल साधन है। हम क्षणभर में किसी को भी इस कहावत से धराशायी कर सकते हैं। हमारे स्वभाव में चढ़ाऊपरी की भावना बड़ी प्रबल होती है परन्तु संघर्ष करने की शक्ति उसी मात्रा में नहीं होती। अतः शीघ्र विजय प्राप्त करने का यह अच्छा तरीका है कि वह अपने नामानुसार गुणी न होने के कारण हमारी लांछना सहे।

अस्तु, कहावत वह रैडीमेड', तैयार, चुटीली उक्ति है जो स्थिति विशेष में वक्ता के कथन की पुष्टि करती है और उसके कथन में प्रभावोत्पादकता पैदा कर देती है। जिस बात को वह प्रभावशाली ढँग से नही कर पा रहा था कहावत की सहायता से कह लेता है और उसके माध्यम से अपने कथन को सही सिद्ध करने का यत्न करता है। ये कहावतें अनुभवी व्यक्तियों के विवेकपूर्ण सामान्य सत्यों की स्वीकृतियाँ एवं उद्भावनाएँ हैं जो समय की कसोटी पर खरी उतरी हैं। सभी कहावतों से निरीक्षण शक्ति, विवेक-शील अनुभव और समाज की विलक्षणता प्रकट होती है। कहावतों से समाज विशेष की सांस्कृतिक मान्यताओं का भी पता लगता है। अतः कहावतों के आधार पर किसी समाज के सम्पूर्ण ढांचे का पुनःनिर्माण किया जा सकता है।

मैंने इस संक्षिप्त भूमिका में कहावत के कुछ महत्वपूर्ण तत्वों की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट करने का प्रयत्न किया है। इन सभी तत्वों का पृथक्-पृथक् विस्तार से अध्ययन किया जा सकता है।

मैं अपने अवधी क्षेत्र का आभारी हूँ जहाँ से मुझे इन कहावतों में संचित ज्ञान राशि प्राप्त हुई।

वर्तमान पता
बलिनिरस्ट्रासे 18
6231 श्वालबाख
पश्चिमी जर्मनी

इन्दु प्रकाश पाण्डेय
ग्राम शिवपूरी
(गेगासों)
जि० रायबरेली

(अ)

अंगनू करें बजाजी,
नौ गज लावें दस गज ब्याचें
तहूँ न घर के राजी।

अंगनू खिलाड़ी लड़का है। घर का काम काज नहीं करता और न किसी प्रकार की सहायता करता है। माँ-बाप तथा अन्य लोग उसके इस स्वभाव से असन्तुष्ट हैं। अर्थात् अँगनू निकम्मा समझा जाने लगा है। अतः जब वह कुछ काम करता भी है तो घर वालों को विश्वास नहीं होता। वह घर के हित के लिए नौ गज कपड़े से दस गज कपड़े के दाम वसूल करता है परन्तु फिर भी घर के लोग सन्तुष्ट नहीं होते। एक बार बदनाम हो जाने पर व्यक्ति उसके लांछन से शीघ्र मुक्त नहीं होता। ऐसी स्थिति में अँगनू के प्रति सहानुभूति रखने वाले कहते हैं कि अँगनू कमाऊ हो गया है परन्तु उसके घर वालों को सन्तोष नहीं। ऐसी ही समान स्थितियों में यह कहावत कही जाती है। १।

अंधरन माँ कनऊ राजा।

बिल्कुल असमर्थ लोगों की तुलना में थोड़ी सामर्थ्य रखने वाले व्यक्ति विशेष महत्व पा जाते हैं। जिन्हें बिल्कुल नहीं दिखायी देता उनकी तुलना में काने अच्छे हैं। दोनों आँखों के अन्धे की अपेक्षा एक आँख का अन्धा अच्छा है। परन्तु श्रेष्ठ नहीं हो सकता। अतः जब हम किसी की महत्ता या श्रेष्ठता को स्वीकार नहीं करना चाहते तो इसी प्रकार का मन्तव्य प्रकट करते हैं। इस कहावत में काने को राजा तो मान लिया है; परन्तु अन्धों का। इस प्रकार उसकी श्रेष्ठता को स्वीकार करते हुए भी उसकी अश्रेष्ठता ही व्यक्त की जाती है। पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष के कारण हम स्वभावतः किसी अन्य की श्रेष्ठता स्वीकार नहीं कर पाते। और जब कोई किसी श्रेष्ठता का बखान करता है तब हम कह देते हैं 'अन्धों में काना राजा।' श्रेष्ठतम व्यक्ति को भी हम इसी श्रेणी में ढकेल सकते हैं। २।

अँधरी पीसैं कुकुरी खायँ।
मारैं फंका उड़ि उड़ि जायँ॥

अँधरी यहाँ पर बेवकूफ और बेशऊर लोगों या स्त्रियों के लिए प्रयुक्त हुआ है। इस कहावत में लापरवाही और बेशऊरी पर कटाक्ष किया गया है। ये गृहस्थी की वे औरतें हैं जो लापरवाही के साथ काम करती हैं और घर के बनने-बिगड़ने की चिन्ता नहीं करतीं। घर में खास तौर से सासुओं को ऐसे बहुत से अवसर मिलते हैं जब वे बहुओं की लापरवाही, बेशऊरी और अल्हड़ता को देख कर चिन्तित हो उठती हैं। उन्हें ऐसा महसूस होता है कि ये बहुएँ घर-गृहस्थी चौपट कर देंगी क्योंकि उन्हें घर की चिन्ता नहीं है। सासु ऐसी स्थितियों में इन बहुओं को अंधी समझती है जिनके किये हुए का लाभ बाहरी दुष्ट लोग उठायेंगे जो ऐसी घात में ही रहते हैं। और जो बाहर वाले लोग फायदा नहीं भी उठाते तो भी इन बहुओं के काम ढंग ऐसे हैं कि बरबादी अधिक होती है। इस कहावत में सासु का चिन्तायुक्त दृष्टिकोण व्यक्त हुआ है। यह कहावत ऐसे ही अवसरों पर प्रायः प्रयुक्त होती है। ३।

अँधरे के आगे रोवँ।
अपनेओ दीदा खोवँ॥

यह एक सामान्य सत्य है जो बहुत ही सीधे-सादे ढंग से व्यक्त किया गया है। जिस व्यक्ति में हमारे प्रति सहानुभूति नहीं है उसके समक्ष अपनी पीड़ा का कथन अन्धे के समक्ष रोने के समान है क्योंकि वह हमारे आँसू देख नहीं सकता और हमारी पीड़ा का अनुमान नहीं लगा सकता। ऐसे व्यक्ति के समक्ष रोना व्यर्थ ही नहीं अपनी आँखों के लिए पीड़ादायक भी है। रहीम ने इसी प्रकार की स्थिति के आधार पर निम्नलिखित दोहे में और भी अधिक निराशावादी भावना व्यक्त की है: 'रहिमन निज मनकी व्यथा मन ही राखो गोय। सुनि अठिलैहैं लोग सब बाँटि न लैहैं कोय॥' इस कहावत में इतनी निराशा नहीं है क्योंकि केवल उसी व्यक्ति के समक्ष अपना दुखड़ा रोना व्यर्थ है, जिसमें हमारे प्रति हमदर्दी नहीं, जो हमारे दुखदर्द के प्रति अन्धा है। यह एक प्रकार का नीति वाक्य है। ४।

अधरे के हाथ बटेर।

यह स्पष्टतः एक व्यंग्योक्ति है। जब किसी व्यक्ति को कोई दुर्लभ वस्तु मिल जाती है जिसके लिए वह अयोग्य है, एवं असमर्थ है तब यह कहावत कही जाती है। परन्तु यदि ऐसा ही होता तो यह कहावत व्यंग्य न बनती क्योंकि तब

वह केवल सत्य का उद्घाटन करती। किसी के योग्य न होने पर भी उसे कुछ मिल जाता है तो यह मौके या भाग्य की ही बात है; और अक्सर पानेवाला भी स्वीकार करता है कि संयोगवश उसे यह प्राप्ति हुई है। परन्तु यह कहावत उस समय भी कही जाती है जब योग्य व्यक्ति को उसकी योग्यता के कारण कुछ प्राप्त होती है; परन्तु हम उसकी योग्यता को स्वीकार नहीं करना चाहते हैं। जब हम उसकी प्राप्ति या उपलब्धि का श्रेय उसे नहीं देना चाहते तब हम कहते हैं कि अन्धे के हाथ बटेर लग गयी है। यही कटाक्ष, या व्यंग्य है। ५।

अँटका बनिया देय उधार।

इस कहावत में मनुष्य के स्वार्थी स्वभाव पर कटाक्ष किया गया है। बनिया स्वार्थ और लोभ का प्रतिनिधि माना गया है। वह लालची है और तब तक कोई चीज नहीं देता जब तक उसका काम चलता रहता है। काम अटक जाने पर स्वार्थ सिद्ध होने पर वह देता है—वह भी उधार। दे नहीं डालता। इस कहावत में वणिकवृत्ति पर तो कटाक्ष है और बनिया जाति पर लांछन भी है; परन्तु इसका संबंध अधिक व्यापक है। यह सभी ऐसे व्यक्तियों पर लागू होती है जो अपनी स्वार्थ-पूर्ति के लिए दूसरों का काम करते हैं। अगर उनका काम रुका न हो तो वे दूसरे की चिन्ता नहीं करेंगे। ऐसे लोग सर्वत्र हैं। बनिया तो यहाँ प्रतीक है। यह हमारे जीवन का एक कटु सत्य है कि व्यापारी लोग अपनी धनलिप्सा में मानवीय व्यवहार को प्रायः भूल जाते हैं। और जो परोपकार करते भी हैं तो वह भी विघ्न निवारण के उद्देश्य से तथा आर्थिक धनोपार्जन के लिए। इसीलिए इस कहावत में जन मानस ने बनिये को प्रतीक माना है। ६।

अकिल ते बोकरी नौ बच्चा देति है।

इस कहावत से प्रतीत होता है कि भारतीय जनमानस पूर्णतः भाग्यवादी नहीं है। वह विधाता के विधान में भी हस्तक्षेप कर अपने लिए अनुकूलता प्राप्त करने की योजना में है। पूर्ण प्राकृतिक कार्य जिसमें मनुष्य बिल्कुल हस्तक्षेप नहीं कर सकता, बच्चा पैदा होने का कार्य है। परन्तु बकरी के अधिक बच्चे हों इसके लिए वह प्रयत्नशील है। इससे स्पष्ट है कि भारतीय भाग्यवादी उन्हीं मामलों में है जिनमें उसका यत्न काम नहीं देता और वहीं भाग्यवादी है जहाँ वह असमर्थ है। वह बुद्धि प्रयोग से अपना हित सिद्ध करना चाहता है। अतः 'लोटस-ईटर्स' के नाम से बदनाम होने पर भी और 'दास मलूका' की अजगर की उपाधि को स्वीकार करते हुए भी वह सक्रिय है, प्रयत्नशील है। भारतीय जागृत है और समयानुसार एवं आवश्यकतानुसार वह बुद्धिवादी भी है। इस कहावत में बुद्धि

प्रयोग पर बल दिया गया है और उसकी उपयोगिता व्यक्त की गयी है। बुद्धू व्यक्ति पर यह कहावत लागू होती है। ७।

अकिल न मिलै उधार।
प्रेम न बिकै बजार॥

यह बड़ी ही सुन्दर कहावत है। अक्ल या बुद्धि उधार या माँगे नहीं मिलती और प्रेम का क्रय-विक्रय नहीं होता। अर्थात अपनी अकल से काम लो, उसी पर निर्भर रहो, उसी का विकास करो। काम पड़ने पर तुम्हारी ही अक्ल तुम्हारे काम आयेगी। उधार माँगने से काम नहीं चलेगा। इसी पर एक और कहावत याद आ गयी 'सिखये पूत दरबारैं जायँ।' अर्थात दरबार में कुछ निश्चित बातों के सीख कर जाने से काम नहीं चलता। उसके लिए स्वतंत्र बुद्धि की आवश्यकता होती है, जिसका क्रमशः विकास किया जाता है। आत्मनिर्भरता बौद्धिक क्षेत्र में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। वैसे ही प्रेम भी कोई वस्तु नहीं है जिसे पैसे देकर बाजार से खरीदा जा सकता हो। ये दोनों ऐसे मानवीय सूक्ष्म तत्व हैं जिनके लिए व्यक्ति को अपने भीतर जाना होगा और उन्हें अपने आभ्यंतर में ही पाना होगा। दूसरे पर निर्भर होकर न हम बुद्धिमान हो सकते हैं और न प्रेम पा सकते हैं। ८।

अकिल बुधि हरी।
कहौ किच किच करी॥

यह कहावत वक्ता की विनम्रता व्यक्त करती है। वक्ता विनम्रता में कहता है कि उसकी भावना या बुद्धि हर गयी है—मारी गयी है। इस समय कुछ बोलना व्यर्थ किच किच करना है। हो सकता है कि वक्ता किसी मानसिक क्लेश या अन्य कठिनाई के कारण किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया हो और ऐसी स्थिति में समझदारी की बात सोच पाना असंभव पाता हो। इसलिए बोलना व्यर्थ समझता हो। यह कहावत कम है; उक्ति अधिक है जो वक्ता की मानसिक स्थिति को प्रकट करती है। इसमें कहावत का वह तत्व विद्यमान नहीं है जो कहावत को 'यूनीवर्सल' या सामान्य उपयोगी बना देता है। हो सकता है कि किन्हीं कारणों से वक्ता ऊबा हुआ हो और कुछ बोलना पसन्द न करता हो। कभी दूसरा व्यक्ति भी बेकार में बकझक करने वाले पर इस कहावत का प्रयोग कर देता है। ९।

अकेला चना भाड़ न फोरी।

इस कहावत में संगठन के महत्व को व्यक्त किया गया है। भड़भूंजे के भाड़ में पड़ कर एक चना कितनी ही जोर की आवाज क्यों न करे, भाड़ पर कोई असर नहीं होता। एक व्यक्ति कितनी ही अच्छा क्यों न हो और कितना ही शक्तिशाली क्यों न हो पर जब तक उसका साथ देने वाले और लोग एकत्र नहीं हो जाते तब तक कुछ अधिक महत्वपूर्ण कार्य सम्पन्न नहीं हो सकता। भाड़ जैसे अजेय शत्रु को एक तो क्या करोड़ों चने मिलकर नहीं फोड़ सकते। परन्तु फिर भी इस कहावत से यह आशा व्यक्त होती है कि संगठन होने पर यह भी संभव हो सकता है। हाँ, अकेले नहीं होगा। यह एक अलंकारिक उक्ति है जिससे सहयोग और संगठन को शक्ति की ओर संकेत मिलता है। साथ ही अकेले व्यक्ति की निर्बलता पर भी संकेत किया गया है। १०।

अगहर खेती अगहर मार।
घाघ कहैं तौ कबहूँ न हार॥

अवधी क्षेत्र में घाघ की बहुत सी कहावतें प्रचलित हैं। पर इस कहावत में दो बातों को एक साथ रखा गया है। खेती और मारपीट के मामलों में पहल करने वाले लोग कभी नहीं हारते। साधारणतः यह ठीक है कि लड़ाई झगड़े में पहल करने की नीति को सर्वत्र श्रेय दिया गया है। अंग्रेजी में "offense is the best defence" कहा जाता है। खेती के मामले में हमेशा अगहर होना लाभदायक नहीं होता। फिर भी खेती में भी आगे या पहले बौनी करने से लाभ की सम्भावना अधिक रहती है। ११।

अजगर करै न चाकरी पंछी करै न काम।
दास मलूका कहि गए सबके दाता राम॥

यह मलूकदास, निर्गुण सन्त, का दोहा है जिसमें निष्क्रिय कर्म को महत्व दिया गया है। आलस्य के समर्थन में इस दोहे का प्रयोग किया जाता है। परन्तु अधिकतर उस समय कहा जाता है कि जब किसी आलसी पर व्यंग्य करना होता है। हमारे देश की संयुक्त परिवार प्रथा के अन्तर्गत कुछ आलसी और कामचोर लोगों की परिवरिश होती रहती है। यह दोहा उन्हीं पर व्यंग्य रूप है। इस दोहे से सामान्य भारतीय मनोवृत्ति प्रकट नहीं होती क्योंकि इस दोहे का प्रयोग आलस्य के विरोध में व्यंग्यात्मक ढंग से किया जाता है। कभी-कभी राम या भगवान पर निर्भरता के पक्ष में भी इस दोहे का प्रयोग किया जाता है कि सबके दाता राम

हैं। पशु पक्षियों का निर्वाह आखिर वही तो कर रहा है। परन्तु आलस्य को प्रोत्साहन देने के लिए दोहे का प्रयोग नहीं होता। भारतीय भाग्यवादी वृत्ति की आलोचना करने के लिए इस दोहे को आधार बनाया जाता है। कुछ आलसी लोग अपने लिए उसका उपयोग करते हैं। १२।

अढ़ाई चाउर अलगं चुरति हैं।

साथ मिलकर काम न करने वाले पर इस कहावत के द्वारा आक्षेप किया जाता है। ध्यान देने की बात है कि चावलों के कम होने पर उनका ठीक से पकना असम्भव है। अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति का प्रत्येक कार्य अलग-अलग करना अव्यवहारिक है। इस अव्यवहारिक पृथकता को प्रोत्साहन न देने के लिए इस कहावत का प्रयोग किया जाता है। इस कहावत की यही ध्वनि है कि मिल कर काम करो। जो मनमानी, अपने ढंग से, सबसे पृथक होकर कुछ करता है, उस पर इन शब्दों में आक्षेप किया जाता है। मिलकर कार्य करने की व्यवहारिक सीख इन शब्दों में व्यक्त हुई है। कृषि प्रधान देश में और संयुक्त परिवार वाले समाज में इस कहावत की पूर्ण सार्थकता है। जबकि योरोप के लिए इस कहावत में कोई विशेष सार नहीं है क्योंकि अढ़ाई चावल अलग पकाने की उनकी आदत है। १३।

अधाधुंध दरबार माँ गदहा पंजीरी खायं।

जिस राज्य या घर में समुचित व्यवस्था के अभाव में बिगाड़ उत्पन्न हो जाता है तो इस कहावत का प्रयोग किया जाता है। पँजीरी सत्यनारायण कथा में प्रसाद रूप में बँटती है जिसके अधिकारी केवल भक्त होते हैं; परन्तु दुर्व्यवस्था के कारण गधे जैसे अनाधिकारी प्राणी भी पँजीरी का भोग करते हैं। व्यवस्था बिगड़ने पर सबसे कम अक्लमंद लोग भी फायदा उठाते हैं। अंधाधुन्ध होने पर गधे जैसे मूर्खों की भी बन आती है और वे भी मजे उड़ाते हैं। घर की व्यवस्था बिगड़ने पर प्रायः लोग इस कहावत का उपयोग करते हैं। इस कहावत में उस व्यक्ति की निन्दा छिपी है जो घर की व्यवस्था का संचालक है। व्यंग्य रूप में व्यवस्था के बिगाड़ने वाले पर कटाक्ष है। राज्य के शासन के सम्बन्ध में भी ऐसा कहा जाता है। १४।

अनाड़ी चोदंया बुरि कै खराबी।

अश्लील कहावत है परन्तु इसकी चिन्ता किये बिना लोग इसका काफी प्रयोग करते हैं। किसी नौसिखिए आदमी द्वारा किसी काम के बिगाड़ने पर यह कहावत

कही जाती है। शिक्षित एवं सम्भ्रान्त स्त्रियों द्वारा यह कहावत नहीं कही जाती। अधिकांश अपढ़ युवकों द्वारा इस कहावत का प्रयोग होता है। फूहड़ एवं ग्रामीण स्त्रियाँ भी इस कहावत का प्रयोग करती हैं। हमारे देश में माँ-बहन की अशोभन गालियाँ प्रचलित हैं जिन्हें मुक्त कण्ठ से दोहराया जाता है। उस तुलना में यह कहावत तो हलको है और एक तथ्य को स्पष्ट करती है। मानव जीवन में सुरुचि के साथ-साथ काफी कुरुचि भी है। १५।

अपन हाथ जगन्नाथ।

जब कोई व्यक्ति अपने आपको सर्वाधिकारी मान कर किसी की भी चीज का बिना अनुमति के मनमाना उपयोग करने लगता है तो इस कहावत का प्रयोग किया जाता है। तात्पर्य यह है कि अपना हाथ जगन्नाथ अर्थात् सारे संसार का मालिक है। जब बच्चे कोई चीज मनमाने ढंग से निकाल लेते हैं तो माताएँ कहावत का प्रयोग करती हैं। स्वेच्छाचारिता की भी इस कहावत के द्वारा आलोचना की जाती है। सम्भव है कि इस कहावत का कुछ सम्बन्ध जगन्नाथ मन्दिर के प्रसाद वितरण से हो। १६।

अपना पदनी उरदन दोसु।

उर्द की बनी हुई चीजें अधिक खाने से पेट में अधिक वायु उत्पन्न हो जाती है और खाने वाला व्यक्ति अधिक पादता है। परन्तु ठीक नियम से भोजन इत्यादि न करने वाले, या अपच इत्यादि के कारण भी कुछ लोग बहुत पादते हैं और अपनी इस बुराई को छिपाने के लिए उर्द को दोषी ठहराते हैं। अपने दोषों, या बुराइयों का कारण किसी अन्य को बताते हैं, तब इस कहावत का प्रयोग किया जाता है। पाद की गन्दी बात के कारण इसे बहुत लोग नहीं भी कहते। परन्तु घरों में औरतें इस कहावत का प्रायः उपयोग करती हैं क्योंकि घर के अनेक लोग किसी न किसी अवसर पर अपने दोषों को छिपाने के लिए किसी अन्य पर दोषारोपण करते रहते हैं। हमारी यह विशेषता है कि हम अपनी भूल या कमी को स्वीकार नहीं करते। अपने दोषों को छिपाने के लिए किसी अन्य को दोषी ठहराना कहावत का मूल लक्ष्य है। १७।

अपनि अपनि डफली अपन अपन रागु।

मिलकर काम न करने की प्रवृत्ति पर यह उक्ति कही जाती है। प्रत्येक व्यक्ति जब मनमाने ढंग से कार्य करने लगता है, व्यवस्था, एकरूपता एवं सहयोग

की चिन्ता नहीं करता तो समझदार लोग इस कहावत से ऐसे लोगों का तिरस्कार करते हैं। संगीत में ताल-स्वर की एकलयता को नितान्त आवश्यकता होती है। बिना इस लय के संगीत उत्पन्न ही नहीं हो सकता। और जब डफली पर ताल अलग होगा और राग अलग होगा तो संगीत बनेगा ही नहीं। प्रायः कोरस में ऐसा हो जाता है कि ताल और स्वर में बड़ा अन्तर हो जाता है। सबके स्वर पृथक् हो जाते हैं। जीवन की सुचारुता भी उसकी सामान्य एकलयता से उत्पन्न होती है। तभी समाज में व्यवस्था हो सकती है। 'अपनि अपनि डफली अपन अपन रागु' होने से जीवन की व्यवस्था एवं सुचारुता भंग हो जाती है। अतः मिलकर एक व्यवस्था के अनुसार कार्य करना श्रेयस्कर है। यही ध्वनि है। १८।

अपनि नाक कटाय दुसरे का असुगन करैं।

ईर्ष्यालु व्यक्ति अपनी दुष्टता का परिचय अपना अहित करके भी देते हैं। दूसरे का अहित ही उनका परम इष्ट है। उसके लिए वे अपने नुकसान की चिन्ता नहीं करते। अपनी नाक कटा कर दूसरे का अपशकुन करने को तैयार होते हैं। जिस प्रकार अधिकांश लोगों को पर निन्दा में ब्रह्मानन्द प्राप्त होता है उसी प्रकार कुछ लोगों को दूसरे के अहित में आनन्द प्राप्त होता है। इस वृत्ति के मूल में ईर्ष्या है जो इस प्रकार का घृणित कार्य कराती है। परन्तु ऐसे व्यक्तियों की कमी नहीं होती क्योंकि स्वभावतः मनुष्य दूसरे की उन्नति के प्रति ईर्ष्यालु होता है। (आज कल पाकिस्तान भारत का असगुन करने के लिए अपनी नाक कटाने दौड़ रहा है। इस बात का उसे तनिक भी विचार नहीं है कि भारत पर चीनी आक्रमण पाकिस्तान के लिए कम घातक नहीं है। परन्तु अभी तो भारत का अहित उसकी मूल चिन्ता है।) किसी अच्छे कार्य के प्रारम्भ के समय ऐसे विकलांग व्यक्ति अपशकुन माने जाते हैं। १९।

अपनि मराई केहि ते कहै।
पेट मसोसा दै दै रहै॥

अपनी भूल और पराजय मनुष्य किससे कहे? अपने मन में सोचता विसूरता रहता है और पछताता रहता है। यह कहावत भोंड़ी है पर एक सत्य को स्पष्ट शब्दों में व्यक्त करती है। इस कहावत में शब्द 'मराई' दृष्टव्य है क्योंकि यह गाँड़ मराने का संकेत है। मराना पराजय की भावना व्यक्त करता है। मराना बुरा समझा जाता है; मारना नहीं क्योंकि उसमें विजय की भावना है। मराने में अपमान की भावना है। अपने इस अपमान का व्यक्ति इजहार नहीं करना चाहता

परन्तु उसका सन्ताप उसे बेचैन करता रहता है। इस कहावत में यह भाव भी है कि यह अपमानजनक स्थिति उसकी स्वयं की पैदा की हुई है। पहले उसने परिणाम के बारे में विचार नहीं किया और अब अपमानजनक स्थिति के उत्पन्न हो जाने पर उसे क्लेश हो रहा है। इस कहावत में 'होमोसेक्सुऐलिटी' की ओर संकेत है, जिसे सामाजिक दृष्टि से बुरा माना गया है। २०।

अपनी ही पगिया ते नियाँओ कै लेओ।

अपनी ही स्थति के अनुभव के आधार पर न्याय करने की माँग इस कहावत में व्यक्त की गयी है। तात्पर्य यह है कि परिस्थिति विशेष के विषय में अधिक सोच-विचार की आवश्यकता नहीं है। आप भी ऐसी स्थिति में पड़ चुके हैं और सभी इस प्रकार की परिस्थितियों में कभी न कभी पड़ जाते हैं। यह जीवन है जो विषमताओं से पूर्ण है। न्याय करते समय विचार करना चाहिए कि ऐसी स्थिति में वह स्वयं भी पड़ सकता है। और यदि पड़ जाये तो किस प्रकार का न्याय चाहेगा। स्पष्ट है कि व्यक्ति यहाँ पर सहानुभूतिपूर्ण न्याय की माँग कर रहा है और निर्णय के सारे अधिकार उसी पर छोड़ रहा है। पगिया की ओर संकेत सामाजिक सम्मान की दृष्टि से किया गया है। सजा मिलने पर जो सामाजिक अपमान होगा, उसका ध्यान अपनी पगड़ी या इज्जत की ओर ध्यान देने पर समझ सके। सहानुभूतिपूर्ण न्याय की माँग इस कहावत में है। २१।

अब पछताये का होत है जब चिड़ियाँ चुंग गईं खेतु।

काम बिगड़ जाने पर पछताने से क्या होता है। पश्चाताप से काम बनता नहीं। जब मनुष्य कुछ कर सकता था जिससे दुखपूर्ण स्थिति उत्पन्न न हो, परन्तु तब ध्यान नहीं दिया। बाद में बिगड़ जाने पर पछताने से बिगड़ा काम नहीं बनता। अगर खेत की रखवाली करता तो चिड़िया खेत न चुग पातीं, नुकसान न होता। परन्तु तब तो कुछ न किया जब आवश्यक था अब खेत चुग जाने पर पश्चाताप से कोई लाभ नहीं। इस कहावत में समय पर काम करने की बड़ी अच्छी सीख है। किसानों का इससे बड़ा नुकसान और क्या हो सकता है कि उनका खेत चुग जाय ? यदि ऐसे महत्वपूर्ण कार्य के प्रति वे बाहोश और सजग नहीं रह सकते तो पछताना ही पड़ेगा और ऐसे पछताने से कोई लाभ नहीं होगा। २२।

अम्बा नीम्बू बानिया गरु दाबे रसु देयं।
कायथ, कौआ, करहटा, मुर्दा हूँ ते लेयं॥

यह कहावत किसी कवि की उक्ति है। यह अन्य ग्रामीण कहावतों की भाँति सरल और सीधी नहीं है क्योंकि इसमें अनेक अनुभवों को एक विचार में पिरोया गया है। इसमें ग्राम्य साहित्यिकता है; और इसका प्रयोग भी पढ़े-लिखे और अनुभवी लोग ही करते हैं। प्रथम पंक्ति में एक सत्य को व्यक्त किया गया है कि बिना दबाये स्वार्थ सिद्ध नहीं होता जिस प्रकार बिना दाबे आम, नीबू से रस नहीं प्राप्त होता उसी प्रकार बनिया से द्रव्य। दूसरी पंक्ति में दृष्टान्त है : कायस्थ, कौआ, मुर्दा-घाट के डोम से, जो मरे हुए से भी अपना हक वसूल कर लेते हैं। तात्पर्य यह है कि कठोर होकर मनुष्य इस जीवन में अपने स्वार्थों की सिद्धि करता है। कुछ जाति के लोगों पर कटाक्ष स्पष्ट है। २३।

अरहरि की टटिया, औ गुजराती ताला।

इस कहावत में व्यंग्य और परिहास है। जब साधारण स्थिति का मनुष्य कुछ विशेष बनने के यत्न में कुछ असाधारण करता है तो लोग उसका मजाक उड़ाते हैं। एक गरीब आदमी जो झोपड़ी में रहता है, अपनी झोपड़ी के दरवाजे में ताला लगाता है, तो एक हास्यास्पद स्थिति ही पैदा करता है। पहली बात तो यह है कि वह गरीब है। उसके पास ऐसा कुछ भी नहीं है जिसकी हिफाजत के लिए ताला लगाने की जरूरत हो। दूसरी बात ध्यान देने की है कि टटिया ही इतनी कमजोर है कि उसे तोड़ा जा सकता है। अरहर को टटिया से कोई हिफाजत नहीं हो सकती। साधारण वर्षा और धूप से कुछ बचत भले हो हो जाय परन्तु चोर से बचाव नहीं हो सकता। चोर ताला न तोड़ कर टटिया के किसी कोने से प्रवेश कर सकता है और चोरी कर सकता है। अस्तु, सुरक्षा सम्बन्धी यह प्रयत्न मूर्खतापूर्ण है। इस कहावत में दिखावा या प्रदर्शन के भाव पर भी परिहास है, क्योंकि गुजराती ताला उस गरीब का प्रदर्शन है कि वह गरीब नहीं। अशोभन प्रदर्शन और मूर्खतापूर्ण सुरक्षा के प्रयत्न पर यह अच्छा व्यंग्य है। २४।

अहिरिन साथ गड़रियौ माते।

अहीरों की मूर्खता अथवा भोलेपन पर काफी परिहास मिलता है। 'अहिर-भोंग बरगदे माँ लासा। अहिरिन पादै उठै तमासा।' 'कौऊन न मिलै तो अहिर ते बतलाय।' इत्यादि उक्तियों के प्रति सामान्य धारणा अभिव्यक्त हैं। ये भोले लोग बड़ी जल्दी उत्तेजित हो जाते हैं; पानी पर चढ़ा दिया तो और भी मूर्खतापूर्ण

व्यवहार करने लगते हैं। बेचारे नहीं समझ पाते कि लोग उन्हें मूर्ख बना रहे हैं। जबकि गड़रियों में अपने प्रति एक आत्मविश्वास और निश्चितता होती है। इस कहावत में इसी बात पर आश्चर्य प्रकट किया गया है कि अहिरिन के साथ गड़रिया भी पगला गये हैं। अर्थात् जब कोई समझदार व्यक्ति के प्रभाव में आकर नासमझी करने लगता है तब इस कहावत का प्रयोग किया जाता है। गड़रिये भेड़ों के सम्पर्क में रहने के कारण शान्त और सहनशील समझे जाते हैं। संगति का प्रभाव दिखाया गया है। २५।

अहिरिन अपन दही खट्टा नहीं बतावति।

अपनी चीज को कोई बुरा नहीं कहता भले ही वह अच्छी न हो। जो अपने की परिधि में आ जाता है वह ममत्व के घेरे में आ जाता है। अपना कुरूप बेटा भी माँ को सर्वाधिक प्यारा लगता है और दूसरे का बहुत सुन्दर बालक भी अपने से अधिक प्रिय नहीं लगता। फिर यदि अपनी किसी चीज से आर्थिक या अन्य स्वार्थ सिद्ध होता हो तो वह कभी भी उसके लिए बुरा नहीं होगा। अपनी चीज को बुरा बता कर कोई उससे स्वार्थ सिद्धि नहीं कर सकता। बेचने का काम तो और भी मुश्किल है। आज के युग में तो इतनी विज्ञापन बाजी हो रही है कि पता लगाना असंभव हो गया है कि कौन सी चीज सचमुच अच्छी है। तो बेचारी अहिरिन ही सत्य-भाषण से अपना व्यापार क्यों खोए? कुंजडिनि अपने बेर क्यों खट्टे बताये? यह स्वाभाविक है कि कोई भी अपनी चीज को बुरा नहीं कहता। इसीलिए यह कहावत है। २६।

(आ)

आँखि माँ फूली नाम कमलनयन।

इस भाव को व्यक्त करने वाली जितनी कहावतें मुझे प्राप्त हैं, उतनी अन्य एक भाव की कहावतें नहीं मिलतीं। कुछ नमूने इस पुस्तक में प्रस्तुत हैं। कदाचित् एक कहावत के वज़न पर लोगों ने विभिन्न नामों के आधार पर अनेक कहावतें बना डाली होंगी। 'यथा नामः ततः गुणः' के विपरीत भाव की ये कहावतें इस बात

को सिद्ध करती हैं कि नाम के अनुसार व्यक्ति में गुण नहीं होते। कमलनयन नाम के व्यक्ति की आँख में चेचक के कुप्रभाव स्वरूप सफ़ेद फूली हो गयी है जिससे उसे दिखायी भी नहीं देता। इस संबंध में संस्कृत भाषा में पापक की एक रोचक कथा है जो सर्वविदित है। नाम तो किसी बालक का जन्म के कुछ दिनों बाद ही रख दिया जाता है—कभी-कभी पहले से ही निश्चित कर लिया जाता है और उसके गुण, लक्षण धीरे धीरे जीवनपर्यंत बनते-बिगड़ते रहते हैं। अतः नाम का गुण धर्म से कोई संबंध नहीं है फिर भी लोग परिहास करते ही हैं। २७।

आँखी एकौ नहीं कजरौटा नौ नौ ठईं।

जब आवश्यकता से अधिक प्रबंध या प्रबंध की चिन्ता की जाती है तो इस कहावत का उपयोग किया जाता है। नौ नौ काजल रखने वाली डिबियाँ एकत्र कर ली हैं और काजल भी, पर वह लगाया किसके जाये। बच्चा तो घर में एक भी नहीं। बन्ध्या पर एक व्यंग्य है; क्योंकि जितना ही उस पर यह विदित होता जाता है कि उसके पुत्र नहीं होगा उतना ही अधिक वह पुत्र की अभिलाषा करने लगती है। जो जिसको उपलब्ध नहीं है उसे उस चीज की अधिक अभिलाषा होने लगती है। और यह अभिलाषा इतनी बावली या अन्धी हो जाती है कि व्यक्ति को हास्यास्पद स्थिति एक पहुँचा देती है। तब लोग उसकी इस स्थिति का मजाक उड़ाते हैं। जीवन में यह छूँछापन मनुष्य को काफी दुखी बनाये रहता है, क्योंकि जो नहीं है उसी की अभिलाषा मनुष्य को चक्र में विवर्तित करती रहती है। इस चक्र में पड़ा मनुष्य इस कहावत की चोट सहता है। किसी कुरूपा की शृङ्गार प्रियता पर भी कटाक्ष है। आवश्यकता न होने पर भी अनेक प्रसाधनों के एकत्रण पर कटूक्ति है। २८।

आँखी न दीदा काढ़ें कसीदा।

असमर्थताओं के बावजूद जब कोई व्यक्ति कुछ करता है तो इस कहावत का उपयोग किया जाता है। कसीदा काढ़ना अन्धे व्यक्ति के लिए असंभव है परन्तु यदि वह फिर भी कसीदा काढ़ने की कोशिश करता है तो अपने को हास्यास्पद बना लेता है। व्यक्ति में इतनी समझ की नितान्त आवश्यकता समझी जाती है कि वह अपनी योग्यता और सामर्थ्य को ठीक से समझे। न समझ कर प्रयत्न करने वाले व्यक्ति निराश और दुखी होते हैं। ऐसे दुख से बचने के लिए उसे अपनी योग्यता और सामर्थ्य के अनुसार अपना कार्य करना चाहिए। केवल अभिलाषा से

काम नहीं बनता। हर आदमी हर काम कर भी नहीं सकता। यह मनुष्य को समझना चाहिए। न समझने पर यदि मनुष्य अन्धे की भाँति कसीदा काढ़ने की कोशिश करता है तो न केवल निराश होता है बल्कि अपना परिहास कराता है। २८।

आँधर न्यौते दुई जने साथ।

यह व्यावहारिक नीति पर आधारित है। अयोग्य एवं अनुपयुक्त व्यक्ति को काम सौंपने पर काम बढ़ेगा ही, काम पूरा नहीं होगा। अन्धे व्यक्ति को यदि भोजन पर आमंत्रित किया तो दो व्यक्तियों को भोजन कराने की तैयारी रखनी चाहिए क्योंकि अन्धे का सहायक भी उसके साथ आयेगा। अतः सोच समझ कर ऐसे व्यक्ति को काम सौंपना चाहिए जो काम को पूरा कर सके। यदि प्रबंधक व्यक्ति इतनी समझदारी से काम नहीं लेता कि किसको क्या काम सौंपे तो काम बिगड़ता ही है और बढ़ता ही है। तब इस कहावत को चरितार्थ करने का अवसर पैदा होता है। राजकाज में इस समझदारी की बड़ी आवश्यकता होती है; नहीं तो शासन व्यवस्था बिगड़ती है और खर्च बढ़ता है। जैसा आजकल हो रहा है। ३०।

आँधी के आगे ब्याना कै बतास।

आँधी की तेज हवा में पंखे की हवा का क्या प्रभाव? बड़े महत्वपूर्ण व्यक्तियों के सामने साधारण व्यक्तियों का क्या मूल्य? परन्तु जब कभी ऐसा साधारण आदमी कुछ प्रभाव पैदा करने की कोशिश करता है तो अन्य उसका मजाक बनाते हुए कहते है कि आँधी के आगे ब्याना के बतास। दूसरी बात ध्यान देने की है कि उसके इन साधारण प्रयत्नों की आवश्यकता ही नहीं है क्योंकि पहले से ही उस दिशा में महत्वपूर्ण और प्रभावशाली प्रयत्न हो रहा है। चलती हुई मोटर को धक्का देकर चलाने जैसा व्यर्थ प्रयत्न है। आँधी में पंखे की हवा उसी प्रकार व्यर्थ और अनावश्यक है। परन्तु कभी-कभी कुछ लोग इस प्रकार के व्यर्थ प्रयत्न करते हैं। अपना महत्व स्थापित करने के लिए प्रायः लोग इसी प्रकार का मूर्खतापूर्ण कार्य करते हैं। ३१।

आए कनागत फूले काँस।
बाम्हन उछलै नौ नौ बाँस॥

इस उक्ति में ब्राह्मणों पर व्यंग्य है। कनागत के समय तक वर्षा पूरी हो चुकी होती है और काँस के जंगल खूब ऊँचे हो जाते हैं, और फूलने लगते हैं

उसी प्रकार ब्राह्मण भी कन्यागतों के आगमन पर प्रसन्न होते हैं, क्योंकि श्राद्धों में उन्हें खूब दावतें खाने को मिलती हैं। इन दावतों में हलुआ, पूड़ी, खीर खूब खाने को मिलती है। स्वाभाविक है कि ब्राह्मण प्रसन्न हो। यह कोई कहावत नहीं है। यह तो ब्राह्मण जाति पर व्यंग्य है जो अनुचित नहीं। इसमें उपमा के साथ एक तथ्य का वर्णन किया गया है। ध्वनि है कि मनुष्य अपनी अनुकूलता पर प्रसन्नता से नाचने लगता है जैसे ब्राह्मण दावतें खाकर। ३२।

आए रहै हरिभजन का ओटै लागि कपास।

जब कोई व्यक्ति अपने निश्चित उद्देश्य से हट कर कुछ और करने लगता है, जो इतना उपयोगी और महत्वपूर्ण नहीं होता, तब इस कहावत का उपयोग किया जाता है। जैसे कोई युवक प्रयाग विश्वविद्यालय में अध्ययन के लिए जाये, और वहाँ वह पढ़ने की अपेक्षा राजनीति में भाग लेने लगे। मूलोद्देश्य के छूट जाने पर जब कोई साधारण काम मनुष्य करने लगता है तो हरिभजन के स्थान पर कपास ओटने का-सा काम करने लगता है। वैसे आज की दृष्टि में केवल हरिभजन की तुलना में कपास ओटना अधिक अच्छा काम है परन्तु धार्मिक समाज में हरिभजन को ही अधिक महत्व प्राप्त है। असली बात लक्ष्य भ्रष्ट होने की है, जो इस कहावत में कही गयी है। ३३।

आगि लगाय जमालो दूरि खड़ीं।

अर्थात् झगड़ा लगा कर अलग हो जाना। हर समाज में कुछ ऐसे दुष्ट लोग होते हैं जिन्हें झगड़ा कराने में बड़ा आनन्द आता है। कदाचित स्त्रियों मे यह गुण अधिक होता हो क्योंकि कहावत उन्हीं की है, पर पुरुषों में भी ऐसे लोगों की कमी नहीं। ध्यान देने की बात है, कि ये लोग स्वयं झगड़े में शामिल नहीं होते। झगड़ा शुरू हो जाने पर दर्शक की भाँति आनन्द लेते हैं। लोगों को ऐसी प्रवृत्ति वाले लोगों से सावधान रहना चाहिए। ३४।

आगि लगान पानी का दौरैं।

ये भी दुष्ट लोग हैं जो पहले तो आग लगाते हैं झगड़े कराते हैं फिर बुझाने का, झगड़ा शान्त कराने का श्रेय भी लेना चाहते है। ऊपर वाली स्थिति में तो आग लगाने वाली जमालो सर्वविदित हैं परन्तु इस कहावत का आग लगाने वाला अधिक होशियार है, वह परोपकारी बन जाता है। यह मक्कार व्यक्ति जमालो से अधिक खतरनाक है। समाज को ऐसे लोगों से अधिक

सावधान रहना चाहिए। इसी उद्देश्य से यह कहावत कही गयी है कि आग लगा कर पानी को दौड़ने वाले लोग और भी भयानक हैं। झगड़ा कराने के बाद जब लोग चिकनी चुपड़ी बातें बनाते हैं और बड़े शरीफ बनते हैं तो इस कहावत के शिकार होते हैं। ३५।

आगे कै खेती आगे आगे।
पाछे कै खेती भागिन जागै॥

अगहर खेती के बारे में यह एक और कहावत है कि आगे यानी पहले से खेती की 'बौनी' बुआई इत्यादि का प्रबंध करने वाला हमेशा मीर होता है; खेती में। सफल होता है। पिछड़ कर खेती करने वाले के खेत बहुत भाग्यशाली हों तभी उगते हैं। अर्थात् पिछड़ कर खेती करने वालों के खेतों में बीज कदाचित ही उगते हैं। बहुत सही बात नहीं है इसलिए यह कहावत बहुत प्रचलित भी नहीं। खेती से संबंध रखने वाली अनेक कहावतों में से यह भी एक महत्वपूर्ण कहावत है।३६

आगे चीकन पीछे रूख।
यह देखौ बैसन का रूप॥

यह बैसों (ठाकुर) के झूठे रुआब का चित्र है। अपनी धाक जमाये रखने के लिए प्रायः गरीब ठाकुरों को बहुत से दिखावे करने पड़ते हैं। इन्हीं के बारे में सुना गया है कि इनके घरों के सामने तो फाटक होता है—मानो घर नहीं किला हो पर पिछवाड़े से घर में सुअर आते जाते हैं। इस दिखावे की एक कथा और भी है। ठाकुर साहेब भोजन करके उठे तो रोटी का टुकड़ा लेकर कुत्ते को बुलाने लगे। बहुत से कुत्ते एकत्र हो गये परन्तु उन्होंने रोटी किसी कुत्ते को नहीं दी। गुस्से में बोले "दुनिया भर के कुत्ते एकत्र हो गये हमारा ही कलुआ न जाने कहाँ जा मरा।" और रोटी छप्पर में खोंस दी। उनके कुत्ता होता तो आता। बड़प्पन की झूठी शान बनाये रखने की कोशिश पर यह कटाक्ष है। ३७।

आगे नाथ न पाछे पगहा।

पूर्ण रूपेण स्वतंत्र और निश्चिंत व्यक्ति के संबंध में यह उक्ति कही जाती है। जिस प्रकार साँड की नाक में न तो नाथ होती है और न वह रस्सी से बँधा होता है। वह तो सर्वथा मुक्त होता है। उसी साँड़ की भाँति घर परिवार की समस्याओं एवं चिन्ताओं से मुक्त व्यक्ति समाज में दायित्वहीन जीवन व्यतीत करता है और उचित-अनुचित की परवाह नहीं करता। ऐसे बिना नाथे साँड़ रूपी असामाजिक

उच्छृंखल व्यक्ति के लिए यह कहावत कही जाती है। आगे-पीछे जिसके किसी प्रकार का बन्धन या दायित्व न हो ऐसा व्यक्ति। जो अकेला हो और जिस पर किसी प्रकार की जिम्मेदारी न हो। जिसके आगे पीछे कोई नहीं होता—जो बिलकुल अकेला होता है और निर्द्वन्द्व। ३८।

आठ कठौती माठा पिये, सोरह मकुनी खाय।
वोहि के मरे न रोइए, घर का दलिद्दर जाय॥

दरिद्र हमेशा भूखा होता है क्योंकि उसकी भूख कभी मिटी नहीं। भूख उसका स्वाभाविक गुण बन जाता है। उसका पेट अधिक खाने पर भी नहीं भरता। ऐसा दरिद्र व्यक्ति यदि मर ही जाय तो अच्छा। उसके मरने से घर घर का दारिद्रय दूर हो जायेगा। कुछ लोगों में ऐसी भोजन लिप्सा उत्पन्न हो जाती है कि वह लिप्सा कभी पूरी नहीं होती। यह लिप्सा मृत्यु के साथ ही जाती है। अतः इस दोहे में सुझाव है कि ऐसे दरिद्री व्यक्ति को, जिसकी नीयत खराब हो चुकी है, मृत्यु ही श्रेयस्कर है। पेटू लोगों पर प्रहार इस कहावत का उद्देश्य है। ३९।

आठ गाँव के चौधरी बारह गाँव के राव।
अपने काम न आवैं, तौ ऐसी-तैसी माँ जायँ॥

अपने काम न आवे तो वह चाहे कितना ही बड़ा व्यक्ति क्यों न हो, बेकार है। स्वार्थ-सिद्धि के आधार पर किसी भी महत्ता या बड़प्पन को आँकने का प्रयत्न किया गया है। 'होगा बड़ा, हमें क्या करना! हमारा तो कोई काम नहीं किया। ऐसा कहने वाले लोगों की कमी नहीं है। यह काफी संकुचित दृष्टिकोण है, पर है काफी व्यावहारिक। मनुष्य अपनी स्वार्थ परिधियों से बँधा हुआ है और उन्हीं के आधार पर अच्छे बुरे का मूल्यांकन करता है। अक्सर लोग धनिकों के प्रति इस प्रकार अपना रोष प्रकट करते हैं। ४०।

आधा तीतुर आधा बटेर।

मिलीजुली आकृतियाँ, रूपों, वर्णों इत्यादि को जब व्यक्ति पसन्द नहीं करता तो कहता है, 'हमें नहीं पसन्द यह रूप आधा तीतुर आधा बटेर'। तीतर और बटेर दोनों ही चिड़ियाँ हैं और शौकीन लोग उन्हें लड़ाने के लिए पालते हैं। किसान और गाँवों के लोग तीतर पसन्द करते हैं जबकि बड़े लोग, जमीन्दार लोग बटेर पसन्द करते थे। तीतर की लड़ाई के लिए कुछ खुली जगह-मैदान चाहिए और बटेर की लड़ाई के लिए किसी कमरे की फर्श काफी है। इन छोटों-

बड़ों का मिश्रण कदाचित किसी को पसन्द नहीं आया। अतः तीतर और बटेर का मिश्रण अच्छा नहीं लगा तो कहावत बन गयी। लड़ाई के समय एक में दूसरे के लक्षण देख कर किसी ने यह फिकरा कसा हो—आधा तीतुर आधा बटेर मजा नहीं आया।' अर्थात दोगला है। ४१।

अपन टेंटर न देखिहैं।
दूसरे कै फूली निहरिहैं॥

दूसरे के साधारण दोष भी हमारी निगाह में गड़ जाते हैं और अपने बड़े दोष भी ध्यान में नहीं आते। यह बड़ी स्वाभाविक स्थिति है। अपनी आँख का टेंटर (चेचक में पुतली फूल कर बाहर निकल-सी आती है) नहीं दिखाई देता; पर दूसरे की आँख की जरा-सी सफेदी (चेचक से पुतली पर सफेदी आ जाती है) हमारी निन्दा का विषय बन जाती है। दूसरों के अवगुणों को देखने के लिए हमारे बहुत-सी आँखें हो जाती हैं, परन्तु अपने बड़े दुर्गुणों के प्रति हम अनभिज्ञ रहना चाहते हैं। यही मानव स्वभाव इन पंक्तियों में व्यक्त हुआ है। ऐसी वृत्ति की इस कहावत में निन्दा की गई है। ४२।

(काबुल गए मुगुल बनि आए, बोलैं मुगुली बानी।)
आब आब करि मरि गए सिरहाने रखा पानी॥

इस दोहे की दूसरी पंक्ति ही प्रायः कहावत के रूप में कही जाती है। पहली पंक्ति तो किसी को याद भी नहीं। मतलब की बात दूसरी पंक्ति में ही है कि सिरहाने पानी रखा है पर अरबी भाषा के प्रभाव में अब उन्हें पानी नहीं दिखाई देता। अब उन्हें आब चाहिए। बनावटी पिछले प्रभावों (affectations) पर बड़ा ही सुन्दर व्यंग्य है। उस जमाने में अरबी भाषा का बड़ा महत्व था जैसा आज कल अंग्रेजी का है। जिस प्रकार आज कल अंग्रेजी भाषा के प्रभाव में हम बहुत-से अपने गुण भुला बैठे हैं उसी प्रकार मध्य युग में लोग अरबी-फारसी के प्रभावों के कारण बिगड़े हुए आचरण पर यह कशाघात है। ४३।

आम्बाझोर बहै पुरवाई—
तौ जानौ बरखा रितु आई॥

यदि कुछ दिनों तक जोरों के साथ पुरवा हवा चले तो समझना चाहिए वर्षा ऋतु आने वाली है। यह बात उत्तरी और पूर्वी भारत के लिए सही है परन्तु पश्चिमी भारत में पश्चिमी हवा से पानी बरसता है। पुरवा हवा में नमी होती

है, जो बंगाल की खाड़ी के उठे हुए मानसूनों के साथ चलती है। इस कहावत में आम्बाझोर शब्द बड़ा सारगर्भित है। आमों को झोर गिराने वाली तेज हवा जो पूर्व से आती है। होली के आस-पास बैसाख तक सूखी पछुवा हवा बहती है जिससे पेड़ों के पत्ते झर जाते हैं। चैत बैसाख में आम फूलते फलते हैं। जेठ आषाढ में पुरवा हवा चलने लगती है। और जब लगातार यह हवा काफी दिनों तक चले तो समझना चाहिए कि वर्षा होगी। मौसम संबंधी यह एक संकेत है। ४४।

आम्ब के आम्ब और अँठुलिन के दाम।

दोहरा फायदा। आमों से हमें दोहरा फायदा होता है। आम खाने को तो मिलते ही हैं और गुठलियाँ भी बिक जाती हैं। कभी आम की गुठलियाँ खायी जाती थीं, अब अधिक नहीं खायी जातीं। पहले तो कहा जाता था : 'चारि माह आम्ब खाब, चारि माह अँठुली चबाब चारि माँह काटब ससुरारि के सहारे माँ।' तेल के अचार में पड़ी हुई आम की गुठली तो बड़ी सुस्वादु होती है। आमों के देश में आमों से संबंध रखने वाली बहुत-सी कहावतें होनी चाहिए। जहाँ किसी स्थिति से दोहरा लाभ उठाया जा सके वहाँ इस कहावत का प्रयोग किया जाता है। ४५।

आलस नींद किसानै नासै, चोरै नासै खाँसी।
आँखिन कीचरु बेसवा नासै, बाबै नासै दासी॥

जीवन के विभिन्न पक्षों के निरीक्षण पर आधारित यह एक सारगर्भित दोहा है। आलस्य किसान का, खाँसी चोर की, आँखों का कीचड़ या गन्दगी वेश्या की और दासी साधू की दुश्मन है। बिना परिश्रम के खेती नहीं हो सकती; बिना शृङ्गार और सजधज के वेश्या को ग्राहक नहीं मिल सकते, बिना खामोशी के चोर चोरी नहीं कर सकता और साधु बिना स्त्री से दूर रहे साधना नहीं कर सकता। इन चार प्रकार के लोगों से इस कहावत का संबंध है। अस्तु, इस कहावत का उपयोग चार प्रकार के लोगों से सम्बंधित है। बहुत ही प्रभावशाली कहावत है। ४६।

आला ते सुकुआरे भईं।
घिउ परसत माँ फाँसें गईं॥

किसी सासु की उक्ति है किसी बहू के प्रति। वैसे कोई भी किसी के सम्बन्ध में उपयुक्त सन्दर्भ में कह सकता है। पहले तो बड़ी तारीफ होती थी; और बहू

बड़ी अच्छी थी। परन्तु इस तारीफ ने कदाचित बिगाड़ दिया। बहू जो पहले बड़ी कर्त्ता थी अब बड़ी सुकुमार बन गयी है। अर्थात कामचोर एवं बहानेबाज बन गयी है। अब इतनी सुकुमार हो गयी है कि घी परोसने से हाथों में फाँसें लगती हैं। जब इस प्रकार किसी में परिवर्तन हो जाता है और अधिकारी व्यक्ति उसे उचित नहीं मानते तो इस कहावत का प्रयोग करते हैं। यह कहावत औरतों की है। पुरुष इसका इस्तेमाल नहीं करते क्योंकि इसमें घरेलू जीवन का एक पक्ष व्यक्त हुआ है। इस प्रकार बहुत सी ऐसी कहावतें हैं जो केवल पुरुषों द्वारा प्रयुक्त होती हैं। ४७।

आवै कातिक जाय असाढ़।
का करैं गंधक हरतार॥

यह कहावत खाज के बारे में है। यह ऐसा घैलगा रोग है कि जाता नहीं। इसकी निश्चित अवधि है। कातिक मास में खाज होती है और आषाढ़ तक रहती है। इस बीच कितनी ही दवाइयों का प्रयोग क्यों न किया जाय वह ठीक नहीं होती। खाज अधिकतर बच्चों को अधिक होती है। खाज के कीड़े मुलायम खाल में ही रहते हैं। गंधक हरतार मिलाकर लगाया जाता है परन्तु इसका भी कोई प्रभाव नहीं होता। अस्तु, इसके संबन्ध में कहावत बन गयी। ४८।

(इ)

इक लख पूत सवा लख नाती।
रावन के घर दिया न बाती॥

यह एक उदाहरण है जनता को सावधान करने के लिए। रावण जैसे प्रतापी चक्रवर्ती सम्राट का घर घमंड से ऐसा उजड़ा कि एक लाख पुत्रों और सवा लाख पोतों के होते हुए भी घर में चिराग जलाने के लिए एक भी न बचा। सारा वंश विनष्ट हो गया। जब रावण के साथ ऐसा हो सकता है तो हम सब तो साधारण प्राणी हैं। रावण के विनाश की कहानी हम सबके लिये एक ज्वलंत उदाहरण है कि मनुष्य अपने अहंकार से किस प्रकार अपना विनाश कर सकता है। जब कोई

व्यक्ति धन या सत्ता के मद में आकर अनाचार करने लगता है तो इसी कहावत के द्वारा उसे सावधान किया जाता है। ४६।

(उ)

उए अगस्त फूले बन काँस।
अब छाँड़ौ बरखा कै आस॥

अगस्त नक्षत्र में उदय हो जाने और कांस फूलने के बाद वर्षा की आशा नहीं करना चाहिए क्योंकि तब तक वर्षा के महीने सावन भादों बीत चुके होते हैं या बीत रहे-होते हैं। यह मौसम संबन्धी संकेत किसानों के लिए है। हमारी खेती वर्षा पर निर्भर है। अब नहरों के खुद जाने से और 'ट्यूबवैल' लग जाने से कुछ सुविधा हो गयी है परन्तु फिर भी हमारी अधिकांश खेती वर्षा पर निर्भर है क्योंकि गर्मी में सूखी धरती साधारण सिचाई से गीली नहीं होती। ५०।

उतरे जेठ जो बोलैं दादुर।
कहैं भड्डरी बरसें बादर॥

ज्येष्ठ मास के समाप्त होते-होते यदि मेढ़क बोलें तो समझना चाहिये कि बादल पानी बरसायेंगे। भंड्डरी की कहावतें भी काफी प्रचलित हैं। घाघ की तरह भड्डरी भी विख्यात हैं। भड्डरी ब्राह्मणों में एक जाति भी होती है जो भिक्षावृत्ति और ज्योतिष के सहारे अपना जीवन पालन करते हैं। अतः भड्डरी के नाम से प्रख्यात कहावतें, किसी एक व्यक्ति की बनायी नहीं भी हो सकती हैं। भड्डरी ज्योतिषी को भी कहते हैं अतः भविष्य विचार एवं भाषण का कार्य कोई भी भड्डरी कर सकता है। "कहैं भड्डरी" या 'ऐसा बोले भड्डरी' का मतलब यह भी हो सकता है कि ज्योतिषी ऐसा कहता है न कि कोई खास व्यक्ति जिसका नाम भड्डरी है। भड्डरी के नाम से प्रचलित अधिकांश कहावत इसी प्रकार की है जिनका ज्योतिष से कुछ सम्बन्ध है। अभी तक भड्डरी नाम का जीवनवृत्त प्राप्त भी नहीं हुआ है। मौसम संबन्धी कहावत है। ५१

उत्तिम खेती मध्यम बान।
निखिद चाकरी भीख निदान॥

सर्वश्रेष्ठ काम खेती का, दूसरी कोटि का काम मजदूरी का, नौकरी का काम निषिद्ध प्रकार का है अर्थात् बुरा है और सबसे खराब पेशा भीख माँगने का है। कोई आश्चर्य नहीं यदि कृषि प्रधान देश के लोग खेती को सर्वश्रेष्ठ कहें। परन्तु यह प्रसन्नता की बात है कि यहाँ भीख माँगने का तिरस्कार किया है। हमारे देश में जहाँ 'ब्राह्मण का धन केवल भिक्षा' कहा गया हो, जहाँ लाखों की संख्या में भिखारी हों और लगभग एक करोड़ साधु हों जो भिक्षा पर ही जीवन निर्वाह करते हों, यह कथन महत्वपूर्ण है। मेरा अनुमान है कि यह कहावत उस समय की है जब बहुत से लोग पैसों के लालच में अपनी खेती का काम छोड़ कर शहरों की ओर जाने लगे होंगे और समाज की आर्थिक व्यवस्था की ओर लोगों का ध्यान गया होगा। ५२।

उदित अगस्त पथ जल सोखा।

अगस्त नक्षत्र के उदय होने पर वर्षा ऋतु का अन्त समझना चाहिए। रास्तों में बहने वाला पानी सूख जाता है। गाँवों की कच्ची गलियों तथा बैलगाड़ियों की लीकों में पानी भर जाता है। वस्तुतः पानी का भी वही मार्ग बन जाता है जो मनुष्यों के जाने का है। परन्तु बरसात समाप्त होने पर रास्तों का पानी सूख जाता है और आवागमन प्रारम्भ हो जाता है। ज्येष्ठ मास में तेज धूप के कारण यात्रा का निषेध है। परन्तु चौमासे में भी (बरसात) यात्रा वर्जित है। बौद्ध जो हमेशा विचरण करते रहते थे वर्षा ऋतु में संघ विहारों में विश्राम करते थे। अस्तु, अगस्त नक्षत्र के उदय होने पर वर्षा ऋतु का अन्त हो जाता है और रास्ते खुल जाते हैं। ५३।

उधार काढ़ि ब्यौहारु चलावै, टटियै डारै तारा।
सारे के संग बहिनी पठवै तीनिउ का मुँह कारा॥

यह नीति का दोहा है जिसमें उधार लेकर दूसरे को देने, टटिया में ताला लगाने और साले के संग बहन भेजने को अनुचित कहा गया है। तीसरी बात सामाजिक दृष्टि से काफी रोचक है। साले का वाचिक अधिकार बहनोई की बहन पर होता है और परस्पर मजाक चलता रहता है, अगर उसे सचमुच का अवसर प्राप्त हो गया तो असंभव-नहीं कि मजाक सत्य में परिणत हो जाये।

साले बहनोई का रिश्ता हमारे समाज में बड़ा ही दिलचस्प है। देखिये—अवधी लोकगीत और परम्परा इन्दु प्रकाश पाण्डेय। ५४।

उलटा बादरु जो चढ़ै, बिधवा खड़ी नहाय।
घाघ कहैं सुनु भड्डरी, वह बरसैं वह जाय॥

यह भी नीति का दोहा है जिसमें भड्डरी ने वर्षा सम्बन्धी भविष्यभाषण भी किया है। बादल का उलटा चढ़ना (एक बादल दूसरे बादल के ऊपर) और विधवा का खड़ा होकर नहाना इस दोहे में वर्णित है। उलटा चढ़ने वाला बादल अवश्य बरसता है और खड़ी होकर नहाने वाली विधवा अपना सतीत्व खोती है। खड़े होकर नहाने से शरीर के मांसल अवयवों का प्रदर्शन हो जाता है जो किसी व्यक्ति को अपनी ओर आकृष्ट कर सकता है। ऐसी स्थिति विधवा के लिए घातक सिद्ध होती है। विधवा को इस प्रकार जीवन व्यतीत करना चाहिए जिससे वह यौन आकर्षणों से बची रहे। नहीं तो उसका जीवन कलंकित हो जायेगा और वैधव्य से भी कठिन एवं कठोर स्थिति उत्पन्न हो जायेगी। ५५।

उलटा चोरु कोतवालु क डाँटै।

अपराध या भूल करने वाला व्यक्ति जब अपनी भूल को स्वीकार करने की अपेक्षा उसी को डाँटने लगता है जो उसकी भूल बतलाता है, तो यह कहावत चरितार्थ होती है। चोर कोतवाल को डाँटे ऐसी ही उलटी स्थिति है। प्रायः समाज में ऐसे व्यक्ति होते हैं जो अपने शारीरिक बल के कारण, धन के कारण या सत्ता के कारण अनुचित व्यवहार करते हैं। और जब उन्हें बताया जाता है कि उन्होंने भूल की है तो नाराज हो जाते हैं और उस व्यक्ति पर अपना सारा आक्रोश उड़ेल देते हैं जो उसकी भूल की ओर संकेत करता है। इसी भाव को और कहावत है—'राह माँ हगैं ऊपर ते आँखी गुरेरैं।'५६।

(ऊ)

ऊँचि अंटारी मधुर बतास।
घाघ कहैं घर हो कैलास॥

साधारण स्थिति का वर्णन इस दोहे में है। यदि घर की छत ऊँची है और ठण्डी हवा चल रही है तो घर ही कैलाश पर्वत की भाँति सुखद है। ग्रीष्म ऋतु

में अँटारियों में सोने में बड़ा मजा आता है। अँटारी शब्द में बड़ा रोमान्स है, क्योंकि खुले आसमान के नीचे, फिर भी एकान्त में प्रेमी जनों का मिलन प्रायः अँटारी पर ही होता है। ऊँची अँटारी में एक लाभ है कि कोई दूसरी अँटारी से देख नहीं सकता और हवा भी अधिक मिलती है। अतः घर ही कैलास पर्वत की भाँति आनन्ददायक हो जाता है। कदाचित ग्रीष्म ऋतु में शीतलता की खोज में हिमालय पर जीने वाले लोगों को ध्यान में रख कर यह बात कही है। ५७।

ऊँट के मुह का जीरा।

कहाँ विशालकाय ऊँट और कहाँ जीरा? कैसे पूरा पड़ेगा? जब कोई चीज, विशेष रूप से खाने की चीज, किसी के लिए अपर्याप्त होती है तो इस कहावत की उपयोगिता सिद्ध होती है। पता नहीं ऊँट जीरा खाता है या नहीं। और यदि नहीं खाता हो तो कहावत की रोचकता और भी बढ़ जाती है। हमारे प्रदेश में ऊँट का साथ जीरे से अवश्य है क्योंकि बनिये सामान ढोने के लिए ऊँट पालते हैं। बनिये ऊँट पर जीरा भी लादते हैं। हो सकता है प्रारम्भ में इस कहावत का अर्थ भिन्न रहा हो अर्थात् ऊँट के खाने के लिए जीरा नहीं है। परन्तु कालान्तर में स्थूल रूपों के आधार पर अपर्याप्तता का अर्थ प्रकट होने लगा हो। ५८।

ऊँट कै चोरी निहुरे निहुरे।

यह कहावत बहुत सुन्दर और रोचक है। कोई चोर ऊँट चुराता है और इस डर से कि कोई उसे चोरी करते देख न ले झुक-झुक कर चलता है, पर यह नहीं सोचता कि उसकी चोरी छिप नहीं सकती क्योंकि ऊँट तो उसकी भाँति नहीं झुक सकता। चोर अपनी समझ में बड़ी चतुराई से काम लेता है परन्तु वह चतुराई परिणाम में मूर्खता ही सिद्ध होती है। अस्तु, जब कोई इस प्रकार की मूर्खतापूर्ण चतुराई दिखाता है तो इस कहावत की गरिफ्त में आता है। ५९।

ऊँट कौनी करवँट बैठी?

इस कहावत के पीछे कहानी है। ऊँट की पीठ पर एक ओर मिट्टी के बर्तन लदे हैं और दूसरी ओर अनाज। यदि ऊँट इस करवँट से बैठा जिधर बर्तन लदे हुए हैं, तो बर्तन फूट जायेंगे। यही डर है। उसकी बैठक का हिसाब पहले से नहीं लगाया जा सकता। अतः ऊँट की करवँट भाग्य की भाँति पक्ष में हो सकती है और विपक्ष में भी। जिस प्रकार भविष्य और भाग्य अनिश्चित हैं उसी प्रकार

ऊँट की करवँट भी, जिससे भाग्य बन-बिगड़ सकता है। इस कहावत में भाग्य की अनिश्चित का ही उल्लेख है। ६०।

ऊँट चढ़े पै कूकुर काटैं।

ऊँट पर चढ़े होने पर कुत्ते उसके पैरों के पास तक पहुँच भी नहीं सकते। फिर भी वह डरता है कि कुत्ते न काट खायँ। चिल्ला रहा है कि कुत्ते काटेंगे। ऊँट के सवार को कुत्ते नहीं काट सकते। तात्पर्य यह कि मनुष्य को प्रायः काल्पनिक भय सताया करता है। इस प्रकार भयभीत होने वाले की भर्त्सना की गयी है। दूसरे अर्थ में भी इसे रखा जाता है—वह यह कि जब कोई व्यक्ति धनी और समर्थ होने के कारण साधारण खतरों से मुक्त होता है, परन्तु फिर भी साधारण खतरों की चर्चा करता है, तो कहा जाता है कि आपको इन खतरों का क्या डर? आप तो इन खतरों से मुक्त हैं। या जब कोई काम न करने के लिए अनेक खतरों की बात करते हुए झूठे बहाने बनाता है, तो कहा जाता है कि ऊँट पर सुरक्षित होने पर भी कुत्ते कैसे काट सकते हैं? ६१।

ऊँट हेरान मटुका माँ ढूँढ़ैं।

किसी चीज़ के खो जाने पर मन व्यग्र और चिन्तित हो उठता है। अक्ल ठीक से कार्य नहीं करती। ऊँट इतना बड़ा जानवर मिट्टी के मटके के भीतर नहीं समा सकता। परन्तु अक्ल ऐसी मारी जाती है कि उसे अनुपात का ध्यान नहीं रहता और मूर्खतापूर्ण कार्य करने लगता है। ऐसी स्थिति में इस कहावत का प्रयोग किया जाता है जब मनुष्य मानसिक सन्तुलन खो बैठता है और इस प्रकार के हास्यास्पद कार्य करने लगता है।

ऊँ से संबंधित कई कहावतें इस बात की द्योतक हैं कि ऊँट ग्रामीण क्षेत्र में काफी घुसपैठ चुका है। माल लादने के लिए ऊँट का साधारण रूप से इस्तेमाल किया जाता है। ऊँट को लेकर इस प्रकार बड़ी ही सार्थक कहावतों का प्रचलन हो गया है। ६२।

ऊधो के लेबे माँ न माधो के देबे माँ।

किसी के मामसे में न पड़ने की बात को इस प्रकार व्यक्त किया जाता है। किसी के झमेले में तटस्थ रहने की स्थिति इन शब्दों में व्यक्त हुई है। जब व्यक्ति अपने को हर प्रकार से निर्दोष सिद्ध करना चाहता है तो कहता है कि मैं तो न ऊधो के लेने में न माधो के देने में। मुझे इससे कोई मतलब ही नहीं है। उद्धव

और माधव में गोपिकाओं को लेकर विवाद चलता था। पक्ष लेने पर किसी एक के विपक्ष में हो जाना स्वाभाविक है। चतुर लोग इस प्रकार की दुश्मनी मोल लेने से बचना चाहते हैं, और अपने को किसी भी तरफ शामिल नहीं होने देते। ६३।

(ए)

एक तो करैला ऊपर ते नीम्बि चढ़ा।

करेला कड़ुआ होता है और नीम भी कड़ुवी होती है। यदि करेले की वेल नीम पर चढ़ा दी गयी तो करेले की कड़ुवाहट बढ़ जायगी। नीम की भी कड़ुवाहट उसमें आ जायेंगी। ऐसी स्थिति से बचने का भाव इस कहावत में है। प्रतिकूल परिस्थिति जब कुछ कारणों से और भी प्रतिकूल हो जाये; दुष्ट व्यक्ति किसी अन्य दुष्ट के संसर्ग से और भी दुष्टता करने लगे तो इस कहावत के अनुसार करेला नीम चढ़ा हो जाता है। ६४।

एकु तौ गड़ेरिन दूजे पियाजु खाए।

एक दोष के विद्यमान होने पर अतिरिक्त दोष उत्पन्न हो जाये तो इस कहावत को कहा जाता है। भेड़ों के साथ अधिकांश रहने के कारण गड़रिये की औरत पहले ही दुर्गन्धित रहती है; यदि वह प्याज खा ले तो दुर्गन्ध बढ़ जायेगी। दोष या दुर्गुण के बढ़ने पर ऐसी स्थिति उत्पन्न होती है। दुर्गन्ध की वजह से ही बहुत लोग प्याज या लहसुन नहीं खाते। गड़रिया अपनी इस दुर्गन्ध के कारण अस्प्रश्य हो गया है। उसके पास बैठना किसी को पसन्द नहीं आता। ऐसी स्थिति में प्याज खाकर वह अपनी दुर्गन्धि बढ़ायेगा। अस्तु, पहले से ही प्रतिकूल स्थिति और प्रतिकूल हो जाये तो इस कहावत का उपयोग किया जाता है। ६५।

एकु ते डाइन दुसरे हाथ लुकाठा।

इसमें भयंकरता के बढ़े हुए रूप को व्यक्त किया गया है। डाइन पहले ही काफी भयंकर मानी जाती है। जब कोई स्त्री अस्त व्यस्त बालों और कपड़ों को लापरवाही से पहने फूहड़पना प्रदर्शित करती है तो चुड़ैल की उपमा पाती है।

पागल स्त्री की भाँति। और यदि चुड़ैल या डाइन हाथ में जलता हुआ लुकाठा और ले ले तो उसकी भयानकता और भी अधिक बढ़ जायेगी। अतः जब स्थिति की भयानकता बढ़ जाती है तो इस कहावत का प्रयोग करते हैं। ६६।

एकु नीम्बि सब गाँव सितलहा।

गाँवों में ही नहीं नगरों में भी श्रद्धालु स्त्रियाँ शीतला देवी की पूजा करती हैं। शीतलादेवी की पूजा चेचक की देवी के रूप में और भी अधिक होती है। यह पूजा गर्मी के चार महीनों की अष्टिमियों को होती है। गर्मी में ही चेचक का प्रकोप विशेष होता है। अतः उनके कोप को शीतल एवं शान्त रखने के लिए चैत की अष्टमी को ही शीतल घट की स्थापना होती है जिसमें गंगाजल भरकर रखा जाता है। उस घट में नीम का 'टेरौआ' रखा जाता है। जब सब घरों में शीतल घट की स्थापना होगी तो सभी को नीम के टेरौआ की ज़रूरत होगी। एक नीम के होने पर टेरौओं की कमी पड़ेगी। उसी स्थिति से कहावत को अर्थ प्राप्त होता है कि माँग अधिक है परन्तु चीज कम। डिमाण्ड अधिक सप्लाई कम। एक नीम के सारे पत्ते नुच जायेंगे। टेरौआ=नीम की पत्तियों वाली छोटी डाल। ६७।

एकु तौ बीबी लोनी दूजे कान उतन्ना।

किसी स्त्री के शृङ्गार तथा नाज नखरों पर व्यंग्य किया गया है। एक तो बीबी सुन्दर हैं ही ऊपर से कानों के ऊपर वाले हिस्सों में बालियाँ भी हैं। फिर बीबी सीधे मुँह क्यों बात करेंगी? इसी नखरे पर कटाक्ष करते हुए इस कहावत की रचना हुई है। सांस्कृतिक दृष्टि से इस कहावत का बाह्य आवरण मुसलमानी है। बीबी शब्द का प्रयोग मुसलमानी घरों में होता है और उतन्ना भी मुसलमान स्त्रियाँ छिदवाती हैं और बालियाँ पहनती हैं। उनके प्रभाव स्वरूप कुछ हिन्दू स्त्रियाँ भी उतन्ना छिदाने लगी थीं, पर चाँदी की जगह सोने की बालियाँ पहनती थीं। अस्तु किसी स्त्री के नाज नखरे या शृङ्गारप्रियता पर व्यंग्य इस कहावत के द्वारा किया जाता है। ६८।

एकु पाख दुई गहना।
राजा मरै कि सहना॥

इस कहावत का संबंध ज्योतिष से है। एक पक्ष या पखवाड़े में यदि दो ग्रहण पड़ें तो अनिष्ट होता है। या तो राजा मर जाता है या साहूकार। सामन्ती

सभ्यता में राजा और साहूकार दो ही महत्वपूर्ण व्यक्ति होते थे। राजा के बाद महत्व उस साहूकार या श्रेष्ठी का होता था जो वाणिज्य से धनाढ्य हो गया है। राजा को भी कभी-कभी सेठों का सहारा लेना पड़ता था। यदि इन दो में से कोई मरा तो समाज का बड़ा अहित होता था। अब वे पहले ही समाप्त हो गये हैं और धार्मिकता काफी कम हो गयी है। अतः जब कोई यह कहावत कहता है तो छोकरे कह देते हैं—'मरने दो।' ६८।

एक बार जोगी, दुई बार भोगी, तीन बार रोगी।

यह कहावत पाखाने जाने के सम्बन्ध में है। दिन में एक बार पाखाना जाने वाला साधक या योगी है। अर्थात् एक बार जाना आदर्श है। दो बार साधारण गृहस्थ लोग जाते हैं जो दो बार खाते हैं—त्यागी या सन्यासी या योगी नहीं हैं, जो जीवन का स्वाभाविक रूप बनाये हुए हैं। मनुष्य का स्वाभाविक या प्राकृतिक रूप भोग का ही है। तीन बार पाखाने जाने वाला रोगी होता है यह कोई कहावत नहीं है। इसमें विभिन्न स्थितियों के आधार पर व्यक्तियों की विशेषता प्रकट की गई है जो सर्वथा सही भी नहीं है। ७०।

एकु मियान माँ दुई तरवारी नहीं रहि सकतीं।

एक म्यान में दो तलवारें समायेंगी ही नहीं। अक्सर प्रेम के मामले में यह कहावत कही जाती है—जब एक के दो प्रेमी हो जाते हैं। इस कहावत के द्वारा यह बात प्रकट की जाती है, कि इस प्रकार दो प्रेमी एक साथ नहीं रह सकते। प्रेम के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों में भी जहाँ व्यक्ति एकाधिपत्य का दावा करता है तो इस कहावत का प्रयोग करता है। चुनौती देते हुए व्यक्ति अपने विपक्षी को सावधान कर देना चाहता है कि या तो वही रहेगा या फिर उसका विरोधी-'रक़ीब'। दो तलवारें एक म्यान में एक साथ नहीं रह सकतीं, परन्तु एक समान दो तलवारें बारी-बारी से एक म्यान में रह सकती हैं। प्रेम के एकाधिपत्य भाव के कारण यह संभव नहीं कि कोई एक व्यक्ति दो से प्यार कर सके। एक दिल में दो प्यार नहीं समा सकता। ७१।

एकु हाड़, दुई कूकुर।

दो व्यक्तियों को लड़ाने के संदर्भ में इस कहावत का प्रयोग किया जाता है। दो कुत्तों के बीच में एक हड्डी डाली जायेगी तो स्वाभाविक है कि वे दोनों

लड़ेंगे। अंग्रेजी में इसी को bone contention कहा गया है। एक चीज पर जब दो अपना अधिकार चाहते हैं तो झगड़े की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। ७२।

एकु हाथे तारी नहीं बाजति।

जीवन में मित्रता या शत्रुता एकतर्फा नहीं हो सकती। यदि प्रेम में दो पक्ष हैं तो संघर्ष में भी दो हैं। मित्रता शत्रुता एकपक्षी नहीं हो सकती। दोनों तरफ से जब तक सरगर्मी या उत्तेजना नहीं प्रकट होगी तब तक न मित्रता हो सकती है और न शत्रुता। यदि कोई भी एक पक्ष ठण्डा होगा—पूर्ण क्रिया प्रतिक्रिया या घात प्रतिघात नहीं होगा तो मित्रता या शत्रुता के भाव में उत्कर्ष नहीं होगा। और भी बातें हैं जो एकतरफा नहीं हो सकतीं। भलाई-बुराई सभी कामों की क्रिया प्रतिक्रिया की आवश्यकता होती है। अर्थात् ताली बजानी है तो दो हाथों की जरूरत होगी। कभी-कभी लोग चुटकी बजाकर दिखाते हैं। परन्तु चुटकी में भी दो अँगुलियों और एक अँगूठे की जरूरत होती है। ७३।

(ऐ)

ऐस सोनु कौने काम का कि कानैं फाटि जायँ।

ऐसे शृंगार प्रसाधन भी किस काम के जो शृंगार के स्थान पर उस अंग की हानि कर दें। प्रदर्शन की उत्तेजना में प्रायः औरतें सोने के आभूषण पहनती हैं, जिससे उनके चलने फिरने में बाधा पड़ती है। कान और नाक के भारी आभूषणों से उनके कान-नाक फट जाते हैं। कैसी विचित्र स्थिति है कि जो आभूषण जिस अंग का शृंगार करने के लिए होता है, उसी अंग को विक्षत कर देता है; असुन्दर बना देता है। इस कहावत में ऐसे प्रदर्शनकारी घातक आभूषणों के उपयोग की निन्दा की गयी है, जो बड़ी समझदारी की बात है। घातक एवं हानिकारक प्रिय वस्तु की निन्दा की गई है। ७४।

ऐसी खेती करै मोर भतरा।
एक दिन खाय तीन दिन अँतरा॥

क्रुद्ध पत्नी अपने पति की आर्थिक स्थिति की आलोचना कर रही है। विशेष रूप से उसे अपने पति के काम करने के ढंग से ऐतराज है। व्यंग्य में स्त्री कहती

है कि मेरा भतार (पति) ऐसी बढ़िया खेती करता है कि एक दिन खाने को मिलता है तो तीन दिन भूखों रहना पड़ता है। यह कहावत उस समय कही जाती है, जब कोई व्यक्ति डींगें मार रहा होता है। जानकार सत्य को इस कहावत के माध्यम से प्रकट कर देता है। झूठी शेखी बघारने वाले को ऐसे यथार्थवादी शब्द सुनने पड़ते हैं। ७५।

ऐसी होती कातनहारी।
तौ कहे का रहतीं जाँघ (गाँड़ि) उघारी॥

इस कहावत में भी लगभग ऊपर वाली कहावत का ही भाव है। कोई किसी के कर्त्तापन की तारीफ करता है तो दूसरा व्यक्ति उसके परिणामों के आधार पर उसकी अयोग्यता सिद्ध कर देता है। इस कहावत में शेखी मारने, डींगें हाँकने की बात नहीं है। हो सकता है कि व्यक्ति अपने प्रयत्नों में ईमानदार हो परन्तु सफल न हो। प्रयत्न एक बात है और सफलता दूसरी बात। दुनिया परिणामों या सफलता के आधार पर मूल्य निर्धारण करती है। अच्छी कातने वाली, हो सकता है, पूरे कपड़े न पा सके। फिर भी इस कहावत में कटु व्यंग्य है। ७६।

(ओ)

ओसन के चाँटे पियास नहीं बुझाति।

प्यास बुझाने के लिए पानी चाहिए। ओस चाटने से मनुष्य की प्यास नहीं बुझेगी क्योंकि ओस के बूदों से पर्याप्त पानी नहीं मिल सकेगा। जब कोई चीज पर्याप्त नहीं होती और उससे आवश्यकता की पूर्ति नहीं होती तो इस कहावत का प्रयोग किया जाता है। ७७।

(क)

कटी अँगुरी माँ मूतब।

गाँवों में सामान्यतः ऐसी धारणा है कि कटे पर पेशाब कर देने से घाव पकता नहीं, और शीघ्र अच्छा हो जाता है। पेशाब 'ऐंटीसैप्टिक' दवा का कार्य

करता है। इस प्रकार कोई भी व्यक्ति किसी भी व्यक्ति की सहायता कर सकता है—जिसकी अँगुली कटी है उसकी अँगुली में मूत कर उसका उपकार कर सकता है। आखिर वैसे भी व्यक्ति पेशाब का उपयोग नहीं करता। यह अच्छा उपयोग है। परन्तु कुछ ऐसे लोग होते हैं कि इस प्रकार अपनी निरर्थक वस्तु से भी किसी का हित नहीं करना चाहते। तभी इस कहावत का प्रयोग किया जाता है कि वह कटी अँगुली में नहीं मूतेगा। अत्यधिक स्वार्थी के लिए यह कहावत कही जाती है। ७८।

कतौं सुधाइउ ते बड़ दोसू।

गोसाईं जी का नीति वाक्य है कि कभी-कभी कुछ अवसरों पर सीधापन बहुत घातक सिद्ध हो जाता है। सीधा अथवा अच्छा होना प्रशंसनीय गुण है परन्तु कभी-कभी इन गुणों से भी बुरे परिणाम उत्पन्न हो जाते हैं। अतः संकेत है कि मनुष्य को हमेशा सोधा भी नहीं रहना चाहिए। उसके सीधेपन से लोग अनुचित लाभ उठाते हैं और घातक स्थितियाँ उत्पन्न कर देते हैं। अतः सावधान रहना चाहिए। ७९।

कब ते पूना भगतिनि गईं?
कथरी ओढ़ि परागै गईं।

पूना-गाँव की तेज तर्रार लड़ाँका बुढ़िया है जिसने जीवन भर दुष्टता की और गाँव के जीवन में कटुता भरी। लोगों को विश्वास नहीं होता कि ऐसी औरत भगतिनी हो जायेगी और तीर्थ यात्रा पर प्रयाग जायेगी। ऐसी स्त्री को कैसे चैन मिलेगी जिसने अजीवन उलटे पुलटे काम किये हों! अर्थात दुष्ट प्रकृति का व्यक्ति अपनी दुष्टता छोड़ भी दे तो लोगों को विश्वास नहीं होता। उसके अच्छे कामों में भी लोगों को चालाकी या दुष्टता की गंध आती है। ८०।

कबहूँ पाँड़े घिउ पूरी कबहूँ कटक उपास।

यहाँ पाँड़े (एक ब्राह्मण समुदाय) पर आक्षेप है। पाँड़े लोग इस कहावत के अनुसार व्यवस्था और हिसाब किताब के आदी नहीं होते। अगर आज उन्हें पैसे मिल गये तो घी में बनी पूड़ियाँ भी घी से खायेंगे और जब सब समाप्त हो जायेगा तो फाके करेंगे। एक गाँव के एक पांडे के बारे में सुना था कि वे पेड़े छील कर खाते थे। एक विशिष्ट समुदाय पर कटाक्ष अधिक है। ऐसे किसी भी व्यक्ति पर इसका उपयोग किया जाता है। ८१।

कमरहीन नर खेती करैं।
बरधा मरै कि सूखा परै॥

भाग्यवादी दृष्टिकोण को प्रश्रय देने वाली कहावत है। खेती को लोग जुआ खेलना मानते हैं। भाग्य विपरीत हुआ तो सब ठीक होने पर भी अनाज घर नहीं आता। आता है तो घुन खा जाते हैं। और भाग्य साथ दिया तो केवल बीज छीट देने से ही घर अनाज से भर जाता है। भाग्यहीन व्यक्ति खेती करे तो अनेक दुर्घटनाएँ हो सकती हैं। सूखा या अनावृष्टि हो सकती है, बैल मर सकता है, इत्यादि। परन्तु किसे पता चल सकता है कि कौन व्यक्ति भाग्यहीन है और कौन भाग्यवान! जीवन में अच्छा बुरा होता ही रहता है। परन्तु निरन्तर अच्छी घटनाओं के कारण हम किसी को भाग्यवान और बुरी घटनाओं के कारण भाग्यहीन कह देते हैं। ८२।

करनी न करतूत-पनारा ऐसी चूंत।

लेना-देना, करना-धरना कुछ नहीं परन्तु जब बखान बहुत होने लगता है तो स्त्रियाँ ही इस कहावत का प्रयोग करती हैं। जब लड़के के विवाह में लड़की के यहाँ से अपेक्षा से कम सामान आता है तो सासु इस कहावत का प्रायः उपयोग करती हैं। कहावत कहने में उन्हें कोई संकोच नहीं होता। शब्दों वाच्यार्थ से अधिक ध्यान व्यंग्यार्थ की ओर होता है। इसीलिए ऐसे अशोभन शब्द भी वे सरलता से बोल जाती हैं। स्त्रियों को कुछ अधिक शालीन और शिष्ट समझा जाता है। परन्तु स्वार्थवश बूढ़ी स्त्रियाँ अपनी उचित मर्यादा और शालीनता भूल जाती हैं। बूढ़ी स्त्रियों की बर्राने अथवा बोलते रहने की आदत पड़ जाती है। उसी रवानगी में वे अनाप-शनाप, उचित-अनुचित बोलती रहतीं हैं। बहुएँ रोती रहती हैं। ८३।

करिया अच्छर भैंसि बराबर।

निरक्षरता का वर्णन है। काला अक्षर निरक्षर के लिए भैंस के बराबर है। वह भैंस जैसी स्थूल चीज़ समझ सकता है। काले के नाम पर वह भैंस समझता है क्योंकि भैंस काली होती है। छोटे छोटे, काले-काले अक्षर वह नहीं पहचान सकता। किसी निरक्षर व्यक्ति को यह उपाधि प्रायः दी जाती है—अरे वह तो काला अक्षर भैंस बराबर है। ८४।

कहाँ राजा भोज औ कहाँ गंगू (भोजवा) तेली!

इस कहावत के द्वारा छोटे-बड़े का अन्तर स्पष्ट किया है। इसमें जिस

अन्तर की चोर संकेत किया गया है, वह मूलतः आर्थिक है परन्तु अब इतना ध्यान नहीं दिया जाता। प्रायः नम्रतावश व्यक्ति स्वयं छोटा बनता है और अपने को राजा भोज की तुलना में भोजवा-या गंगू तेली मानता है। भोजवा शब्द अधिक सार्थक है क्योंकि शब्द मात्र के प्रयोग और प्रयोग शैली से अन्तर स्पष्ट हो जाता है। भोज सम्मान पूर्ण है और भोजवा तिरस्कार पूर्ण। इसका सम्बन्ध सामाजिक स्तर से भी है। ८५।

कहुँ गाड़ी पर नाव, नाव पर कबहूँ गाड़ी।

हमेशा एक सी स्थिति नहीं रहती। नाव बढ़ई द्वारा बनाई जाती है और बैलगाड़ी में लाद कर नदी किनारे लायी जाती है। वही नाव पानी में इतनी समर्थ हो जाती है कि बैलगाड़ी को इस पार से उस पार पहुँचा देती है। स्थिति भेद से सामर्थ्य में भी अन्तर आ जाता है जो बिलकुल स्वाभाविक है। इस कहावत के अनुसार ही जगत का व्यवहार है। हमेशा हर स्थिति में एक व्यक्ति पूर्ण समर्थ या असमर्थ नहीं होता। अतः परिस्थितियों को ध्यान में रख कर आचरण करना चाहिए। नगण्य वस्तु भी कभी उपयोगी सिद्ध हो सकती है। ८६।

कहूँ कै ईंट कहूँ का रोड़ा।
भानुमती ने कुनबा जोड़ा॥

भानुमती का पिटारा प्रख्यात है। कुनबा भी विख्यात हो गया है। परन्तु भानुमती ने इतना बड़ा कुनबा इकट्ठा कैसे किया? इधर-उधर से। भानुमती की संचय वृत्ति कारगर सिद्ध हुई, परन्तु लोगों को यह पसन्द नहीं आया। अतः यह तो स्वीकार किया कि भानुमती ने कुनबा जोड़ लिया है परन्तु किस प्रकार—? यही आक्षेप हैं इस कहावत में। पसन्द न आने वाले ढंग की आलोचना इस कहावत से की जाती है। जब किसी व्यक्ति ने अच्छी बुरी तमाम चीजों को संचित कर लिया जिसमें न कोई सुरुचि है और न योजना तो वह भानुमती के पिटारे के समान है। ८७।

कहे ते धोबी गदहा पर नहीं चढ़त।

बड़ी सटीक कहावत है। मनुष्य जब अपने प्रति सचेतन (Self Conscious) हो जाता है तो वही काम नहीं करता जो साधारणतया करता रहता है। कोई व्यक्ति प्रायः गाता रहता है परन्तु उससे कहो—'एक गाना सुनाओ' तो वह पचास बहाने बनायेगा। धोबी रोज ही घाट-गधे पर बैठ कर जाता है।

किसी ने किसी दिन उससे कह दिया गधे पर सवार हो कर जाओ—उस दिन वह घाट पैदल गया। वह शर्मा गया। गधे पर बैठना कुछ छोटी बात मानी गयी है। इसलिए धोबी कहने पर गधे पर नहीं बैठता-वैसे बैठता है। मेरा ख्याल है कि कहने पर व्यक्ति (self conscious) हो जाता है। ८८।

कांख-पाद बहुतेरी, पथु ठयालैं डेढ़ पसेरी।

संयुक्त परिवार में ऐसी स्थितियाँ बहुत-सी उत्पन्न हो जाती हैं जिनमें कुछ व्यक्ति अपने फायदे की अधिक सोचते हैं। दो बातें प्रायः देखने में आती हैं—लोग कामचोरी करते हैं। चाहते हैं काम कोई दूसरा कर दे और दूसरी बात यह कि अच्छा भोजन अधिक मात्रा में मिले। और तो कुछ मिलने वाला है नहीं। अतः व्यक्ति बीमरी का बहाना करके काम से बचने की कोशिश करता है और पथ्य में दूध इत्यादि अच्छी पौष्टिक चीजें खाने की कोशिश करता है। इसी वृत्ति पर कहावत में आक्षेप है। खाने के लिए बीमार नहीं है काम करने के लिए है। ८९।

का करै जौ पतनी जो होय मेहरिया जतनी।

जो स्त्री कर्ता, होशियार और समझदार हो तो घर गृहस्थी आराम से चल सकती है। प्रतिकूल परिस्थितियाँ और बाधाओं को भी वह लाँघकर घर में उचित व्यवस्था बनाये रख सकती है। तात्पर्य यह है कि घर का निर्माण और गृहस्थी की व्यवस्था स्त्री पर निर्भर है। यह स्त्री की आदर्श स्थिति है और उसमें गृहस्थी के प्रति जागरूक और क्रियाशील रहने के लिए प्रोत्साहन है। यदि गृहिणी चतुर होगी तो गरीबी का अधिक असर नहीं दिखाई देगा। ९०।

काटौ साँप जहाँ मन भावै।

शत्रु के प्रति पूर्ण आत्म-समर्पण की भावना इस पंक्ति में व्यक्त हुई है। पराजय स्वीकार कर लेने पर फिर सभी प्रकार के अपमान सहने ही पड़ते हैं। छोटे-बड़े अनुमान में कोई अन्तर नहीं रहता। मन के जीते जीत है—मन के हारे हार। साँप कहीं भी काटे परिणाम एक ही है—मृत्यु। जब कोई दूसरा रास्ता ही नहीं है, तब मृत्यु स्वीकार्य है—कैसे भी हो। चाहे हाथ में काटे चाहे पाँव में। मनुष्य जब ऐसी स्थिति में पड़ जाता है जिससे कोई बचाव नहीं तो छोटी शर्तें बेकार हैं। मेरे वृद्ध पिता जी लकवे से पंगु बन गये वे प्रायः कहते रहते,

'काटो सांप जहां मन भावै।' अब तो शरीर रोगग्रस्त होकर निःशक्त हो ही गया है। कितने भी रोग कैसे भी आएँ। मृत्यु कोई भी रूप धारण करके आये। ८१।

कान छेदौतै बनी गुरु कोचैया खातै बनी।

जब कोई काम विवश होकर करना ही पड़ता है; कष्ट या पीड़ा के कारण करने का मन नहीं होता है तब यह कहावत कही जाती है। कनछेदन बच्चों के लिए पीड़ादायक होता है परन्तु छिदाना ही पड़ता है। जिस समय कान छेदन होता है उस समय बच्चे को गुड़ के साथ पूरी खिलायी जाती है जिससे बच्चा स्वाद में पीड़ा भूल जाये। अस्तु, एक ओर पीड़ा है, दूसरी ओर सुस्वादु भोजन। अर्थात् जीवन में पीड़ा भी सहनी पड़ेगी और आनन्द भी प्राप्त होगा। दुख-सुख जीवन की अनिवार्य विवशताएँ हैं। ८२।

काना होय तौ कोंचि जाय।

सामान्य रूप से बिना किसी का उल्लेख किये निन्दा या आलोचना की जाये। यदि उस जगह कोई व्यक्ति ऐसा होगा जिसने ऐसी कोई बुराई की है तो वह फौरन उस निन्दा का बुरा मानेगा और विरोध करेगा। ऐसा होते ही वक्ता कहेगा काना होय तो कोंचि जाय। यानी जो अपराधी या दोषी होगा उसको तो बुरा लगेगा ही। इस प्रकार सामान्य में से विशेष अपराधी को अलग किया जा सकता है। इस प्रकार सामान्य रीति से व्यक्त किये गये व्यंग्य अपना बड़ा असर रखते हैं, क्योंकि साधारणतया हम किसी को अपराधी या दोषी तो घोषित कर नहीं सकते। ८३।

कानी के बिआहे माँ सौ झंझट।

स्वाभाविक ही है कि कानी लड़की के साथ कोई शायद ही विवाह करना चाहेगा। और यदि विवाह पक्का हो भी गया तो होने तक अनेक अड़चन पड़ती हैं क्योंकि वह स्वयं अपशकुन है। किसी शुभ काम में या यात्रा के समय कानी सामने आ जाये तो अपशकुन हो जाता है। एक कहावत है : "तीन कोस तक मिलै जो काना; लौटि पड़ै सो बड़ा सयाना।" तो कानी के विवाह में सौ झंझटों का होना स्वाभाविक है, क्योंकि वह स्वयं साक्षात् बाधा है। पहले ही कार्य कठिन है और तमाम कठिनाइयाँ बढ़ जायें। ८४।

कानी को सराहै-कानी कै माय ।

सच ही है । कानी की प्रशंसा कौन करेगा ? उसकी माँ के सिवाय कोई नहीं । अर्थात् खराब चीज़ की कौन तारीफ करेगा ? उसके सिवाय और कोई नहीं जिसकी वह चीज है । अस्तु, जब कोई व्यक्ति अपनी खराब चीज की प्रशंसा करता है, तो जानकर लोग इसी कहावत के द्वारा व्यंग्य कसते हैं । ८५ ।

कानी बिना चैन न आवै कानी देखे जरी जायँ ।

किसी कानी लड़की की सहेली है जो कानी को बहुत प्यार करती है । परन्तु कानी उससे ईर्ष्या करती है क्योंकि कानी को सब अपशकुन मानते हैं और उसका तिरस्कार करते हैं जबकि उसकी सहेली को सबसे स्नेह मिलता । अपनी सहेली के इस सौभाग्य से कानी उससे जलती है । कानी की सहेली की माँ अपनी पुत्री के कानी के प्रति इसी स्नेह की आलोचना करती है । एक समझदार व्यक्ति बाल सुलभ सरलता एवं भावुकता की निन्दा करता है और जीवन के कटु सत्य की ओर संकेत करता है । हम कभी-कभी भावुकतावश अपने भोलेपन में अपने हित को नहीं समझ पाते और अहितकारी स्थितियों को हितकारी समझ कर ग्रहण लेते हैं । ८६ ।

कानी मनै सोहानी ।

कानी अपने ऊपर स्वयं रीझी है । उसके सौन्दर्य पर और तो कोई रीझने वाला है नहीं । आशय यह है, कि कुरूप व्यक्ति जब अपने आपको सुन्दर समझने लगता है तो लोगों की आलोचना सहता है और व्यंग्य वाक्य सुनता है । सच तो यह है कि कुरूप से कुरूप व्यक्ति यदि अपने को सुन्दर नहीं तो कुरूप नहीं मानता। कुरूप मान लेना आत्महत्या के समान है । हर व्यक्ति अपने सौन्दर्य एवं गुणों पर रीझा रहता है । अपने इसी स्वभाव के कारण वह उपर्युक्त कहावत का शिकार हो जाता है । ८७ ।

का पूत बतनौ के भागी ?

जो कोई कुछ विशेष महत्वपूर्ण कार्य कर नहीं पाता परन्तु बातें खूब बनाता है । तब उसे किसी तरफ से यह कहावत सुनने को मिल जाती है । क्या बेटा बातों से भी गया ? और कुछ नहीं तो कम से कम बातें तो कर ही सकता है । निकम्मे, बातून एवं शेखीखोर व्यक्ति के लिए यह कहावत कही जाती है । ८८ ।

का बरखा जब कृसी सुखाने ?

नीति वाक्य है। खेती सूख जाने पर वर्षा होने से क्या लाभ ? अंग्रेजी में 'Doctor after death' वाली कहावत इसी प्रकार की है। जब कोई जरूरी बातें समय पर न होकर समय बीत जाने पर होती है तो इस कहावत का उपयोग किया जाता है। समयानुकूल कार्य ही अपना महत्व रखते हैं। समय बीत जाने पर मृत्यु के बाद उपचार की भाँति है। ८८।

काबुल माँ सब घोड़ै नहीं होति

काबुल घोड़ों के लिए मशहूर है; परन्तु वहाँ सब घोड़े ही नहीं होते हैं किसी विशिष्ट स्थान, वर्ग या जाति का होने के कारण जहाँ के लोग कुछ विशेष गुणों के लिए मशहूर होते हैं, वहाँ के प्रत्येक व्यक्ति के प्रति यह अपेक्षा बन जाती है कि वह भी उसी प्रकार विशेष गुण सम्पन्न होगा। परन्तु ऐसा नहीं होता। इस सत्य का उद्‌घाटन इस कहावत में है कि यद्यपि काबुल घोड़ों के लिए प्रख्यात है; परन्तु वहाँ गधे भी होते हैं। जब कोई व्यक्ति विशेष अपेक्षा के अनुरूप नहीं निकलता तो उपर्युक्त कहावत का सत्य प्रकट होता है। प्रयाग विश्वविद्यालय गम्भीर विद्यार्थियों के लिए विख्यात है परन्तु वहाँ भी सभी विद्यार्थी अच्छे नही होते। १००।

काम न काज के अढ़ाई सेर अनाज के।

किसी निकम्मे व्यक्ति की निन्दा की गयी है। काम काज कुछ न करना और खाने के समय सबसे अधिक खाना। संयुक्त-परिवार में इस प्रकार के निकम्मे लोग पलते रहते हैं। वे बेशर्म और 'नीघस' हो जाते हैं। पड़े-पड़े आराम करते हैं--गाँव भर की पंचायत करते रहते हैं; और डट कर भोजन करते हैं परन्तु कोई काम नहीं करते। युवकों में प्रायः इस प्रकार के लोग निकल आते हैं क्योंकि विवाह हो जाने के बाद जिम्मेदारियाँ बढ़ जाती हैं जिनका निर्वाह करना ही पड़ता है; परन्तु बहुत से विवाहित भी ऐसे निकम्मे मिल जाते हैं। जब तक उनके माता-पिता जीवित रहते हैं, तब तक तो यह निकम्मापन चल जाता है; पर बाद में नहीं चलता। १०१।

की हंसा मोती चुगैं की भूखे रहि जायँ

स्वाभिमानी व्यक्ति के लिए यह उक्ति है कि जिस प्रकार हंस या तो मोती

ही खायेगा नहीं तो भूखा रहेगा उसी प्रकार आत्म सम्मान रखने वाले व्यक्ति अपनी प्रतिष्ठा के विरुद्ध कार्य नहीं करेंगे। ऐसे व्यक्तियों में एक आन होती है जिसके विरुद्ध वे नहीं जायेंगे। वे तकलीफें उठायेंगे परन्तु अपने आदर्शों के साथ समझौता नहीं करेंगे। हंस उसी आत्म सम्मानी आदर्शवादी व्यक्ति का प्रतीक है जो कष्ट भोगेगा, परन्तु अपने आदर्श से नीचे नहीं गिरेगा। ऐसे आदर्शवादी लोगों की आजकल सर्वत्र कमी है। समझौतावाद जीवन का आदर्श बन गया है। अस्तु, यह कहावत केवल कहने भर को रह गयी है, ऐसे स्वाभिमानी व्यक्ति बहुत ही कम मिलेंगे। १०२।

कुँजड़िनि अपनि बेर खट्टे नहीं बतावति।

उसी तरह की कहावत है जैसी ग्वलिनि अपने दही को खट्टा नहीं कहती। कोई व्यापारी अपनी चीज़ की बुराई नहीं करता चाहे वह कितनी ही बुरी हो। वैसे साधारणतया कोई भी अपनी चीज को बुरा नहीं कहता, फिर व्यापारी कैसे कहेंगे? उनको तो उस चीज़ से लाभ उठाना है। पैसे कमाना है। अगर ऐसा करें तो दूसरी कहावत चरितार्थ करेगा कि 'घोड़ा घास से यारी करे तो खाये क्या।' जो व्यापारी ग्राहक से यारी करे तो कमाये क्या? परन्तु यदि व्यापार सच्चाई का हो तब तो यह कहावत नहीं चलेगी परन्तु ऐसा है कहाँ। १०३।

कुकुरिउ परागँ जैहैं तौ पतरी को चाँटी?

साधारण काम करने वाले लोग यदि धनियों की भांति; बड़े सम्पन्न व्यक्तियों की भाँति व्यवहार करने लगेंगे तो उनका काम कौन करेगा? उनका बड़प्पन कैसे चलेगा। यदि बारी या कहार बर्तन-चौका न करेंगे तो धनियों को करना पड़ेगा। उन्हीं सम्पन्न व्यक्तियों की ओर से यह कहावत है; और उन्हीं के पक्ष का समर्थन करती है। कुत्ते जूठे पत्तल चाटने के लिए बनाये गये हैं, अगर वे पत्तल नहीं चाटेंगे तो यह काम कौन करेगा? अस्तु इनके दृष्टिकोण से पतली चाटने के लिए समाज में कुछ लोगों को बनाये रहना चाहिए। १०४।

कुछ गुरु ढील कुछु बनिया।

जब काम करने वाला भी कमजोर हो और काम भी कुछ ऐसा ही हो तो काम बिगड़ता ही है, बनता नहीं। गुड़ तो कुछ खराब है ही, और उसकी हिफाजत न की गयी हो पतला होकर बह जायेगा। यदि बनिया बाहोश और मेहनती है तो कुछ प्रबंध करेगा जिससे गुड़ ज्यादा खराब न हो; परन्तु यदि बनिया भी

सुस्त है तो गुड़ बहेगा ही। अतः ऐसी स्थिति में जब दोनों ओर की कमी, लापरवाही से काम बिगड़ता है तो यह कहावत कही जाती है। हमारे देश में काम के मामले में ढीलापन इतना अधिक है कि बनिया भी ढीला हो जाता है। ऐसी बात अन्यत्र कदाचित ही मिले। १०५।

कुल्हिया माँ सेतुआ सानै।

छोटे से कुल्हड़ में सत्तू सानना असंभव है और ऐसा प्रयत्न करने वाला अपनी मूर्खता का ही प्रदर्शन करता है। अपनी ओर से तो वह बड़ी होशियारी दिखा रहा है; परन्तु वस्तुतः काम बनता नहीं। उसकी इस होशियारी का परिणाम असफलता है जिसे वह नहीं जानता। समझदार लोग ऐसे मूर्खतापूर्ण प्रयत्नों के परिणाम जानते हैं अतः वे ऐसे लोगों की भर्त्सना करते हैं। १०६।

कूकुर नहवाए बछवा न होई।

व्यर्थ के काम में समय नष्ट करने वाले व्यक्ति की आलोचना इस कहावत में है। कुत्ते को नहलाने में समय लगाना व्यर्थ ही है, क्योंकि वह कुत्ता ही बना रहेगा—गन्दा और अशुद्ध। वह बछड़ा नहीं बन सकता जो पवित्र, पूज्य और स्वच्छ है। सच यह है कि कुत्ता नहाने के बाद धूल में लोट कर फिर गन्दा हो जाता है। उसको नहलाने में समय नष्ट करने से कोई लाभ नहीं। इस सफाई से उसमें सफाई आने वाली नहीं है। वह अपने स्वभाव को नहीं छोड़ सकता। अर्थात बाह्य उपचार से आभ्यंतरिक गुणात्मक परिवर्तन नहीं हो सकता। १०७।

केरा, बीछी, बाँस—अपने जनमे नास।

प्रकृति का विचित्र नियम है कि केला, बिच्छू और बाँस अपने वंश विस्तार से विनष्ट हो जाते हैं। यह एक सामान्य निरीक्षण है, जो मानवीय जीवन पर लागू नहीं होता। कभी-कभी ऐसे कुपुत्र उत्पन्न हो जाते हैं जो औरंगजेब की भाँति अपने जन्मदाता का ही विनाश करने में अपनी सार्थकता समझते हैं, तो ऐसी कहावत की सार्थकता मानव जीवन में भी स्पष्ट हो जाती है—अन्यथा यह प्रकृति की कुछ स्थितियों का वर्णन है। १०८।

कोऊ न मिलै तौ अहिर ते बतलाय।
कुछो न मिलै तो सेतुआ (खिचरी) खाय॥

अहीर बुद्धू, कम अक्ल समझा जाता है। अतः उससे बातें करने से कोई लाभ

नहीं है। जब कोई और व्यक्ति बातचीत के लिए न मिले और बात करनी ही पड़े तो अहीर से बातें करे अन्यथा नहीं। भोजन में सतुआ और खिचड़ी का वही स्थान है जो अहीर का मनुष्यों में है। जब कुछ भी खाने को न मिले तो सतुआ या खिचड़ी खाये। सत्तू या खिचड़ी कोई भोजन नहीं माना जाता है। कमी काम चलाऊ खा लिया। यह कहावत भी अपने वाच्यार्थ में ही प्रयुक्त होती है। १०८।

कोऊ नृप होय हमै का हानी।
चेरी छाँड़ि न होइबै रानी॥

तुलसीदास की मंथरा कैकयी को उदासीन पा कर इन शब्दों का प्रयोग करती हैं। "कोई भी राजा हो मुझे क्या नुकसान है? मुझे तो दासी ही बने रहना है—रानी तो बनना नहीं है।" आकांक्षा और अभिलाषा की प्राप्ति न होने पर मनुष्य निराश होकर जब यथा तथ्यता की स्थिति को स्वीकार कर लेता है तब इस चौपाई का इस्तेमाल करता है। देश के किसान और गरीब लोग इसी उदासीनता के शिकार हैं। सन्तोष में उन्नति बाधित होती है। जब मनुष्य में आकांक्षा ही न होगी तब वह विकास क्या और किस दिशा में करेगा? परन्तु इस चौपाई को दोहराने वाले हमारे देश में आज भी बहुत से लोग हैं। ११०।

कोऊ लाँगड़ कोऊ लूल।
कोऊ चले मटकावत कूल॥

किसी के परिवार में जब उलटे-सीधे व्यक्ति होते हैं जिनके न विचार ठीक होते हैं और न शारीरिक अवयव तो लोग कुछ नफरत से ये पंक्तियाँ कहते हैं। इन पंक्तियों में निन्दा का भाव है जिसमें सारे परिवार को सम्मिलित कर लिया गया है। यह कहावत कम, व्यक्तिगत आक्षेप अधिक है। अधिक से अधिक यह एक वर्णन है जो किसी परिवार के व्यक्तियों की विशेषताओं को प्रकट करती है। १११।

कोहनी है तौ नेरे, पर मुँहै नहीं जाति।

प्रायः बहुत निकट होने पर भी कोई चीज प्राप्त नहीं होती। जिस प्रकार हाथ की कोहनी है तो बहुत पास परन्तु मुँह तक नहीं पहुँचती। यद्यपि कोहनी की मुँह तक पहुँचने से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता परन्तु एक सत्य का उद्घा-

टन अवश्य होता है। यह बिलकुल ठीक है कि कोहनी मुँह में नहीं जाती, जीभ से उसका स्पर्श भी असंभव है। उसी प्रकार जीवन में बहुत-सी चीजें बहुत निकट होते हुए भी प्राप्त नहीं होती। जीवन की यही विडम्बना है। ११२।

कौआ चलै हंस कै चाल !

असुन्दर, कुरूप अथवा बुरा आदमी जब सुन्दर या अच्छे आदमी की नकल कर सुन्दर या अच्छा बनने की कोशिश करता है तब इस कहावत का प्रयोग किया जाता है। इस कहावत में घृणा का भाव बिलकुल स्पष्ट है। वैसे यह ठीक है कि कौआ हंस की चाल नहीं चल सकता या नकल करके हंस नहीं बन सकता परन्तु कभी-कभी मनुष्य अपने आचरणों को सुधार सकता है। परन्तु सामान्य धारणा बुरे व्यक्ति के प्रति इतनी निश्चित और दृढ़ बन जाती है कि उसके सुधार में विश्वास ही नहीं होता। ११३।

कौआ ते कवेलवा सयान।

कौआ बड़ा चालाक होता है। उसका बच्चा भी कम चालाक नहीं होता। जब किसी चालाक आदमी का बेटा भी चालाकी दिखा बैठता है तो लोग उसकी चालाकी को पसन्द करते हुए भी तारीफ का भाव दिखाते हुए कहते हैं—'कौआ से कौए का बच्चा ही सयाना है। यहां पर यह मान लिया गया है कि कौआ तो चालाक है ही परन्तु उसका बच्चा भी सयाना है इसका विश्वास कौए के बच्चे की किसी चालाकी से होता है। बच्चे की चालाकी पर आश्चर्य मिश्रित व्याज निन्दा है। ११४।

कौन राजा राज करी कौन परजा सुख भोगी।

साधारण प्रजा इतने लम्बे अरसे से दुख भोगती आ रही है कि उसकी यह धारणा निश्चित हो गयी है कि कोई भी व्यक्ति राज्य करे प्रजा सुखी नहीं हो सकती। राजा अपने ऐश्वर्य की चिन्ता में रहता है, भोग विलास में तल्लीन रहता है, उसे इस बात की कभी चिन्ता ही नहीं होती कि प्रजा के सुख का भार भी उसी के कन्धों पर है। इस कहावत में निराशा का भाव व्यक्त हुआ है। कौन ऐसा राजा राज्य करेगा कि प्रजा सुखी होगी? कथन के ढंग से ही उत्तर मिल जाता है कि कोई ऐसा राजा न होगा। ११५।

(ख)

खँटेटी खटिया माँ सोउब ।

खँटेटी खाट में सोने का मतलब है कि तकलीफ में रात बितायी हो या तकलीफ में समय बिताया हो। यह कहावत उस समय कही जाती है जब कोई आदमी बात बात पर खिरभिरा उठता है, या गुस्सा होकर उल्टा-सीधा बकने लगता है। तब उससे पूछा जाता है कि क्या खँटेटी (बिना बिस्तर बिछी) खाट में सोये थे कि बिना बात बिगड़ रहे हो ? नींद लगी थी तो सोने को तो सो गया परन्तु शरीर को आराम की जगह तकलीफ मिली। उसी तकलीफ के कारण वह स्वस्थ मन होकर सोच नहीं सकता और न समझदारी की बात कह सकता है। ११६।

खग जानै खग ही कै भाखा ।

चिड़ियाँ ही चिड़ियों की भाषा समझती हैं। जब किन्हीं दो व्यक्तियों की बातचीत समझ में नहीं आती—जब यह पता नहीं चल पाता कि इन लोगों की क्या योजना है तो समझने की कोशिश करने वाला हार कर यह कहावत कह देता है। अर्थात दुष्टों की भाषा दुष्ट लोग ही समझ सकते हैं, हम जैसे भले लोग नहीं। एक प्रकार के लोग आपस में एक दूसरे के भावों को पढ़ लेते हैं या सही अनुमान लगा लेते हैं। दुष्टता की योजना बनाते रहने वाले लोग एक दूसरे की योजनाओं को बिना बतलाए ही समझ जाते हैं। ११७।

खटि खटि मरै बैलवा बाँधे खायं तुरंग ।

खेती में बैलों को कड़ी मेहनत करनी पड़ती है जिसका पूरा लाभ बैलों को नहीं मिलता। घोड़ा जो खेतों में बिलकुल भी काम नहीं करता, मजे में खाता है। जब काम कोई करे और उसका लाभ कोई अन्य उठाये तो यह कहावत कही जाती है। फिर संयुक्त परिवार की बात सामने आती है। हमेशा ऐसी स्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं जिनमें परिश्रम करने वाला अपने परिश्रम का पूरा लाभ नहीं पाता और कुछ लोग बिना मेहनत किये मजे उड़ाते हैं। जमींदारी प्रथा के अन्तर्गत जमीन्दार भी घोड़े की तरह था जो बैठे खाता था। बहेरहाल हमारी संयुक्त परिवार व्यवस्था में घर घर ऐसे घोड़े बँधे खा रहे हैं। ११८।

खरबा का होब बेवाई का फाटब ,
घर कै खँहेंसि मेहरी का डाटब,
बनरे का दानि मूस का हई।
मेहरि मारै तो केहि ते कही ॥

पैरों में निरन्तर गन्दे पानी में पानी में चलने से खरवा हो जाते हैं। अँगुलियों के जोड़ों के पास कट जाता है जो बहुत पीड़ादायक होता है। घर का झगड़ा, स्त्री द्वारा डाटा जाना, बन्दर का दान और चूहों की मुसीबत और औरत द्वारा मार खाना—ये ऐसे दुख हैं, जिनकी चर्चा करने में भी शर्म आती है। ऐसी मानसिक स्थिति में मनुष्य को भयंकर पीड़ा होती है। ये पीड़ाएँ खरवा और बेवाई की पीड़ा के समान ही दुखदायी है। ११८।

खरी मँजूरी चोखा (चौकस) काम।

स्पष्ट है—पूरी मजदूरी करो और पूरे पैसे लो। यही आदर्श स्थिति है। पैसे देने वाला इसीलिए कभी पूरी मजदूरी नहीं देना चाहता क्योंकि मजदूर कामचोरी भी करता है। तब पैसे देने वाला इस कहावत के द्वारा प्रकट करना चाहता है कि अगर खरी मजदूरी करते तो पूरा पैसा मिलता। इसी कहावत को मजदूर भी कह सकता है। जब उसे पूरे पैसे नहीं मिलते तो वह कहता है कि जब उसने चौकस यानी अच्छा काम किया है तो अच्छी मजदूरी क्यों न मिलनी चाहिए। बात दोनों तरफ बराबर है। एक ओर चौकस काम की माँग है और दूसरी ओर खरी मंजूरी की माँग है। दोनों अपना अपना काम करें कोई झगड़े की बात नहीं है। १२०।

खायँ भीम हगैं सकुनी।

बड़ी मजेदार कहावत है। जब खाने की बात हो तो भीम और जब तकलीफ उठाने की बात हो तो सकुनी। भीम बड़े खाऊवीर थे। जितना वे खा जाते थे उतना हगने में बड़ी तकलीफ होती। वह सकुनी पर मढ़ा जाये। असंभव तो है ही। इसीलिए व्यंग्यार्थ से अर्थ हुआ कि मजा मारने के लिए तो भीम और तकलीफ उठाने के लिए सकुनी। दो भाई या दोस्तों में ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है जब एक हमेशा फायदा उठाता है और दूसरा हमेशा तकलीफ, और वह भी अपने भाई या दोस्त के कारण तो यह कहावत चरितार्थ होती है। सकुनी भीम के मामा थे। हमारे यहाँ मामा भानजे में खाने को लेकर बहुत हास-परिहास होता है। यह कहावत उस रिश्ते के अनुकूल ही परिहास पूर्ण भी है। १२१।

खाय कै परि रहै मारि कै टरि रहै।

यह नीति वाक्य है। खाना खाकर आराम करना चाहिए और मार कर ठहरना नहीं चाहिए। भाग जाना चाहिए। खाना खाकर आराम करने से स्वास्थ्य ठीक रहता है और मार कर भाग जाने से खुद मार खाने से बच सकता है। मार कर भाग जाने से व्यक्ति कम से कम उस समय तो मार खाने से बच ही जाता है। बाद की बाद में देखी जायेगी। १२२।

खाय कै मूतै सूतै बायें।
तेहि घर बैद कबौं न जायें।

स्वास्थ्य सम्बन्धी उक्ति है। भोजन करके तुरन्त पेशाब करना चाहिए और बायीं करवट लेटना चाहिए। ऐसा करने वाला कभी बीमार नहीं पड़ता। भोजन करने से और साथ में पानी पीने से यूरीन ब्लैडर पर दबाव बढ़ जाता है। उसे दूर करने से 'किडनी' की प्रक्रिया ठीक रहती है। और नये आये हुए मूत्र के लिए स्थान भी बन जाता है। बाएँ लेटने से लीवर पर दबाव नहीं पड़ता और लीवर में आने वाले रस बराबर भोजन में मिलते रहते हैं जिससे पाचन क्रिया को मदद मिलती है। अतः यह कथन सर्वथा उचित है जिसके पालन करने से साधारण पाचन सम्बन्धी रोग उत्पन्न नहीं होते। १२३।

खिसियानि बिलारी खम्भा नोचै।

बिल्ली अपने शिकार के छूट जाने पर खिसिया जाती है; पर कुछ कर भी नहीं सकती। इसलिए झुँझलाहट में खम्भे में ही पंजे मारती है। बिल्ली प्रायः अपने पंजे तेज करती रहती है। शिकार छूटने या न छूटने से कोई सम्बन्ध नहीं। बिल्ली के इस स्वाभाव को उसकी असफलता से जोड़ कर एक रोचक कहावत बना डाली। इस कहावत में बिल्ली का स्वभाव कम मानव स्वभाव अधिक व्यक्त होता है। मनुष्य खिसिया कर झुँझलाहट में उल्टे-सीधे काम करने लगता है। १२४।

खेती करै अधिया।
न बैल मरै न बधिया॥

आजकल तो नियम बन गया है कि अधिया या बँटाई की खेती नहीं होगी। खेत मालिक जमीन को किसी किसान को दे देता था। और वह किसान जोतता, बोता, निराता, ओसाता था। जमीन के भाड़े के रूप में वह पैदावार का आधा

हिस्सा मालिक को दे देता था। इसमें सारी मेहनत, मजदूरी, जोताई-बोवाई किसान की लगती थी। इसलिए मालिक को बिना कुछ किये, बिना बैल-बधिया अन्न मिल जाता था। मालिक की दृष्टि से यह बड़े ही फायदे का सौदा था। यही बात इस कथन में कही गयी है। परन्तु अब यह पद्धति लगभग समाप्त प्राय है। बिना किसी प्रकार की तकलीफ उठाये फायदे में हिस्सा पाना। १२५।

खेती करै बनिज का धावै।
ऐसा डूबै थाह न पावै॥

इस कथन में भी बड़े महत्व की बात कही गयी है। कृषि और वाणिज्य दोनों एक साथ नहीं सधते। खेती में ही इतना समय और परिश्रम लगता है कि व्यापार के लिए समय नहीं बच पाता। दोनों पर यदि पूरा ध्यान न दिया गया तो काम बिगड़ जाता है। अनुभव की बात है। मेरे मित्र ने एक बार ऐसा ही किया और उपर्युक्त कथन के अनुसार ही घाटा उठाया और परेशानी उठायी। ये दो काम ऐसे हैं जिनमें अधिक समय देना पड़ता है। एक साथ दो काम नहीं हो सकते। कृषि और व्यापार तो बिलकुल नहीं। यह एक प्रकार की चेतवानी है। १२६।

खेती करै साँझ घर सोवै।
काटै चोर, हाथ धरि रोवै॥

खेती करने वाला व्यक्ति चैन से घर में सो नहीं सकता। उसे खेतों की निगरानी भी करनी पड़ेगी। दिन में चिड़ियों और राहगीरों से रात में पशुओं और चोरों से। अगर किसान घर में सो गया तो, कोई भी चुरा कर खेत काट ले जायेगा। अतः किसान को न केवल दिन में जोतने, बोंने, सींचने, निराने, काटने इत्यादि में परिश्रम करना पड़ता है, बल्कि रात में रखवाली करनी पड़ती है। इस प्रकार किसान को अपना सारा जीवन खेतों को अर्पित कर देना पड़ता है। यदि किसान ऐसा नहीं करता तो दुख पाता है। कृषि सम्बन्धी जीवन के कटु अनुभवों के आधार पर यह चेतवानो है। १२७।

खेती, पाती, बीनती औ छोड़े कै तंग।
अपने हाथ सँवारिये, लाख लोग होय संग॥

खेती, पत्र लेखन, प्रार्थना, घोड़े की तंग (पेटी) बाँधना इत्यादि कार्य मनुष्य को

खुद अपने हाथ से करना चाहिए। भले ही लाखों आदमी तैयार हो काम करने के लिए; परन्तु इन मामलों में दूसरों पर निर्भर नहीं रहना चाहिए। खेती बिगड़ जायेगी, पत्र की सूचनाएँ प्रचारित हो जायेंगी, प्रार्थना का प्रभाव न होगा और घोड़े की तंग यदि ढीली बाँधी गयी तो घातक सिद्ध होगी। अतः नीति के इस दोहे के अनुसार इन कार्यों को स्वयं करना चाहिए। अनेक कर्त्ताओं वाली यह एक महत्वपूर्ण कहावत है। १२८।

खेतु खाय गदहा मारु खाय जुलहवा।

गधे से भी ज्यादा मूर्ख या सीधा होता है जुलाहा-नहीं तो गधे के खेत खाने पर वह क्यों मार खाये? परन्तु कहावत का उद्देश्य यह है कि नुकसान कोई करे और सजा कोई और पाये। यदि खेत गधे ने खाया है तो सजा भी गधे को मिलनी चाहिए। परन्तु दुनिया ऐसी विचित्र है कि यहाँ न्याय नहीं—निर्दोष व्यक्ति अपने भोलेपन के कारण नुकसान उठाते हैं। इस संसार में सीधे सरल व्यक्ति को हमेशा कष्ट उठाने पड़ते हैं। १२९।

खोदिन पहाड़ु निकसी चुहिया।

अधिक परिश्रम करने पर भी परिणाम बहुत नगण्य हो। पहाड़ खोदने पर चूहे का निकलना, परिश्रम व्यर्थ जाने के समान है। वह भी चूहा नहीं निकला, चुहिया निकली। ऐसे परिश्रम से मनुष्य को बड़ी निराशा हो जाती है और वह परिश्रम से कतराने लगता है। बहुत परिश्रम करने पर भी जब परिणाम सन्तोष-प्रद नहीं होता तब इस कहावत का प्रयोग होता है। यह व्यंग्यात्मक उक्ति है। १३०।

खौरही कुतिया रेशम कै झूलि।

खजही कुतिया के लिए रेशम की झूल (पोशाक)! कुत्तों के यदि खाज हो जाती है तो बड़ी मुश्किल से बचते हैं। खजहे कुत्ते की शोभा ही क्या? अर्थात वास्तविकता तो कुछ नहीं पर प्रदर्शन बहुत बड़ा। या जब कभी किसी रद्दी या साधारण बात को बहुत महत्वपूर्ण बताने की कोशिश की जाये और बड़ा दिखाव और तमाशा किया जाये तो यह कहावत कही जाती है। अथवा जब कोई साधारण व्यक्ति या गरीब व्यक्ति बहुत सजधज से या बनाव शृंगार से प्रकट होता है तो सामान्यतः लोग इस व्यंग्य वाक्य से उसका स्वागत करते हैं। गहरी चोट करने वाली कहावत है। १३१।

(ग)

गगरी माँ दाना, सूदु उताना ।

कहावत के कहने के ढंग में शूद्रों के प्रति बड़ी घृणा का भाव व्यक्त किया गया है । शूद्र लोग अर्थात गरीब किसान । जब इनके पास थोड़ा अन्न हो जाता है तो इन्हें बड़ा अभिमान हो जाता है । सीधे मुँह बात नहीं करते । और अन्न के समाप्त हो जाने पर फिर घिघियाते फिरते हैं । मनोवैज्ञानिक सत्य है कि जिस व्यक्ति ने अपने जीवन में अभाव ही देखा है, एक बार धन पाकर वह अपने को और अपनी असली स्थिति को भूल जाता है । ये लोग गरीब हैं, जो कभी कुछ मिल गया तो इतराने लगते हैं । यह बात सही तो है पर जिस वर्ग द्वारा कही गयी है वह वही वर्ग है जो उस समय उनसे लाभ नहीं उठा पाता अतः उस वर्ग को शूद्रों का धनी होना बुरा लगता है । गरीब को साहूकार अपने प्रति विनम्र बनाये रखने के लिए इस कहावत का प्रयोग करता है । १३२ ।

गड़रिया के अस चूतर भुई माँ नहीं लागत ।

यह एक साधारण निरीक्षण पर आधारित है । प्रायः यह देखा गया है कि गड़रिया जमीन पर कभी नहीं बैठता । बैठने के पहले वह अपने चूतड़ों के नीचे कुछ न कुछ अवश्यक रख लेता है । कुछ न मिला तो अपना डण्डा ही रख लेगा— लोटा ही रख लेगा । परन्तु दूसरी बात ध्यान देने की है कि गड़रिया अपने गल्ले के साथ भटकते रहने के कारण एक स्थान पर जम कर बैठ नहीं सकता । इस लिए यह कहावत उन लोगों के बारे में कही जाती है जो अस्थिर हैं और थोड़ी देर भी एक जगह स्थिरता से बैठ नहीं सकते । अथवा उन लोगों के लिए कपड़ों के मैले होने के डर से जमीन पर बैठने से झिझकते हैं । १३३ ।

गदहा कै दोस्ती लातन का सनसनाहटा ।

गधे की दोस्ती में लातों के प्रसाद के सिवाय और क्या मिलने वाला है ? अर्थात जिस प्रकार के व्यक्ति के साथ दोस्ती की जायेगी उसी प्रकार की स्थितियों का उसे सामना करना पड़ेगा । बेवकूफों की दोस्ती में अक्सर तकलीफें उठानी पड़ती हैं । इसीलिए समझदार लोगों ने हमेशा दोस्ती के मामले में बहुत सतर्कता बरतने को आवश्यकता बताई है । बड़ी ही रोचक उक्ति है । भरपूर व्यंग्य छिपा हुआ है । १३४ ।

गदहा खवाये पाप न पुन्नि।
बूढ़ खवाये गाँठि ते दीन॥

गधे को खिलाने से कोई फल नहीं होता, न पाप न पुण्य। उसी प्रकार वृद्ध खिलाने से व्यर्थ का खर्च होता है, उससे कोई लाभ नहीं होता। वृद्ध इस कहावत को अक्सर दोहराते रहते हैं—कि उनके ऊपर खर्च करने से कोई लाभ नहीं। आर्थिक दृष्टि से और अर्थशास्त्र के अनुसार वृद्ध 'नॉनऐंटिटी' होते हैं क्योंकि देश या समाज की आर्थिक स्थित में वे कोई सुधार नहीं कर सकते परन्तु उनका पालन-पोषण अनावश्यक नहीं बताया गया है। कभी-कभी वृद्धों की देखभाल करते करते जी ऊब जाता है, उनकी विचित्र माँगें और बच्चों की-सी जिद कष्टदायी हो जाती है, और सेवा करने वाले के मन में ऊब भर जाती है। "मरै न माचा छोड़ै" ऐसे भाव आने लगते हैं; परन्तु समझदारी के साथ रहने पर किसी की ओर से ऐसी भावना नहीं आनी चाहिए परन्तु जीवन का कठिन समस्याएँ इस क्रूर स्थिति को भी जन्म देती है। वृद्ध को खिलाने से कोई लाभ नहीं क्योंकि वह कुछ ही दिनों का मेहमान है और वह बदले में कुछ नहीं दे सकता। १३५।

गदोरिया माँ सरसों जमाउब।

जल्दबाजी करने के समय इस कहावत का उपयोग होता है। हाथ की गदेली में सरसों तो क्या कुछ भी नहीं उग सकता। परन्तु जब कोई व्यक्ति इसी प्रकार जल्दबाजी करता है और असंभव को संभव करने के यत्न करता है तो 'गदोरिया में सरसों जमाने' के समान असंभव कार्य करता है। हर काम में समय लगता है। इस जल्दबाजी पर और भी कहावतें बन सकती थीं परन्तु खेतिहर लोग अपनी कहावतों के प्रतीक अपने जीवन के अनुभवों से ही लेंगे। १३६।

गम खाय कम खाय।
हाकिम हकीम के पास कबहूँ न जाय॥

यह सीखपूर्ण दोहा है। कम खाने पर पेट ठीक रहेगा और पेट के ठीक रहने पर व्यक्ति निरोग्य रहेगा। रोग न होने से हकीम के पास जाने की जरूरत न पड़ेगी। गम खाने से या बरदास्त करने से कभी झगड़ा नहीं होगा। और यदि झगड़ा न होगा तो हाकिम या अफसर या जज के सामने उपस्थित नहीं होना पड़ेगा। इन दो व्यक्तियों के पास जिस व्यक्ति को न जाना पड़े तो वह बड़ा सुखी है। हाकिम या हकीम किसी के पास भी जाना बहुत कष्टप्रद और

खर्चीला होता है। अतः यदि मनुष्य इन तकलीफों से बचना चाहता है तो इन दो बातों पर ध्यान दे। सीधा-सा नुस्खा है, परन्तु सभी इसका पालन नहीं कर पाते। १३७।

गवा मर्दु जो खाय खटाई।
गई नारि जो खाय मिठाई॥

खटाई खाने वाला मर्द और मिठाई खाने की शौकीन औरत का जीवन बिगड़ जाता है। निश्चित एवं मर्यादित मात्रा में खटाई-मिठाई खाने में किसी को नुकसान नहीं है; परन्तु लत पड़ जाने पर मर्यादा से बाहर खाने पर अहित अवश्य होता है। मिठाई खाने की शौकीन धीरे-धीरे घर गृहस्थी की चीजें बेंच कर मिठाई खायेगी और गृहस्थी बरबाद कर देगी। उसी प्रकार मर्द, खटाई की आदत पड़ जाने पर, ठीक से भोजन नहीं करेगा और वहीं या उस स्थान के पास रहने की कोशिश करेगा जहाँ खटाई हो। खटाई तम्बकू, बीड़ी, सिगरेट या सुपारी पान की तरह बाँध कर सब जगह ले नहीं जायी जा सकती। और मर्द को बाहर के ही काम दिन भर करने पड़ते हैं। केवल भोजन के समय और रात में ही मनुष्य घर आता है। खटाई की आदत पड़ जाने पर उसके लिए बाहर के काम मुश्किल हो जायेंगे। वीर्य एवं पुरुषत्व का सम्बन्ध मिठाई से है, खटाई से हानि होती है। स्वभावतः पुरुष मिठाई और स्त्रियाँ खटाई अधिक खाती हैं। १३८।

गरीब कै जवानी, गरमी का घामु।
जाड़े के चाँदनी, देय न कामु॥

गरीब की जवानी किस काम की? दूसरे की सेवा टहल, मेहनत मजदूरी में खप जाती है। वह जवानी का मजा नहीं उठा सकता। गर्मी का घाम भी इतना अधिक और तेज होता है कि किसी काम नहीं आता। जाड़े का घाम यानी धूप बड़े काम की होती है। कम से कम ठण्डी से बचने के लिए काम देती है। जाड़े के मौसम की चाँदनी भी बेकार है, क्योंकि सर्दी के कारण और पाला या ओस के कारण चाँदनी के समय कोई बाहर नहीं निकलता चाहता। चाँदनी रात और भी अधिक ठण्डी होती है। अर्थात ये तीनों चीजें बेकार होती हैं। किसी काम नहीं आतीं। यह भी अनेक कर्त्ताओं वाली कहावत है। १३९।

गरीबी में आटा गील।

एक तो वैसे ही गरीबी है ऊपर से जो थोड़ा आटा था वह भी गीला हो

गया। अब कैसे रोटी बने और भूख मिटे। जब कठिनाइयों में और भी कठिनाइयाँ बढ़ जाती हैं तो इस कहावत का प्रयोग किया जाता है। उस पीड़ा का अनुमान कीजिये जिस समय मामूली-सा सहारा भी टूट जाता है और मनुष्य निराधार और बेसहारा हो जाता है। उसने सोचा होगा कि जो कुछ भी थोड़ा सा आटा है उसकी एक-आधी रोटी बनाकर अपनी कुछ भूख शान्त करेगा; परन्तु वह भी सम्भव नहीं, क्योंकि आटा गीला हो गया। अब रोटी नहीं बन सकती। एक मात्र सहारा भी टूट गया। १४०।

गाँड़ि खौरही मखमल का धागा।

यह कहावत 'खौरही कुतिया मखमल कै झूल' के समान ही है। परन्तु इसमें व्यक्ति के शरीर की ओर विशेष संकेत है। अर्थात् स्वयं तो कुरूप है परन्तु अच्छे अच्छे कपड़े पहनकर अपनी कुरूपता छिपाना चाहता है और खेत की 'घोख' के समान दिखाई देता है। इस प्रकार जब कभी गंदे, कुरूप लोग बड़ा साज सिंगार करते हैं तो इस कहावत को चरितार्थ करते हैं। प्रायः यह देखा गया है कि जो कुरूप या असुन्दर होते हैं वे शृंगार भी अधिक करते हैं। काले या साँवले लोग अपने कालेपन को छिपाने के लिए पाउडर-क्रीम का अधिक इस्तेमाल करते हैं। १४१।

गाँड़ि गंधाय माँग सेंदुर माँगे।

यह कहावत ऊपर की कहावत के समान ही है, परन्तु इसका क्षेत्र स्त्रियों का है क्योंकि माँग में सेन्दुर लगाने की बात औरतों से ही सम्बन्ध रखती है। दूसरा अन्तर यह है कि इसमें गन्दगी की ओर संकेत है। माँग में सेन्दुर भर कर और बाल बनाकर दर्शनीय बनने के प्रयत्न तो बहुत जोरों पर किये जाते हैं परन्तु शरीर की सफ़ाई की ओर ध्यान नहीं दिया जाता। शरीर गन्दा रखा जाये और केवल मुँह को चिकना चुपड़ा रखने वाली स्त्रियाँ इस कहावत की अधिकारिणी हैं। यहाँ भी प्रदर्शन भावना पर कटाक्ष किया गया है। १४२।

गाँड़ि चियाँ असि हाथिन का बयाना।

सामर्थ्य बहुत कम परन्तु बड़े-बड़े दावे। कहावत में Homosexuality या लौंडे बाजी का आधार लिया गया है। लौंडे बाजी हमारे देश में काफी प्रचलित है विशेष रूप से उत्तर भारत में। यह बहुत ही असामाजिक, अप्राकृतिक

और अनुचित कृत्य माना जाता है। सभी इसे घृणा की दृष्टि से देखते हैं परन्तु फिर भी यह सर्वत्र प्रचलित है। पश्चिम में भी, 'होमो सैक्सुएलटी' प्रचलित है। कोई छोटा लड़का किसी तगड़े आदमी से मज़ाक वगैरह करता है, तो वह तगड़ा आदमी इस कहावत को कह देता है। वैसे इस कहावत का व्यंग्यार्थ बहुत अर्थपूर्ण है। सामर्थ्य के ऊपर कार्य करने के दावे करने वाले पर इस कहावत से सीधी चोट की जाती है। १४३।

गाँड़ि माँ गूं नहीं नौ सौ सोरी न्यौतै जायँ।

यह कहावत सामर्थ्य से सम्बन्ध रखती है। सुअर पाखाना खाते हैं। गाँवों में लोग बाहर पाखाने जाते हैं। सुअर सफाई करते रहते हैं। इसी तथ्य के आधार पर कहावत की रचना हुई है। सामर्थ्य के बाहर काम करने के प्रयत्न पर इस कहावत का प्रयोग किया जाता है। लोक साहित्य एवं लोकोक्तियों के प्रति अभद्रता और अश्लीलता का दोषारोपर्ण सवर्था निरर्थक है। सीधापन लोक साहित्य की प्रमुख विशेषता है। १४४।

गाँव का जोगी जोगड़ा आनि गाँव का सिद्ध।

घर की मुर्गी दाल बराबर। ये दोनों कहावतें समानार्थी हैं। परन्तु भिन्न सन्दर्भों से प्रकट हुई हैं। जो सरलता से सुलभ है उसका मूल्य कम होता है। गाँव में रहने वाला साधू या साधक क्योंकि सरल सुलभ है इसलिए गाँव वालों की निगाह में उसका कोई महत्व नहीं है। परन्तु अन्य गाँव का 'जोगड़ा' (बना हुआ साधू) भी सिद्ध माना जाता है। दूसरी बात भी दृष्टव्य है : अति परिचय से व्यक्ति के गुण छिप जाते हैं और दुर्गुण अधिक ध्यान में आते हैं और जिसके बारे में केवल सुना है, कल्पना उसके बारे में बहुत-सी बातें गढ़ लेती है। इसलिए दूसरे गाँव का नकली साधू भी सिद्ध के रूप में मान्य होता है और अपने गाँव का सिद्ध नकली साधू मालूम होता है। १४५।

गाई मरे खरु होई तौ काहे लागै।

गाय के मर जाने पर खर, घास होगी तो क्या फायदा ? "Doctor after death" वाली कहावत की भाँति है। गाय के ब्याने पर उसे एक विशेष प्रकार की हरी घास या खर खिलाया जाता है जिससे वह झर जल्दी डाल देती है। ऐसे अवसर पर उस 'खर' या चारे का विशेष महत्व है। हरेक के घर में वह घास

हमेशा नहीं होती। इसीलिए जिसकी गाय ब्याती है वह दूसरे के यहाँ से माँग लाता है। देने वाला हीले हवाले करता है—थोड़ी देर में ले जाना इत्यादि, तब इस बात की आवश्यकता होती है। अपने कहावत रूप में इसका सार्थक भाव यही है कि समय पर आवश्यक चीज न मिली और बाद में मिली भी तो क्या लाभ ? केवल भूख से मरने वाली गाय के आधार पर भी इस कहावत की रचना हो सकती है। १४६।

गाय न बाछी नींद आवै आछी।

कोई जिम्मेदारी न हो तो मनुष्य सुख को नींद सोता है। गाय-बछड़ा पालना इसी प्रकार की जिम्मेदारियाँ पालना है जिनकी चिन्ता से मनुष्य का सुख चैन कम हो जाता है। तात्पर्य यह कि दायित्वहीन निश्चिन्त व्यक्ति जीवन में सुख-चैन से रहता है। इस कहावत का प्रयोग प्रायः ऐसे व्यक्ति पर व्यंग्य रूप में किया जाता है जो जीवन के दायित्वों से मुक्त है। 'आगे नाथ न पीछे पगहा' कहावत इसी भाव को व्यक्त करती है। ऐसे निश्चिन्त लोग प्रायः आवारा हो जाते हैं और प्रायः असामाजिक कार्य भी करने लगते हैं। १४७।

गीत-बान गे बिसरि जब बिटिया भै तीसरि।

बच्चे के होने पर गीत होते हैं और यदि अच्छे नक्षत्रों में बच्चा न हुआ तो दान-दक्षिणा भी दी जाती है। विशेष रूप से मूलों में सन्तान के पैदा होने पर मूल शान्त कराने पड़ते हैं। परन्तु जब तीन-तीन लड़कियाँ पैदा हो जायें तो यह सब भूल जाता है। तीन लड़कियों का हो जाना गृहस्थ के लिए बड़ी समस्याओं का पैदा हो जाना है। विवाह में दहेज प्रथा के कारण और लड़की के बाप की निम्न स्थिति होने से अपनी सन्तान ही समस्या प्रतीत होने लगती है। एक-दो लड़की तक तो ठीक था पर जब तीसरी सन्तति भी लड़की हुई तो दुर्भाग्य का उदय मान लिया जाता है। १४८।

गुजरा गवाहु और लौटा बराती (कोऊ नहीं पूछत)।

बड़ी सच्ची कहावत है। गवाह की इज्जत उस समय तक होती है जब तक उसने गवाही नहीं दी। गवाही देने के बाद उसकी उपयोगिता पूरी हो जाती है। अतः तब उसकी कोई चिन्ता नहीं करता। उसी तरह बराती की भी लौटते समय कोई कदर नहीं करता। उसकी भी उपयोगिता पूरी हो चुकी होती है। बरात

की शोभा पूरी हो गयी—अब बराती अपना रास्ता नापे। बहुत ही सही निरीक्षण है। जब किसी व्यक्ति की उपयोगिता पूरी हो जाती है और फिर उसका मान नहीं होता तो बस कहावत का उपयोग किया जाता है। १४९।

गुरु खायँ गुलगुला ते परहेज करें।

गुड़ खाने वाले को गुड़ से बनी हुई चीजों से क्या परहेज। यदि गुड़ खाने से नुकसान नहीं होता तो गुड़ से बनी हुई चीजों से और भी कम नुकसान होगा। अतः परहेज करना व्यर्थ है। जब कोई एक काम तो करता है परन्तु उसी से सम्बद्ध दूसरा कार्य करने से इनकार करता है तब इस कहावत का प्रयोग किया जाता है। प्रायः लोग दिखावा करते हैं कि वे अमुक कार्य नहीं करते परन्तु वैसे ही दूसरे निकृष्ट कार्य करते हैं ऐसे अवसर पर इस कहावत का प्रयोग किया जाता है। १५०।

गुरु ते भरै तौ माहुर काहे देय।

व्यर्थ में अपयश क्यों लिया जाय। यदि बिना अपयश या बदनामी के कोई काम बनता हो तो वैसा ही करना चाहिए। उद्देश्य यदि किसी की हत्या है तो ऐसे क्यों न मारा जाय जिससे अपराध न लगे। दूसरा अर्थ जो इस कहावत से निकलता है वह यह कि यदि मीठा बोलने से काम बनता हो तो कड़ुआ क्यों बोला जाय? अपना उद्देश्य हल होना चाहिए और वह यदि बिना दुश्मनी मोल लिए, या बदनामी से बच कर हो सकता है तो व्यर्थ में बदनामी क्यों मोल ली जाय और दुश्मन पैदा किये जायें?। १५१।

गुरु तौ गुरुइ रहिगे चेला सक्कर होइगे।

जब बड़े से छोटा आगे निकल जाता है या अधिक सफल अथवा योग्य निकलता है तो इस कहावत का इस्तेमाल होता है। गुरु तो गुड़ ही रह गये परन्तु शिष्य शक्कर हो गये। जब अनपेक्षित ढंग से ऐसा हो जाता है तो कहावत बिलकुल ठीक चस्पाँ हो जाती है। प्रायः शिष्य गुरु से आगे बढ़ जाते हैं। १५२।

गुरु भरा हँसिया।

एक ओर लाभ परन्तु दूसरी ओर नुकसान भी है। गुड़ तो मिल रहा है; परन्तु हँसिया में लगा हुआ है। हँसिया तेज धारदार औजार है और उसमें लगे

गुड़ को पाने के लिए खतरा उठाना पड़ेगा क्योंकि हो सकता है कि धार से गुड़ प्राप्त करने में चोट लग जाये, हाथ कट जाये। एक ओर लाभ है दूसरी ओर खतरा। ऐसी स्थिति में उसे न तो स्वीकार करते बनता है और न अस्वीकार करने की इच्छा होती है। ऐसी द्विधापूर्ण स्थिति में मानसिक चिन्ता इस काहवत में व्यक्त हुई है। १५३।

गूँ के किरवा का गुँएँ माँ नीक लागी।

जो जिस प्रकार के वायुमण्डल एवं स्थितियों का आदी हो जाता है उसको वही अच्छा लगता है। नाली की गन्दगी में रहने वाले कीड़ों को यदि स्वच्छ हवा में रखा जाये तो वे मर जायेंगे। उसी प्रकार मनुष्य भी कुछ विशेष प्रकार की स्थितियों का आदी हो जाता है। अच्छी स्थितियों में रहने पर उसे अच्छा नहीं लगता। आदत से मनुष्य के जीवन में एक प्रकार की सुकरता एवं सहजता उत्पन्न हो जाती है। परिवर्तन भले ही अच्छा हो परन्तु आदत न होने के कारण उसे वह अच्छा नहीं लगता। अतः अच्छी स्थिति में रखने पर भी जब कोई व्यक्ति प्रसन्न नहीं होता तो यह कहावत चरितार्थ होती है। १५४।

घरु अँधेरा मन्दिर माँ दिया बारैं।

घर में तो अन्धेरा है—उस अंधेरे को दूर करने की चिन्ता नहीं है परन्तु मन्दिर में दिया जरूर जलाये जाते हैं। जब व्यक्ति अपने सर्वाधिक निकट के कर्त्तव्यों की अवहेलना करके अन्य कम आवश्यक कार्यों की चिन्ता करता है तो ऐसी ही स्थिति उत्पन्न होती है। जैसे धर्म के नाम दान-दक्षिणा। घर के लोगों को ठीक के भोजन नहीं मिलता; परन्तु उसकी चिन्ता नहीं; दान की चिन्ता है। अपनी चिन्ता मनुष्य यदि स्वयं नहीं करेगा तो कौन करेगा ? अपना काम पूरा करके हो दूसरों का काम अच्छा बनता है। मन्दिर में दिया जलाने वाले बहुत हैं परन्तु अपने घर में यदि हम खुद दिया न जलायेंगे, तो कौन जलायेगा ? अपनी आवश्यकताओं की चिन्ता न कर परोपकार के लिए यत्न करना। अंधविश्वास पर भी कटाक्ष है। १५५।

घर का भेदी लंका ढावैं।

रामभक्त और राम सहायक होने पर भी विभीषण के प्रति जनमानस में कोई सहानुभूति नहीं है। विभीषण नाम का व्यक्ति मिलना असंभव है। जनमानस ने विभीषण को कभी क्षमा नहीं किया क्योंकि उसने न केवल मातृद्वेष किया बल्कि

देशद्रोह किया। उसी के देशद्रोह के कारण लंका नष्ट हुई। विचारणीय बात है कि राम का युद्ध भी धर्म युद्ध थी उसका उद्देश्य पवित्र थी और रावण के अधर्म को नष्ट करने के लिए थी। उसमें सहायता करने वालें अन्य लोगों की भाँति विभीषण का भी समादर होना चाहिए था परन्तु विभीषण के प्रति आदर का भाव नहीं पाया जाता—कुछ सहानुभूति भले ही पायी जाती हो। १५६।

घर के देव ललायें बाहर के पूजा माँगें।

घर अँधेरू मन्दिर मां दिया बारैं—वाली कहावत से यही अर्थ निकलता है। घर के देवता भूखों मरते हैं और बाहर के पूजा पाते हैं। कभी-कभी लोक निन्दा के भय से अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिए हम बाहर वालों का आदर सत्कार करते हैं और पैसे खर्च करते हैं परन्तु घर में सभी लोग भरपेट भोजन भी नहीं पाते। इस झूठी सामाजिक प्रतिष्ठा के रक्षण के विरुद्ध आवाज उठाई गई है। झूठी मर्यादा के लिए सचमुच हम लोग प्रायः अपना बड़ा नुकसान कर लेते हैं। सन्तुलन की आवश्यकता है। १५७।

घर कै खाँड़ खुदुरी लागै चोरी का गुरु मीठ।

घर की अच्छी चीज अच्छी नहीं लगती और चोरी से लाई हुई बुरी चीज भी अच्छी लगती है। गुड़ से खाँड अच्छी होती है; परन्तु वह घर की है इसलिए अच्छी नहीं लगती और चोरी का गुड़ अच्छा लगता है। यह बड़ी स्वाभाविक बात है जिसकी आलोचना की गई है। चोरी के गुड़ में 'एडवेंचर' का मजा शामिल है और घर की खाँड में रोज की ऊब। चोरी से लाये हुए कच्चे अमरूदों में भी बड़ा मजा आता है, घर के अच्छे पके अमरूदों में मजा नहीं आता। कदाचित इसीलिए वैष्णव भक्तों में परकीया-प्रेम को अधिक महत्व दिया था। १५८।

घर कै खुनुस औ ज्वर कै भूख,
छोट दमाद बराहे ऊंख।
पातर खेती भकुआ भाय,
घाघ कहैं दुखु कहां समाय॥

घाघ की बनायी हुई कहावत है, जो बहुत प्रचलित नहीं है। घर में दिनरात की कलह, बुखार के बाद की भूख, छोटा दमाद, बराहे की ऊँख, हलकी खेती, बेवकूफ भाई, इनसे बड़ी तकलीफ होती है। घाघ कहते हैं जिसके घर में ऐसा

हो, उसका दुख अपार है। घर में छोटा दमाद भी काफी गड़बड़ करता है। इसमें कुछ घरेलू चिन्ताओं का उल्लेख है। एक ही क्रिया में अनेक कर्ताओं को गूँथा गया है जिससे कहावत का प्रभाव अधिक हो गया है। १५८।

घर कै बिटिया गुरुहगनी।

अपनी चीज़ सबको पसन्द आती है। परन्तु इसके विपरीत भावना भी उतनी ही स्वाभाविक है। घर की मुर्गी साग बराबर कहावत इसी तथ्य को प्रकट करती है। निकटता के कारण व्यक्ति का मूल्य घट जाता है। १६०।

घर कै मुरगी दालि बराबर।

घर की चीज़ की कीमत घट जाती है। अति सम्पर्क से या घर ही होने के कारण उसके महत्व का अनुभव नहीं होता। ऐसा महसूस होता है कि उसकी कोई विशेष कीमत नहीं है क्योंकि कीमत देकर उसे खरीदा नहीं गया है। घर में मुर्गियाँ पली होती हैं और घटती बढ़ती रहती हैं अतः उनकी कीमत का पता नहीं चलता। हर बार मुर्गी खरीदनी पड़े तो उसकी कीमत का पता चले और अनुभव हो कि मुर्गी की क्या कीमत है। दाल की भी कीमत है परन्तु यहाँ मुर्गी की दाल से इस प्रकार उपमा दी गयी है मानों दाल की कोई कीमत ही नहीं है। दाल भी घर की होगी। दाल की तुलना में मुर्गी की कीमत हमेशा अधिक होती है। १६१।

घर माँ भूंजी भाँग नहीं।

भुनी हुई भाँग हमारे यहाँ घरों में रखी जाती है। दवाई के रूप में भुनी हुई भाँग का प्रयोग होता है। परन्तु जिसके घर में भुनी हुई भाँग भी न हो उसकी गरीबी का ठिकाना नहीं। अब तो केवल कहावत रह गयी है। लोग अब इतना भी नहीं जानते कि भाँग का प्रयोग औषधि के रूप में होता है। कदाचित अंग्रेजी दवाइयों के प्रचार में ऐसा हुआ हो। बहरहाल भूनी भाँग का न होना गरीबी और अभाव का द्योतक है। १६२।

घरी भरे माँ घरु जरै अढ़ाई घरी भद्रा।

आवश्यकता पड़ने पर बहाने बाजी अच्छी नहीं है। इधर तो थोड़ी देर में घर जल कर राख हो जायेगा और उधर अभी पंडित जी भद्रा बता रहे हैं। जब

ढाई घड़ी भद्रा है—अर्थात् बुरा समय है तो घर को जलने में एक घड़ी समय लगेगा। मतलब, पंडितजी के अनुसार अभी कुछ नहीं हो सकता; इतना ही नहीं कुछ और नुकसान भी हो सकता है। जब व्यक्ति कारण वश अधिक प्रतीक्षा नहीं कर सकता; प्रतीक्षा के लिए विवश होना पड़ता है तो अपनी आतुरता में वह कहता है कि घड़ी भर में तो घर जल जायेगा तुम्हारी ढाई घड़ी तक कैसे रुका जा सकता है। भद्रा में कोई व्यक्ति बाहर नहीं जाता क्योंकि ज्योतिष के अनुसार अहित लिखा है। अतः हो सकता है कि पंडित जी आग लगने पर भद्रा के विचार से ढाई घन्टे बाद भद्रा समाप्त होने पर जाने को कहते हों। तब तक घर जलकर भस्म हो जायेगा। १६३।

घरै गुरु होय तौ बहरौ ममाखी लगती हैं।

घर में माल हो—सम्पन्नता हो तो उसके लक्षण बाहर दिखायी दे जाते हैं। अर्थात बहुत से लोग आने जाने लगते हैं। "जहाँ गुड़ होई चींटा औबै करिहैं।" जहाँ मिठाई होगी शहद की मक्खी पहुँचेंगी ही। यह जगत व्यवहार है कि जब तक लक्ष्मी की कृपा होती है, मित्रों और नाते रिश्तेदारों की भी कृपा रहती है। दुनिया पैसे की दोस्त है। इसी प्रवृत्ति पर यह व्यंग्य किया गया है। १६४।

घिउ गिरा तौ खिचड़ी मां।

किसी खराब काम का भी यदि परिणाम अच्छा हो तो उपर्युक्त कहावत चरितार्थ होती है। घी गिरा, पर अगर ज़मीन पर गिरता तो बेकार हो जाता परन्तु खिचड़ी में गिरा जिससे खिचड़ी खाने का मज़ा बढ़ गया। नुकसान हुआ परन्तु उस नुकसान का परिणाम बुरा नहीं हुआ, बल्कि अच्छा ही हुआ। किसी प्रतिकूल स्थिति का भी अच्छा परिणाम हो तो ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है। १६५।

घिउ का लड्डू गोल कि टेढ़।

घी के लड्डू के आकार से कोई प्रयोजन नहीं, क्योंकि वह चाहे किसी भी आकार का क्यों न हो उसके खाने में मजा आता है, और उसकी पौष्टिकता में कोई अन्तर नहीं पड़ता। जब रूप पर या ऊपरी बनावट पर ध्यान न देकर उसके असली गुणों पर ध्यान दिया जाता है तो यह कहावत सार्थक होती है। इसी प्रकार की दूसरी कहावत है—'आम खाने से मतलब है या पेड गिनने से

है।' मतलब जो असली हो उसकी ओर ध्यान देना चाहिए। इधर-उधर की व्यर्थ-की चिन्ताओं में समय नष्ट करने से कोई लाभ नहीं है। उपयोगी वस्तु के रूप आकार का कोई विशेष महत्व नहीं मानना चाहिये। १६६।

घुइसी मँडए चढ़ीं।

मँडए चढ़ना मुहावरा भी है। अर्थात मण्डप चढ़ना। विवाह होना। घुइसी शब्द में दो ध्वनियाँ हैं। एक तो कुरूपता, शरीर का बेडौल होना और अवस्था में अधिक हो जाना। किसी बेडौल, अयोग्य व्यक्ति का, समय बीत जाने पर भी काम बन जाये और बहुत से योग्य व्यक्तियों को काम न बने, वे पिछड़ जायें तो इस कहावत का प्रयोग किया जाता है। अच्छी सुन्दर युवा लड़कियाँ ब्याहने को रह जायें और किसी अयोग्य, कुरूप तथा बड़ी उम्र की लड़की की लग्न चढ़े तो कह देते हैं—घुइसी मँड़ए चढ़ी। १६७।

चटका मघा पटकिगा ऊसरू।
दूधु-भातु माँ परिगा मूसरू॥

मघा नक्षत्र की वर्षा से धरती की प्यास सन्तुष्ट होती है। 'मघा के बरसे माता के परसे।' मघा की बरसात से पृथ्वी तृप्त होती है, क्योंकि तब पानी रिमझिम रिमझिम धीरे-धीरे बरसता है और दिनों तक मघा की फुहारों की झड़ी लगी रहती है। तेज पानी के बरसने से पानी बह जाता है। धरती नीचे तक भीगती नहीं। इसलिए मघा की बरसात से ऊसर भी गीला हो जाता है। परन्तु यदि मघा नक्षत्र में ही वर्षा न हो—धूप निकली रही तो सब ऊसर हीं हो जाता है और फिर अकाल की-सी स्थिति उत्पन्न हो जाती है। मिलने वाला दूध-भात भी नहीं मिलता। मघा की वर्षा का खेती की दृष्टि से विशेष महत्व है। मौसम और उसके प्रभाव से संबंधित यह कहावत बड़ी महत्वपूर्ण है। १६८।

चढ़त जो बरखै चित्रा उतरत बरखै हस्त।
कितनौ राजा डाँड़ लेय हारै नाहिं ग्रहस्त॥

यह भी वर्षा सम्बन्धी कहावत है। चित्रा नक्षत्र के लगने पर और हस्ति नक्षत्र के उतरने पर वर्षा हो तो खेती इतनी अच्छी होती है कि राजा कितना भी डाँड़ (जुर्माना) माँगे गृहस्थ दे सकता है; और उसका अधिक नुकसान नहीं होता। इस कहावत से इसी बात की ओर संकेत है कि हमारी खेती सिंचाई के

लिए वर्षा पर निर्भर है। अब कदाचित नहरों के हो जाने से खेती में अधिक निश्चयात्मकता आ सके। १६८।

चमके पच्छिम उत्तर ओर।
तौ जान्यों पानी है जोर॥

पश्चिम-उत्तर में यदि बिजली चमकी तो समझ लेना चाहिए कि पानी जोरों से आंधी के साथ आने वाला है। हमारे गाँव में इसी को "लखनौऊा लौका" कहते हैं। अर्थात लखनऊ चमका-लखनऊ की दिशा में बिजली चमकी। अब आंधी पानी जरूर आयेगा। लखनऊ हमारे यहाँ से उत्तर-पश्चिम में है। १७०।

चमार का सरगौ माँ बेगार।

बड़ी अच्छी कहावत है। जमीन्दारी प्रथा के अन्तर्गत वैसे सभी बेगार में लगाये जाते थे परन्तु चमार तो हमेशा बेगार में ही रहते थे। जमीन्दार की पालकी उठाना, लकड़ी चीरना और अन्य प्रकार की मजदूरी करना। जमीन्दार अपनी इन सुविधाओं को बनाये रखने के लिए चमारों को खेती के लिए जमीन भी नहीं देते थे। अस्तु, चमारों का धन्धा जमीन्दार की बेगार हो गया था। बेगार का मतलब मुफ्त काम है। केवल भोजन पर काम कराना मजदूरी न देना। चमार का जीवन इतना बेगार से भर गया था कि बेचारे को मृत्यु के बाद स्वर्ग में भी बेगार करनी पड़ी। कोई व्यक्ति जब किसी खास काम को हमेशा करता रहता है, जो उसे पसन्द नहीं होता—वही काम मुक्त होने पर भी करना पड़े तो इस कहावत का उपयोग होता है। १७१।

चलनी माँ दूधु दुहैं दोखु करमन का देयं।

लोग अपने काम करने के ढ़ंग पर विचार नहीं करते और अपने भाग्य को कोसते हैं। चलनी में दूध दुहने पर दूध तो बहेगा ही, फिर अपने भाग्य को कोसने से क्या लाभ कि हमारे भाग्य ही खराब हैं कि हमारी गाय दूध नहीं देती। यह एक ऐसी कहावत है जो भाग्यवाद का विरोध करती है, जिससे पता चलता है कि भारतीय लोक मानस अपनी कमियों के प्रति जागरूक है और बिलकुल भाग्यवादी नहीं है। अपने ढंग और प्रयत्नों को सुधारना चाहता है। १७२।

चले न पावैं कूदैं नारु (कूदन नाम)

जब एक असमर्थ व्यक्ति या कम सामर्थ्यवान व्यक्ति अपनी सामर्थ्य से बाहर

के काम करने की कोशिश करता है। जिस व्यक्ति को साधारण रूप से चलना कठिन है तो वह नाला कैसे फलांग सकेगा ? परन्तु यदि वह ऐसा करता है तो अपना तमाशा बनाता है। कूदन नाम से भी वही ध्वनि निकलती है। दोनों प्रकार से कहावत का प्रयोग होता है। जब कोई दुस्साहस करता है तब इस कहावत को चरितार्थ करता है। १७३।

चले न पावैं रजाई कै फ्याँड़ बाँधें।

यह कहावत भी बिलकुल उपर्युक्त कहावत के समान है। चलना मुश्किल है परन्तु रजाई कमर में लपेटे हैं जिससे चलना और भी कठिन हो जाता है। साधारण सामर्थ्य नहीं है परन्तु तमाम बाधाओं और कठिनाइयों का सामना करना चाहता है। फ्याड—धोती का एक हिस्सा जो कमर में बांध लिया जाता है। रजाई की फेंड़ बहुत भारी होगी और चलने में कठिनाई एवं बाधा उपस्थित करेगी। १७४।

चारि कोस कै आवा-जाही।
लरिका मरिगा ढोवा पाही॥

दूरी के कारण जो असुविधाएँ उत्पन्न हो जाती हैं उनका उल्लेख है। चार कोस अथवा आठ मील आने-जाने और सामान ढो-ढो कर लाने ले जाने में ही हमारे लड़के की हालत ख़राब हो गयी। किसी मित्र या नातेदार ने कृपा करके कोई चीज बिलुकल मुफ्त दी। परन्तु दूरी इतनी अधिक है कि मुफ्त चीज पाने के आनन्द के स्थान पर तकलीफें पैदा हो गयी। तो पाने वाला अपनी इस कठिनाई का उल्लेख करता है और अपने बेटे की मेहनत देखकर दुखी हो उठता है। माल ढोने में ही हमारा लड़का मरा जा रहा है। ध्वनि निकलती है कि ऐसी भी सस्ती या मुफ्त की चीज किस काम की जिसमें इतनी तकलीफ उठानी पड़े। या माल की कीमत से अधिक की चीज खोनी पड़े। लड़के से कीमती तो कोई चीज़ नहीं हो सकती ?। १७५।

चारि कौर भीतर, तब देव और पीतर॥

पेट भरने पर ही देवता और पितृों की बात ध्यान में आती है। अपना पेट भरने पर ही देवता और पितृों को भोजन देने की बात है। दूसरी कहावत है—'भूखे भजन न होयं गोपाला, लीजिए-अपनी कंठी माला।' जब कुछ खाना पेट में गया तब दूसरों का प्रश्न उठता है। भूखे पेट देवताओं और पितृों की चिन्ता

असंभव है, यद्यपि उसका जीवन देवताओं और पितृों की कृपा पर ही निर्भर है। परन्तु यह नितान्त स्वाभाविक है कि मनुष्य अपने जीवन के बाद ही दूसरे के जीवन की चिन्ता करेगा। १७६।

चारि दिन कै चाँदनी फिर अँधियारा पाखु।

जीवन कुछ इसी प्रकार का है। चार दिन तो हँसी-खुशी रहती है, पर अधिकांश जीवन दुख और यातनाओं से पूर्ण रहता है। चाँदनी चार दिन के लिए ही होती है शेष तो अँधियारा पाख ही रहता है। वस्तुतः यह जीवन का निराशावादी एवं दुखवादी दृष्टिकोण है, अन्यथा न तो जीवन इतना रिक्त है और न दुनिया ही इतनी अँधेरी। वस्तुतः अमावस्या के अतिरिक्त महीने में २९ दिन चाँद निकलता है। पूरी अँधेरी रात एक दिन ही होती है। बाकी रातों में तो चन्द्रमा, थोड़ी देर को ही सही, चमकता है। मनुष्य का स्वभाव है कि वह अपने अभावों को बढ़ा कर देखता है और जो प्राप्त है उसके प्रति कृतघ्न बना रहता है। १७७।

चाहे कूकुर पिऐ मुरुक्का।
तऊँ न करु बिस्वास तुरुक्का॥

यह कहावत मुसलमानों के बारे में एक फतवा है। मुसलमान विश्वास योग्य व्यक्ति नहीं होते। ऐसा संभव हो सकता है कि कुत्ता आदमी की तरह पानी पीले (जो कि असंभव है) परन्तु यह संभव नहीं है, कि कोई ऐसा मुसलमान मिल जाय जिस पर विश्वास किया जा सके। यह कुछ दुर्भाग्यपूर्ण स्थितियों के अनुभवों पर आधारित एक निरीक्षण है जो उतना ही गलत हो सकता है जितना सही कहा जा रहा है क्योंकि किसी भी जाति के सभी लोग न तो अच्छे हो सकते हैं और न बुरे। १७८।

चित्थड़ गुद्दड़ सोवैं मर्जाबा बैठे रोवैं।

यह एक श्रेष्ठ कहावत है। गरीब, भिखारी आदमी चैन की नींद सोता है जब कि पैसे वाला हमेशा रोता है। सम्मान एवं प्रतिष्ठा को बनाये रखना बड़ा कष्ट साध्य कार्य होता है। प्रयत्नों के बावजूद ऐसी स्थितियाँ उत्पन्न हो ही जाती हैं, जब मनुष्य अपमानित अनुभव करता है। यह समस्या उन्हीं के समक्ष है जो प्रतिष्ठित हैं और प्रतिष्ठा की चिन्ता करते हैं, परन्तु जिनके समक्ष प्रतिष्ठा

का प्रश्न नहीं है, वे निश्चिन्त होकर रहते हैं। उनके पास खोने के लिए कुछ भी नहीं है, तो चिन्ता किस बात की। १७९।

चीटिउ चली पराग नहाय।

जब साधारण लोग भी बड़े लोगों की भाँति काम करने लगे। प्रयाग नहाने के लिए जाने वाले लोग धार्मिक सवर्ण हिन्दू ही अधिक होते हैं। कम से कम वे ही तीर्थों और ऐसी तीर्थ यात्राओं पर अपना एक मात्र अधिकार मानते हैं। यदि कोई साधारण और अनाधिकारी व्यक्ति वैसा ही करने लगे तो उन्हें पसन्द नहीं आता। ऐसे अनाधिकार कार्य करने वालों पर यह व्यंग्य कसा गया है। चींटो भी प्रयाग स्नान करने चली। वक्ता के मन की घृणा चींटी शब्द के प्रयोग से स्पष्ट हो जाती है। बड़ी क्रूरता और कठोरता के साथ वह अपने वर्ग के एकाधिपत्य को बनाये रखने के लिए दूसरे वर्ग के व्यक्ति का अपमान करता है। १८०।

चींटी का मूत पैराओ बड़ा भारी।

जब कोई व्यक्ति छोटे-सा काम करने में होले हवाले करता है, कठिनाइयों का उल्लेख करता है। चींटो पता नहीं मूतती भी है या नहीं, परन्तु मूतती होगी भी तो कितना? और उसको तैर कर पार करने की बात करना, इस कहावत की आवश्यकता रखता है। कुछ काम चोर लोग अक्सर काम करने से मुँह चुराते हैं और छोटे से छोटे काम करने में बड़ी कठिनाइयाँ बतलाते हैं। ऐसे काम चोरों पर यह व्यंग्य है। १८१।

चीत के बरखे तीनि जायँ मोथी, मास, उखार।

चित्रा नक्षत्र की बरसात से तीन प्रकार की खेती का नुकसान होता है—मेथी, मास (लोबिया) और ईख। यह कथन बहुत सही नहीं है। प्रायः ऐसा नहीं भी होता। खेती के बनने-बिगड़ने में बरसात के अतिरिक्त और भी बहुत-से कारण होते हैं। हर खेत की स्थिति भी अलग-अलग होती है। हो सकता है कि चित्रा में बरसात से इन खेतों को लाभ हो। फिर भी यह एक मान्य कहावत है जिस पर किसान काफी ध्यान देते हैं। १८२।

चीलरन के डेरु ते कथरी नहीं फेंकी जाति।

चिलुओं के डर से कथरी नहीं फेंकी जाती। उसको साफ कर लिया जाता है। जीवन में अनेक प्रकार की कठिनाइयाँ उत्पन्न हो जाती हैं, उनका सामना

किया जाता है। उनके डर से कोई आत्महत्या नहीं कर लेता। शरीर में अनेक दोष उत्पन्न हो जाते हैं उनका उपचार किया जाता है, शरीर का अन्त नहीं किया जाता। उपयोग की चीजों में बहुत सी खराबियाँ पैदा हो जाती हैं, परन्तु उन खराबियों को दूर किया जाता है, उन खराबियों की वजह से उस चीज को ही नहीं फेंक दिया जाता। यदि किसी गाँव में बहुत तकलीफ मिलती है और वहाँ के लोग उसे बहुत सताते हैं तो भी वह साहस से वहीं डटा रहता है और कहता है कि चिलुओं के डर से कथरी नहीं छोड़ी जाती। चिलुए एक प्रकार के छोटे-छोटे काटने वाले कीड़े हैं जो गन्दगी के कारण कपडों में हो जाते हैं। १८३।

चील्ह के घर माँ मांस कै धरोहर।

धरोहर या थाती या अमानत उसी के पास रखी जाती है जो उसे हिफाजत से देख सके। इस बात का भी ध्यान रखना पड़ता है कि किस चीज की धरोहर किसके यहाँ रखी जाये। चील्ह का भोजन है गोस्त। यदि उसके पास गोस्त की अमानत रखी जायेगी तो अमानत में खयानत निश्चित है। इसी प्रकार की दूसरी कहावत है कि 'बिलारिन का मितूर सौंपब।' बिल्लियाँ सब खा-पीकर समाप्त कर देंगी। परन्तु यदि चील्ह के पास कोई अन्य वस्तु रखी जाये जिसका उपयोग वह नहीं करती तो वह वस्तु सुरक्षित रख सकती है। ऐसा विचार न करके गलत लोगों को अमानत सौंपने वाले लोगों पर यह कहावत कही जाती है। १८४।

चुपरी औ दुई दुई।

मात्रा और गुण दोनों का एक साथ पाना कठिन है। यह पाना कठिन है कि कोई चीज अच्छी भी हो और मात्रा में अधिक भी। रोटियाँ अधिक मिल सकती हैं पर घी से चुपड़ी रोटियाँ अधिक नहीं मिल सकती। अर्थात दोनों फायदे एक साथ नहीं मिल सकते। घी गुण का प्रतीक है। गुण पाना अधिक कठिन है। जिस प्रकार घी कम है और मँहगा है, उसी प्रकार गुण भी कम लोगों में कम मात्रा में पाये जाते हैं। १८५।

चूँचिन माँ हाड़ ढूँढ़त हैं।

दिलचस्प कहावत है। जब कोई शरारती स्तनों को मसलने लगा तो स्त्री ने पूछा, 'यह क्या कर रहे हो।' वह शरारत से अपने शोचपूर्ण उद्देश्य को प्रकट करता है। वह स्तनों को इसलिए मसल रहा है कि पता लगाना चाहता है कि उनमें हड्डी होती है या नहीं। वह जानता है, परन्तु शरारत भरा जवाब देता

है। औरत समझती है उसकी शरारत को। जब जानबूझ कर व्यक्ति भोला बनने की कोशिश करता है तो समझदार पारखी लोग उसकी चालाकी को समझते हुए यह कहावत कहते हैं। कभी सीधी स्थिति में भी इस कहावत का प्रयोग कर दिया जाता है। किसी चीज को ऐसी जगह पर ढूंढ़ना जहाँ उसके मिलने की कोई संभावना नहीं होती। १८६।

चूर चूर यारन का चोकरा भतारन का।

किसी छिनाल या बेवफा पत्नी की बेवफाई पर यह कठोर आक्षेप किया जाता है। अपने पति को चोकरा खिलाती है और अपने यारों अर्थात प्रेमियों को माल खिलाती है। यह एक कटूक्ति है जिसका प्रहार सीधा किया जाता है।१८७।

चैते गुरु बैसाखै तेलु,
जेठै पन्थ असाढ़ै बेलु।
सावन सतुआ भादौं दही,
कुंआर करैला कातिक मही।
अगहन जीरा पूसै धना,
माघै मिसरी फागुन चना।
ई बारह जो देय बचाय,
वेहि घर बैद कबौं न जायं।

चैत में गुड़ बनता है, बैसाख तक सरसों कट कर घर आ जाते हैं और तेल की अधिकता होती है, इसलिए इनका उपयोग भी इन महीनों में अधिक होता है। जेठ की धूप और गर्मी के कारण इस महीने में यात्रा नहीं करनी चाहिए। आषाढ़ मास में बेल नहीं खाना चाहिए। सावन में सत्तू, भादों में दही, कुआंर में करैला, कातिक में माठा, अगहन में जीरा, पूस में धनिया, माघ में मिश्री और फागुन में चना नहीं खाना चाहिए। जिन महीनों में जो चीज होती है उन्हीं महीनों में इसके उपयोग का निषेध बताया गया है, क्योंकि अधिक मात्रा में होने के कारण उसका उपयोग भी अधिक हो जाता है। इनसे बचने पर रोग-मुक्त रहा जा सकता है। १८८।

चोर चोर मौसेरे भाई।

प्रायः यह देखा गया है कि सगी माँ इतना प्यार नहीं करती जितना मौसी करती है। इसीलिए बङ्गाल में 'मासी माँ' कहते हैं। उसी तरह प्रायः यहे भी

देखा गया है कि जितना प्रेम सगे भाइयों में नहीं होता, उतना मौसेरे भाइयों में होता है। इसीलिए चोरों को मौसेरा भाई कहा गया है। उनमें परस्पर इतना प्रेम होता है जितना दो ईमारदार अच्छे आदमियों में नहीं होता। एक दूसरे की कमजोरियों को जानने वाले परस्पर अच्छे मित्र हो जाते हैं। १८८।

चोर चोरी ते गा मुदा हेराफेरी ते नहीं।

इस कहावत के पीछे एक कहानी है। एक चोर साधू हो गया। परन्तु उसकी आदत नहीं गयी। साधुओं के पास चोरी के लिए कमण्डलों के सिवाय और क्या होगा। वह कमण्डल चुरा कर इसका उसके पास और उसका इसके पास करने लगा। पकड़े जाने पर उसने कहा यह चोरी नहीं हेराफेरी है, यह तो कमण्डलाचार है। इसलिए कहावत बनी कि चोर ने चोरी भले ही छोड़ दी हो परन्तु हेराफेरी नहीं। तात्पर्य यह कि वह अभी भी चोरी करता है पर वह उसे चोरी नहीं मानता बल्कि वह तो हेराफेरी अदला बदली है। आदत बड़ी मुश्किल से जाती है और बुरी आदत और भी मुश्किल से जाती है। अस्तु चोर साधू होने पर भी अपनी आदत से छुटकारा न पा सका। किसी बुरी आदत के न छूटने पर इस कहावत का प्रयोग होता है। १८०।

चोरन बचुका लीन बेगारिन छुट्टी पावा।

कुछ सामान बेगारी लोग लिये जा रहे थे। चोरों ने वह सामान उनसे चुरा लिया। उन बेगारियों को खुशी हुई। उन्होंने सोचा, बोझा ढोने से छुट्टी मिली। बेगारियों का बोझ हलका हो गया। मुफ्त में काम करने वाले बेगारी या मजबूरन काम करने वाले लोग किसी प्रकार काम से छुट्टी पाना चाहते हैं, कोई बहाना चाहिए। बेगारी लोग बोझा तो पहले ही नहीं ढोना चाहते थे जब चोर चुरा ले गये तो सामान ढोने से छुट्टी मिल गई। वे बहुत खुश हुए।१८१।

छठी का दूध।

बच्चे को सर्वप्रथम छठी के दिन माँ का दूध पिलाया जाता है। अक्सर धमकी देते हुए लोग दूसरों को उसी दिन की याद दिलाते हैं। तात्पर्य यह कि उसे उस दिन की याद आ जायेगी जिस दिन से उसने अपनी माँ के ताकत प्राप्त करनी शुरु की थी। मानों आज तक का विकास कोई अर्थ नहीं रखता। अर्थात् वह इतना निर्बल है जितना उस दिन था जब पहली बार माँ का दूध पिया था। उसको अपनी निर्बलता का ख्याल हो आयेगा। कभी-कभी गाँव के लोग धमकी

देते हुई चुनौती देते हैं 'तुम्हारी महतारी बियानि होय तौ निकरि आओ' यानी माँ का दूध पिया हो तो मैदान में उतर आओ देखें कितनी ताकत है तुम्हारे माँ के दूध में। यह एक प्रकार की चुनौती है। १९२।

छठी माँ धरा गा है।

छठी के समय पूजा में बहुत सी चीजें रखी जाती हैं। इससे यह आशा की जाती है जो छठी में रखा गया है, उसे बच्चा बहुत शीघ्र प्राप्त कर लेगा और कुशल एवं योग्य बनेगा। कुछ चीजें ऐसी भी रखी जाती हैं जिनसे बच्चे को तकलीफ न उठानी पड़े जैसे बिच्छू का डङ्क, सांप की केंचुल इत्यादि। छठी की पूजा काफी विस्तृत पूजा है। यदि कोई व्यक्ति किसी विषय में कुशल होता है, या कोई विशेषता रखता है तो लोग प्रायः इस कहावत का प्रयोग करते हैं। जैसे : एक लड़का बहुत रोता है। कुछ लोग कहते हैं : रोना इसकी छठी में रखा गया था। अर्थात वह शुरू से ही बड़ा रोने वाला बालक है।१८३।

छपरा माँ तिनु नहीं औ दुआरे नाचु।

सामर्थ्य से अधिक महत्वाकांक्षी होना या काम करना। नाच करवाने में काफी खर्चा होता है। और यदि गरीब आदमी अपने दरवाजे पर नाच करवाये तो, समझदार लोग ऐसे व्यक्ति की नासमझी पर हँसते हैं। यह कहावत ऐसे ही व्यक्ति पर व्यङ्ग है। छप्पर में त्रण नहीं है या छप्पर ठीक कराने की सामर्थ्य नहीं है और नाच करवाने की तैयारी कर रहे हैं। १८४।

छूंछ कुआं पतकोरन न भरी।

काम बहुत बाकी हो और उसमें बहुत पैसा खर्च होने वाला हो तो चेतावनी देते हुए कहा जाता है कि खाली कुआं पत्तों से नहीं भरेगा। इस खाली कुआं को भरने या पाटने के लिए ठोस चीजों की जरूरत है। काफी परिश्रम करना पड़ेगा और पैसा खर्च करना पड़ेगा। बड़े काम को पूरा करने के लिए जब उचित प्रयत्न नहीं किये जाते तो इस कहावत का प्रयोग किया जाता है। १८५।

छेरी के मुंह का कुम्हड़ा।

जब कोई चीज किसी व्यक्ति के लिए बहुत बड़ी हो, जब कोई व्यक्ति किसी बड़े पद-सम्मान के अयोग्य हो तो इस कहावत का प्रयोग किया जाता है। इस कहावत में व्यंग्य है। जिस प्रकार बकरी कुम्हड़े खाने की इच्छा रखती है

और कोशिश करती है परन्तु असफल होती है, उसी प्रकार प्रायः लोग अयोग्य होने पर भी बड़ी चीजें हासिल करना चाहते हैं और असफल होते हैं। तब व्यंग्य से यही कहा जाता है कि बकरी के मुंह के लिए कुम्हड़ा नहीं है। ऐसी ही अन्य कहावत है, "यह मुँह मसूर की दाल।" १८६।

छोट मुँह बड़ी बात।

सीधी-सी कहावत है! जब कोई व्यक्ति अपनी स्थिति, अपना पद और अपनी सामर्थ्य का विचार किये बिना, बड़ों और सामर्थ्यवान व्यक्तियों के सामने बड़ी-बड़ी बातें करने लगता है जैसा करना उसके लिए अशोभन है, तो कहा जाता है—'छोट मुँह बड़ी बात।' इसमें बराबरी करने वाले व्यक्ति को एक प्रकार की फटकार है। कभी-कभी छोटे लोग बड़ी बातें कर सकते हैं—बड़े काम भी कर सकते हैं परन्तु उनका ऐसा करना बड़े लोगों को अच्छा नहीं लगता। १८७।

(ज)

जनम के दुखिया नाम चैनसुख।

यह भी नाम गुण विपर्यय सम्बन्धी कहावत है। स्थिति और गुणों का संबंध नाम से नहीं होता। पूरे जीवन भर दुख पाने वाले व्यक्ति का नाम चैनसुख हो सकता है। नाम होने से स्थिति और भाग्य नहीं बदल सकते। ऐसी कहावतें अनेक हैं। १८८।

जनम न देखिनि टाट।
सपने माँ आई खाट॥

जीवन भर तो टाट भी सोने को न मिला। पर सपने खाट के देखते हैं। महत्वाकांक्षी व्यक्ति पर यह आक्षेप है; जो प्रतिकूल परिस्थितियों में भी बड़े-बड़े सपने देखता है, बड़ी-बड़ी अभिलाषाएँ रखता है। समाज को ऐसे महत्वाकांक्षी लोग नहीं रुचते। लोग चाहते हैं कि लोग अपनी औकात को पहचान कर उसी के अनुसार रहने की कोशिश करें। परन्तु मनुष्य स्वभाव से उन्नति प्रिय होता है और आगे बढ़ना चाहता है। १८९।

जने जने कै लकड़ी एकु जने का बोझु ।

खेल दिखाने वाले बाजीगर पैसे माँगते समय इस कहावत का प्रायः उपयोग करते हैं । तमाशा देखने वाले सौ आदमियों ने यदि एक एक पैसा भी दिया तो बाजीगर को सौ पैसे मिल जायेंगे । एकत्र कर देने से बिखरी हुई चीजों का बोझ या महत्त्व बढ़ जाता है, उनकी शक्ति भी बढ़ जाती है । जिस लकड़ी या लाठी को एक आदमी आसानी से लेकर चलता है, यदि सब लोग एकत्र कर दें तो एक बड़ा भारी बोझ बन जाये जिसे एक आदमी आसानी से उठा भी न सके । परन्तु इस कहावत में जो अर्थ है वह सहायता माँगने या थोड़ी-थोड़ी मदद देने का है । एक पैसा देना किसी को भारी नहीं पड़ेगा, परन्तु वही एकत्र होकर एक व्यक्ति को काफी सहायता कर सकता है । इस प्रकार एक-एक पैसा एकत्र होकर भारी और महत्वपूर्ण बन जाता है । २०० ।

जब उठाय लिहिसि भोरी ।
तौ का बाह्मन का कोरी ।।

जब भीख माँगने का पेशा स्वीकार ही कर लिया तो फिर ब्राह्मण, कोरी में क्या अन्तर ? फिर तो वह किसी के सामने भीख के लिए झोली फैला देगा । उस भिखारी के लिए सामाजिक जाँति-पाँति के भेद मिट जाते हैं । इसमें दो बातें हैं—एक तो यह कि जब बेशर्म होकर भीख माँगने का पेशा स्वीकार कर ही लिया तो वह सबकी निगाहों से गिर गया । सबके लिए वह भिखारी हो गया । भिखारी हो जाने पर वह (अछूत) कोरी की निगाहों में भी गिर गया । दूसरी बात यह कि वह भेदभाव बरतेगा तो नुकसान उठायेगा क्योंकि वह सभी से भीख नहीं माँगेगा । यदि वह सबसे भीख नहीं ले सकता तो उसका भीख माँगने का क्षेत्र सीमित हो जायेगा । अर्थात जब बेशर्मी अख्तियार कर ली तो ऊँच नीच की क्या चिन्ता ? २०१ ।

जब ओखरी माँ मूँड़ दीन तौ मूसरन तै कौन डेरु ।

ओखली और मूसल का निकट का संबंध है । ओखली में कुछ न कुछ कूटने के लिए मूसल चला ही करते हैं । तो यह जानते हुए भी किसी ने आखिरी में सिर दे दिया तो उसे चोटों से नहीं डरना चाहिए । डरता तो पहले ही अपना सिर ओखली से दूर रखता । अस्तु, जब व्यक्ति जान बूझ कर अपने को कठिन स्थिति में डालता है, तो तकलीफें उठाने के लिए तैयार भी रहना चाहिए । कभी-

कभी लोग तकलीफों का अनुमान लगाये विना कठिन स्थितियों में कूद पड़ते हैं और तकलीफ उठाते हैं तब दूसरे लोग कहते हैं कि ओखली में सिर दिया है तो अब मूसलों से क्यों डरते हो। अब भोगो। २०२।

जब गोंइड़े आइ बरात पगरैतिन के लागि हगास।

अर्थात ऐन वक्त पर हाजिर न हो सकने पर यह कहावत कही जाती है। जब घर की चहारदीवारी में बरात आ गयी, और जब लड़की की माँ को उपस्थित होना चाहिए, उन्हें टट्टी लग आयी। इसी प्रकार की दो कहावतें हैं—(१) शिकार की बेरिया कुतिया हगासी। 'श' के अन्तर्गत इसकी व्याख्या दी गयी है। (२) खड़े पै धोखा देना। इस कहावत को इस पुस्तक में स्थान नहीं दिया गया है। इस कहावत का सम्बन्ध लौंड़े बाजी से है। जब छोकरा या लौंडा ऐन मौके पर धोखा दे जाय। मैंने ऐसी गन्दी कहावतों को भी इस पुस्तक में रखा है इसका कारण केवल एक ही है, वह यह कि अच्छा-बुरा, वांछनीय एवं अवांछनीय दोनों ही जीवन के महत्वपूर्ण पक्ष हैं। बुरे को समझ कर ही अच्छा बनना अधिक श्रेयष्कर है। २०३।

जब तक पढ़िबे 'का का खैया'।
तब तक जोतिबे तीनि हरैया॥

शिक्षा के प्रसार के प्रयत्नों के समय गाँव के लोगों ने ऐसी उक्तियाँ गढ़ लो होंगी। साक्षरता दिवस पर प्रभातफेरियाँ निकाली जाती थीं, जुलूस निकलते थे और यह आन्दोलन चलाया जाता था कि लोग अपने बच्चों को पढ़ने भेजें। किसान शिक्षा की उपयोगिता ठीक से समझ नहीं पाये थे। वे समझते थे कि इससे समय नष्ट होगा और उनके बच्चे जो खेतों में उपयोगी काम करते थे, नहीं करेंगे। जितनी देर पढ़ेंगे उतनी देर में तो खेतों में तीन बार हल चला लेंगे। अब स्थिति में काफी परिवर्तन हुआ है और शिक्षा के प्रति गाँवों में भी अनुकूल वातावरण तैयार हो गया है। २०४।

जब तक साँसा तब तक आसा।

बहुत ही स्वाभाविक बात है। जब तक मनुष्य जीवित है और साँस चल रही है, तब तक आशा बनी ही रहती है। कोई भी मरना नहीं चाहता। अन्तिम श्वाँस तक उसे अपने जीवन की आशा बनी रहती है। पूर्ण निराशा जीवित मृत्यु

है। निराश होने पर लोग आत्महत्या कर लेते हैं। पूर्ण निराशावादी व्यक्ति जीवित नहीं रह सकता। अतः आशा का जीवन से घनिष्ठ संबंध है। २०५।

जब बाँझि बियानि तौ सोंठि हेरानि।

जब कोई बड़ा मुश्किल या नामुमकिन काम बन जाये परन्तु दूसरी आवश्यक चीज न मिले तो इस कहावत का प्रयोग करते हैं। बाँझ औरत के बच्चा पैदा होना असंभव काम है। परन्तु जब वह संभव हुआ तो सोंठ गायब हो गयी। (सोंठ को पीस कर गुड़ में मिलाकर जच्चा को खिलाया जाता है, जिसे सोंठैला कहते हैं) ऐसी स्थिति में सोंठैला औषधि का-सा काम करती है और इसका उपयोग बहुत जरूरी माना जाता है। जब एक मुसीबत दूर हुई तो दूसरी तैयार हो गयो—ऐसी स्थिति में इस कहावत का उपयोग किया जाता है। २०६।

जब बहै हड़हवा कोनु।
तब बनिया लादै लोनु॥

अर्थात अब पानी नहीं बरसेगा क्योंकि बनिया नमक लाद कर बेचने जा रहा है। जब पश्चिमी पवन बहने लगा तो वर्षा के लक्षण समाप्त हो गये। उत्तर भारत में अधिकांश पूर्वी हवा से पानी बरसता है क्योंकि बंगाल की खाड़ी से उठने वाले मानसून जब पश्चिम उत्तर में आकर हिमालय से टकराते हैं, तो उत्तर प्रदेश, बिहार में वर्षा होती है। पछुवा हवा चलने से शुष्क वातावरण आ जाता है जो इस बात का निर्देशक है कि अब वर्षा नहीं होगी। पानी के सम्पर्क से नमक गल जाता है। अतः होशियार बनिया इस समय नमक बेचने नहीं जायेगा जब पूर्वी नम हवा चल रही हो क्योंकि ऐसा करने से उसके माल को नुकशान पहुँचेगा। २०७।

जब बूढ़ी भईं बिलारी।
तब मूस बजावैं तारी॥

जब घर के प्रभावशाली व्यक्ति का, अधिक अवस्था हो जाने के कारण, प्रभाव कम या समाप्त हो जाता है, तो छोटे लोग स्वतंत्र और स्वच्छंद हो जाते हैं। सामान्य रीति से इस कहावत का उस समय प्रयोग होता है अब नियंत्रण ढीला हो जाता है तो उपद्रव मच जाता है। जब बिल्ली बुड्ढी और कमजोर हो जाती है, तब चूहों को पूरी आजादी मिल जाती है, और वे बिल्ली को ताली बजा कर चिढ़ाते हैं। २०८।

जबरा कै मेहेरिया जवाँरिभर कै काकी ।।

दबंग अथवा प्रभावशाली व्यक्ति की पत्नी को भी सब सम्मान की दृष्टि से देखते हैं और काकी कहते हैं। इसी के विपरीत दूसरी कहावत है—निबरै कै मेहेरिया जवाँरि भर कै भौजी। अर्थात कमजोर आदमी की पत्नी को सभी भौजाई कहते हैं और उससे मजाक करते हैं—छेड़छाड़ करते हैं। अर्थात प्रभावशाली व्यक्ति के सम्पर्क में रहने वाले कमजोर आदमी का भी महत्व बढ़ जाता है। २०८।

जबरा करै जबरई नींबर करै नियाओ।

बड़े ही गहरे अनुभव की बात कही गयी है। शक्तिशाली व्यक्ति जबरदस्ती और मनमानी करते हैं और कमजोर लोग न्याय की बात करते हैं। यानी समर्थ एवं शक्तिशाली व्यक्ति सभी प्रकार उलटा-सीधा करते रहते हैं और बेचारे कमजोर लोग न्याय-इंसाफ की बातें करते हैं। इसीलिए गोसाइं तुलसीदास जी ने कहा कि 'समरथ का नहिं दोस गोसाइं।' समर्थ व्यक्ति की शक्ति है उनकी सामर्थ्य और कमजोर लोगों की ताकत है कायदा कानून-न्याय, इंसाफ। २१०।

जबरा मारै रोवै न देय।

ऐसे समर्थ एवं जबरदस्त आदमी कमजोर लोगों को सताते भी हैं; और शिकायत भी नहीं करने देते। कष्ट पाने पर व्यक्ति रोता है—शिकायत करता है। परन्तु जबरदस्त आदमी मारते भी हैं और रोने भी नहीं देते। शिकायत करने जाओ तो मारें। बेचारे कमजोर आदमियों की जिन्दगी बड़ी दुखपूर्ण है और दुष्ट व्यक्तियों की कृपा पर निर्भर है। वही सभ्यता का उच्चतम विकास है, जब हीनतम व्यक्ति न्याय पा सके अपने को सुरक्षित समझे; जब पशुबल का स्थान न्याय ग्रहण कर ले। २११।

जरे माँ लोनु लगाउब।

जले पर नमक लगाने से और भी तकलीफ होती है क्योंकि घावों में नमक पहुँच कर और कष्ट देता है। वैसे जले पर नमक औषधि का काम करता है—परन्तु कष्ट तो मिलता है। घावों में छरछराहट होती है। कहावत का अर्थ है—तकलीफ में और तकलीफ देना। जलने की पीड़ा पहले ही बहुत अधिक है नमक लगाने से पीड़ा बढ़ेगी। अक्सर जब मन किसी कारण दुखी होता है

और उस समय कोई और भी अप्रिय बातें करता है, तो मन को और भी क्लेश होता है। उस समय व्यक्ति खीझ कर कहता है कि जले पर नमक मत लगाओ। २१२।

जस दुलहा तसि बनी बराता।

यह कहावत शंकर भगवान की बारात के आधार पर है। शंकर भगवान की बारात विलक्षण थी। स्वयं भंग पिये, भभूत रमाये, नन्दी पर सवार थे और बारात में अनेक भूतप्रेत, विक्लांग लोग उपद्रव करते हुए शामिल थे। अर्थात् दूल्हा और बारात दोनों ही अद्भुत और अशोभन रूप में थे। अतः जब कमी किसी व्यक्ति का ढंग ठीक नहीं होता और उसके आस-पास के लोग एवं प्रबंध भी ठीक नहीं हो तो यह कहावत कही जाती है। अर्थात् जैसा वह खुद है, वैसे ही उसके साथी। २१३।

जस माय तस बेटी।
जस सूत तस फेटी॥

बेटी अपनी माँ से उत्पन्न हुई है अतः उसमें अपने माँ के सभी गुण-अवगुण होंगे, जिस प्रकार सूत के अनुसार ही उसकी गुण्डी होती है। जब दो व्यक्तियों के गुण अवगुणों में भेद नहीं होता—दोनों एक-से ही अच्छे या बुरे होते हैं तो यह कहावत चरितार्थ होती है। २१४।

जस मुकुन्द तस पादन घोड़ी।
बिधना आनि मिलाई जोड़ी॥

जैसे मुकुन्द हैं वैसी ही उनकी घोड़ी भी सटही या मरियल है। विधना ने स्वयं मानो अपने हाथों से इस जोड़ी को बनाया हो। पिछली कहावत की ही भाँति इस कहावत का अर्थ है। दोनों अपने दुर्गुणों में ऐसे मिलते जुलते हैं कि केवल भगवान ही ऐसी जोड़ी बना सकता है। इस कहावत में कमियों या दुर्गुणों की ओर ही विशेष संकेत है। २१५।

जहँ जहँ चरन परैं सन्तन के तहँ तहँ बंटाधार।

यह शुद्ध व्यंग्य है। यहाँ सन्त से तात्पर्य है, दुष्ट प्रकृति के व्यक्ति से। ऐसा व्यक्ति जहाँ भी जायेगा सब चौपट ही होगा। सन्त शब्द का प्रयोग इसी-लिए किया गया है क्योंकि सन्त जीवन की सुचारुता एवं व्यवस्था के विरोधी

होते हैं क्योंकि वे गृहस्थी तोड़ कर जाते हैं, गृहस्थाश्रम से डरते हैं। जो गृहस्थी को तोड़ने वाला है, वह समाज और जीवन की व्यवस्था से उदासीन होता है। इसीलिए सन्तों को बंटाधार करने वाला माना गया है। वस्तुतः यहाँ पर सन्त शब्द व्यंग्यार्थ में प्रयुक्त हुआ है। २१६।

जहाँ जायँ भूखा तहाँ पड़ै सूखा।

जहाँ भूख जाती है, वहीं अकाल पड़ जाता है। भूख सर्वभक्षी है और टिड्डियों की तरह साफ चाट जाती है, अतः अकाल पड़ना स्वाभाविक है; यह कहावत उस समय कही जाती है जब कोई व्यक्ति किसी के यहाँ कुछ लेने जाता है और खाली हाथ लौटता है। अर्थात् जहाँ भूख जायेगी वहाँ सूखा अवश्य पड़ जायेगा—कोई चीज़ नहीं मिलेगी। उसका जाना अपशकुन की तरह है कि जहाँ वह जाता है पहले से ही चीजें गायब हो जाती हैं। जरूरतमंद आदमी कहीं भी आसानी से अपनी ज़रूरत की चीज़ नहीं पाता। २१७।

जहाँ रूख न बेरूख तहाँ रेण्डै रूख।

जहाँ वृक्षों का अभाव होता है वहाँ रेण्ड को ही वृक्ष कहने लगते हैं। रेण्ड को वृक्ष नहीं माना जाता क्योंकि वृक्ष होकर भी वह इतना छोटा और कमजोर होता है कि उसे वृक्ष की संज्ञा से अभिहित नहीं किया जा सकता। परन्तु जिस प्रकार अन्धों में काना ही राजा होता है उसी प्रकार वृक्षों के अभाव में रेण्ड को ही वृक्ष कहने लगते हैं। २१८।

जहाँ सींके न समाय तहाँ फारु समवावैं।

कम गुंजाइश की जगह में अधिक गुंजाइश निकालने की कोशिश करना। जहाँ सींक का जाना मुश्किल हो, वहाँ हल का फाल कैसे जायेगा? परन्तु ऐसी जबरदस्ती करने वाले के लिए इस कहावत का प्रयोग करते हैं। ऐसी ही एक और कहावत है—'सुई की जगह तलवार चलावें'—'या बन्दूक की जगह तोप लगावें।' अर्थात् जहाँ साधारण उपचार अथवा प्रयत्न से काम बन जाता हो वहाँ भी असाधारण प्रयत्न करना। २१९।

जहाँ सर माठा का जायँ।
पँड़वा भैंसि दुई मरि जायँ॥

सूर की जगह बहुत-से लोग कबीर भी कहते हैं—इससे कहावत के अर्थ में

कोई अन्तर नहीं पड़ता। जब कोई अपने माँगने के प्रयत्नों में पूर्ण असफल होता है और उसे अपनी जरूरत की चीज नहीं मिलती है तो वह अपने को ही इन शब्दों में कोसता है। वह कबीर या सूर की तरह ऐसा अभागा है कि जहाँ माठा लेने जाता है, वहीं उसे सुनने को मिलता है कि भैंस मर गयी या पंड़िया मर गयी। दूध हो नहीं होता, माठा कहाँ से होगा। असफलताओं के कारण निराश व्यक्ति इस उक्ति का प्रायः प्रयोग करते हैं। २२०।

जाति सुभाव न छूटै।
टाँग उठाय कै मूतै॥

अपनी विशेषता (जातिगत या जन्मगत) नहीं छूटती। जिस प्रकार कुत्ता किसी का भी हो और कितनी ही अच्छी तरह क्यों न रखा गया हो उसकी जातिगत विशेषता—टाँग उठाकर पेशाब करना—नहीं जायेगी। जब किसी की कोई खास आदत नहीं छूटती और उसका व्यवहार वैसा ही अप्रिय बना रहता है तो लोग खीझ कर कहते हैं यह आदत नहीं छूटेगी क्योंकि यह जातिगत या वंश परम्परा से है। २२१।

जानि न जाय निसाचर माया।

तुलसीदास जी की चौपाई का अंश है। राक्षस की माया का समझ सकना असंभव है। जब किसी दुष्ट व्यक्ति की कुचालों से आदमी परेशान हो जाते हैं, और कोई समाधान नहीं ढूँढ़ पाते क्योंकि वह नित्य नयी चालें चलता है, तो इस कहावत का प्रयोग किया जाता है। दुष्ट व्यक्ति पता नहीं कब क्या करेगा? २२२।

जापर जाकर सत्य सनेहू।
सो तेहि मिलत न कछु सन्देहू॥

यह अर्द्धाली भी तुलसीदास जी की लिखी हुई है। जिस पर जिसका सच्चा प्रेम होता है वह उसे अवश्य मिलता है। इसमें प्रेम के सच्चेपन पर जोर दिया गया है और यह विश्वास दिलाया गया है सच्चे प्रेम का निःसंदेह परिणाम सुखकर होता है। २२३।

जियत न दीन्हिनि कौरा।
मरे उठैहैं चौरा॥

जीवनकाल में तो पेट भर भोजन भी न दिया तो ऐसे व्यक्ति से यह कैसे

आशा की जा सकती है कि वह मरने पर समाधि या स्मारक बनवायेगा ? मरने पर या आंखों की ओट होने पर कोई परवाह नहीं करता—फिर वह आदमी जिसने मुंह देखी प्रीति भी न की हो—और जीवनकाल में रोटी भी देने की चिन्ता न की हो वह मरने पर क्या याद करेगा। जब सामने होने पर कोई व्यक्ति कुछ नहीं करता तो पीठ पीछे क्या करेगा ? २२४।

जी गरजिहैं ती बरसिहैं का।
जी पुपुअइहैं ती करिहैं का॥

गरजने वाले बादल बरसा नहीं करते, शेखी मारने वाले लोग कोई काम नहीं कर सकते। यह एक अनुभवगत सत्य है। बहुत बातें करने वाले लोग बहुत कामिल लोग नहीं होते। उन्हीं लोगों को अधिक बातें करने की आवश्यकता होती है जो काम नहीं करते। काम करने वालों के पास बातें करने के लिए इतना समय नहीं होता। २२५।

जी बियानी ती ललानी।
पड़ोसिन पूत खिलानी॥

जिस चीज के लिए जब कोई व्यक्ति तकलीफ उठाता है; और उसे पाता भी है परन्तु कुछ कारणों से उसका आनन्द या सन्तोष नहीं पाता तो इस कहावत का प्रयोग किया जाता है। यह औरतों की कहावत है। पुत्र को जन्म देने वाली माँ अपने पुत्र को खिलाने और प्यार करने से वंचित रह गयी—(कदाचित किसी बीमारी के कारण) और पड़ोसिन ने उसे खिलाने और प्यार करने का आनन्द उठाया। ऐसी दुर्भाग्य पूर्ण स्थिति में इस कहावत का उपयोग किया जाता है। चीज मिल कर भी न मिले—उसके मिलने के आनन्द से वंचित रह जाये। २२६।

जो लाईं थारा, उई भईं उतारा।
जो लाईं चलनी, उई भईं घर थपनी॥

कभी-कभी जीवन में अकारण ही विपरीत स्थिति उत्पन्न हो जाती है। अपनी माँ के घर से विवाह के समय थाल लाने वाली बहू सासु के मन से उतर गयी और चलनी लाने वाली (जिसमें 'बहत्तर छेद') घर की सर्वस्व बन गयी। ऐसी अनुचित दुखपूर्ण स्थिति के उत्पन्न होने पर समझदार औरतें स्पष्ट इन शब्दों में बात को प्रकट कर देती हैं। कुछ चालाक औरतें अपनी वाक्पटुता

से सासु को अपने अनुकूल बनाकर मुट्ठी में कर लेती हैं और घर में शासन करती हैं। २२७।

जेठु मास जो तपै निरासा।
तौ जान्यौं बरखा कै आसा॥

वर्षा संबंधी कहावत है। जेठ महीने में यदि अधिक गर्मी या तपन हो तो समझना चाहिए कि वर्षा अच्छी होगी। इस संबंध की अनेक कहावतें हैं जिनमें ज्येष्ठ मास के तपने या मृगषिरा नक्षत्र में तपने पर वर्षा की आशा प्रकट की गयी है। और जब पुरवा चले तो वर्षा कम होगी। पुरवा हवा चलने पर तपन नहीं होती। २२८।

जेत्ता अँधरऊ बरैं ओत्ता पँड़ऊ चबा जायँ।

सीधा आदमी जितना कमाता है उतना सब घर के लोग खा जाते हैं। बेचारे को अपनी मेहनत के फल का उपभोग करने का अवसर भी नहीं मिलता। ऐसे भोले आदमियों के प्रति सहानुभूति इन शब्दों में प्रकट की गयी है। सीधे आदमी का कमाना व्यर्थ हो जाता है। संयुक्त परिवार में ऐसा प्रायः होता है। २२९।

जेता न हगिनि हगनहारी।
ओत्ता हगिनि साथ की ज्यौनारिन॥

जिनसे किसी प्रकार की आशा नहीं थी, उनसे तो बहुत कुछ मिला, या उन्होंने बहुत किया परन्तु जिनसे आशा थी उन्होंने कुछ न किया या बहुत कम किया। भोजन के लिए जो असली आमंत्रित स्त्रियाँ थीं उन्होंने उतनी गन्दगी नहीं फैलायी जितनी उन औरतों ने फैलायी जो आमंत्रित स्त्रियों के साथ आ गयी थीं। जिनसे उम्मीद की जा सकती थी, उन्होंने तो कुछ न किया, पर जिनको ऐसा करने का अधिकार भी न था उन्होंने खूब किया। यह घरेलू कहावत है जिसका प्रयोग स्त्रियाँ उस स्थिति में करती हैं जब कोई गड़बड़ किसी अनाधिकारी स्त्री द्वारा हो जाती है। २३०।

जेत्ते के ढोल नहीं ओत्ते के मँजीरा फूटें।

जब गाना बजाना होता है तब ढोलक-मँजीरा बजाये जाते हैं। ढोलक की तुलना में मँजीरा सस्ते होते हैं। ढोलक तो नहीं परन्तु कई जोड़ी मँजीरा फूट

गये। नुकसान उतना ही हो गया जितना एक ढोलक के फूटने पर होता। शायद किफायत करने वाले ने ढोलक फूटने के नुकसान को बचाने के लिए ढोलक का इस्तेमाल नहीं किया उसकी जगह मँजीरा बजवाये, यह सोच कर ये तो काँस के होते हैं—ढोलक की अपेक्षा मजबूत होते हैं; परन्तु हुआ अपेक्षा के विरुद्ध-ढोल की कीमत से अधिक के मँजीरा फूट गये। असली चीज के बचाने के लिए जो खर्च किया जाता है, और वह जब अधिक हो जाता है, तब इसका प्रयोग होता है। २३१।

जेहि का बिआहु तेहिका आधै बरा।

जिसके विवाह के उपलक्ष्य में बड़े बनाये गये उस बेचारे को आधा ही बड़ा खाने को मिला। जिसके लिए जो काम होता है, और उसी को सबसे कम लाभ मिलता हो तब इस कहावत का प्रयोग होता है। जिस चीज पर जिसका सबसे अधिक अधिकार होता है उसी को जब सबसे कम लाभ मिलता है तो यह कहावत चरितार्थ होती है। २३२।

जेहि का काम वो ही का छाजै।
औरु करै तौ डण्डा बाजै॥

जो जिसका काम है, उसी को करना शोभा देता है, उसे यदि कोई अन्य अनाधिकारी व्यक्ति करता है तो तकलीफ पाता है। २३३।

जेहि का बैठे न देखाय वोहि का ठाढ़े देखाय।

स्थिति परिवर्तन से जब किसी की मनोनुकूल इच्छा पूर्ण हो जाती है तो इस कहावत का प्रयोग होता है। वैसे साधारणतः बैठे देखने की अपेक्षा खड़े होकर देखने में अच्छा दिखायी देता है, परन्तु सभी यह चाहते हैं कि बिना अधिक परिश्रम के काम बन जाये पर हमेशा ऐसा नहीं होता। अस्तु यदि काम आराम से नहीं होगा तो थोड़ी तकलीफ उठाने से तो हो ही जायेगा। २३४।

जेहि की छाती एकु न बार।
वोहि ते सदा रह्यो हुसियार॥

यह शरीर के निरीक्षण के आधार पर चरित्र की विशेषता बतलाने का प्रयत्न है। जिसकी छाती में बाल न हो वह चालाक और कपटी मनुष्य होता है। उससे सावधान रहना चाहिए क्योंकि वह कभी भी आघात कर सकता

है। चारित्रिक विशेषताओं के जानने का आधार शारीरिक रचना संदिग्ध है। कभी-कभी ऐसे वक्तव्य बिलकुल सही निकलते हैं, परन्तु कभी-कभी बिलकुल गलत भी होते हैं। २३५।

जेहि का पिया मानै वहै सोहागिनि।

जिसको पति माने वही सोहागिन है, वैसे सभी उसकी पत्नियाँ हैं। यह बहु विवाह प्रथा की ओर संकेत करती है। बहुत सी पत्नियाँ के होने पर पति किसी को अधिक, किसी को कम और किसी को बिलकुल प्यार नहीं करेगा। वैसे कहने को सभी विवाहिता हैं पर वस्तुतः भाग्यशालिनी वही है जिसको पति माने। वैसे हम सभी उस भगवान के बच्चे हैं, पर सभी को उसकी कृपा प्राप्त नहीं है। अधिकारी को लेकर भी इस कहावत का प्रयोग किया जाता है। जिसको मान्यता मिल जाये वही भाग्यशाली है। बहुविवाह के अतिरिक्त भी इस कहावत का सार्थक विकास संभव है। २३६।

जेहि के पाँव न गई बेवाई।
सो का जानै पीर पराई॥

जिसने स्वयं कष्ट का अनुभव नहीं किया वह दूसरे की पीड़ा का अनुमान भी नहीं लगा सकता। बेवाई फटने पर कितनी पीड़ा होती है केवल वही जान सकता है जिसके कभी बेवाइयाँ फटी हो। स्वानुभाव के आधार पर ही मनुष्य दूसरों की स्थिति का सही अनुमान लगा सकते हैं। जब कोई व्यक्ति दूसरे की तकलीफों को नहीं समझ पाता तो इस कहावत का उपयोग किया जाता है। २३७।

जेहि कै लाठी तेहि कै भैंसि।

इसी के समानान्तर अंग्रेजी में एक कहावत है,"माइट इज़ राइट"—"शक्ति ही न्याय है।" जिसके हाथ में लाठी है—यानी ताकत है भैंस भी उसी की है। मानव-जीवन की असभ्यता की परिचायिका यह कहावत आज भी सही प्रतीत होती है। अर्थात मानव जीवन ने आज तक उतनी सभ्यता का विकास नहीं किया जहाँ शक्ति का वर्चस्व न होकर न्याय और सत्य का अनुगमन होता हो। जब तक हम उस लक्ष्य तक नहीं पहुँचेंगे तब तक हमारे जीवन में क्लेश, कलह, कष्ट, युद्ध और अनाचार चलते रहेंगे। वही उच्चतम सभ्यता होगी जब यह कहावत गलत सिद्ध हो जायेगी। २३८।

जेहि घर एकु न डगा।
तेहि घर डगी का मगा॥

जिसके घर में एक भी आदमी नहीं थी, सब सुनसान था, गरीबी और उदासी थी, उसी घर में चहल पहल हो गयी। इस प्रकार के परिवर्तन पर कहावत का प्रयोग होता है। कभी-कभी कुछ लोग कंजूसी की वजह से इतने असामाजिक हो जाते हैं कि उनके घर कोई जाना पसन्द नहीं करता—उसी घर में यदि चहल पहल होने लगे तो एक अनोखी बात हो जाती है। इसी अनोखेपन का चित्र है, इस कहावत में व्यंजित है। २३९।

जेहि का ऊँच बैठना, जेहि का खेतु निचान।
तेहि का बैरी का करै, जेहि के मीत देवान॥

यह नीति का दोहा गाँवों के शिक्षित समुदायों में हो कभी सुनायी देगा। जिसकी संगत बड़े लोगों को है, जिसका खेत नीचे ढलान पर है, जहाँ पानी अपने आप बहकर पहुँच जाता है, और जिसका मित्र राजा का दीवान या मंत्री है, उसकी उसके दुश्मन भी नुकसान नहीं पहुँचा सकते। २४०।

जेहि घर सारै सारथी, और तिरिया कै सीख।
सावन मां हर बैल बिन, तीनौ माँगैं भीख॥

यह भी नीति का दोहा है, जिसका प्रयोग बहुत व्यापक नहीं है, परन्तु इसकी सीख सब पर विदित है। घर में साले का राज्य हो, आदमी अपनी पत्नी के सिखाये पर चलता हो, और जिस किसान के घर में सावन तक हल बैल का प्रबन्ध नहीं हुआ तो निश्चित ही ये तीनों भीख माँगेंगे।२४१।

जेहि घर सासु चमकूल तेहि घर बौहर कौन सिंगार।

जिस घर की बुड्ढी सासु ही बड़ी शौकीन हो उस घर में बहुओं को शृंगार करने का अवसर ही न आयेगा। वह बुड्ढी ही दिन भर शृंगार करती रहेगी, तो युवा बहुओं को भूख मारकर घर गृहस्थी की व्यवस्था को संभालना पड़ेगा। घर में सभी तो शृंगार करके गृहस्थी को नहीं चला सकतीं। अतः बहुओं को अपनी शृंगार वृत्ति का त्याग करना होगा। यह भी घरेलू कहावत है जिसका प्रचलन स्त्रियों में है। बुड्ढी औरतों की शृंगार वृत्ति पर कटाक्ष है।२४२।

जै दिन जेठ चली पुरवाई।
तै दिन सावन सूखा जाई॥

वर्षा सम्बन्धी संकेत है। जितने दिन ज्येष्ठ मास पुरवा हवा चलेगी उतने ही दिन सावन में सूखे या वर्षाहीन रहेंगे। साधारण धारणा यह है कि ज्येष्ठ मास में खूब तपना चाहिए। न तपने से वर्षा में व्यतिक्रम उपस्थित हो जाता है। सावन वर्षा का महीना है अर्थात् सावन में वर्षा न होगी। सावन में वर्षा के न होने पर खेती सूख जायेगी। २४३।

जैस बेसु तैस भेसु।

जिस देश में रहे उसी देश की वेशभूषा को अपना लेना चाहिए। साधारण नीति की बात है। ऐसा करने से अनेक प्रकार की सुविधाएँ सरलता से प्राप्त हो जाती हैं। इस नियम के विरुद्ध आचरण करने पर अनेक प्रकार की तकलीफें उठानी पड़ती हैं। यह एक अच्छा नियम है, जो अपने उद्देश्य में बड़ा ही प्रगतिशील है। २४४।

जैसी देखै गाँव कै रीति।
तैसी उठावै आपनि भीति॥

उपर्युक्त नीति को इन शब्दों में भी प्रस्तुत किया जा सकता है। यह दृष्टिकोण बहुत ही उपयोगी और प्रगतिशील है। जिस गाँव में जाये और वहाँ की जैसी रीति देखे उसी के अनुसार अपने जीवन का विकास करे—वैसे ही अपना निर्वाह करे। २४५।

जैसी करनी तैसी पार उतरनी।

भले ही साधारणतः यह बात सही न भी दिखाई दे परन्तु लोक मानस का विश्वास है कि जो जैसा करता है वैसा पाता है। अच्छे काम करने वाले को अच्छे परिणाम और बुरे काम करने वाले को बुरे परिणाम भोगने पड़ते हैं। यदि इस जीवन में उसे अपने कर्मों का फल नहीं मिलता तो उस पार अगले जीवन में उसे अपने कर्मों का फल भोगना पड़ता है। वह अपने अच्छे बुरे कर्मों के अनुसार ही दूसरे जीवन में सुख-दुख पाता है। इस विश्वास से यह लाभ है कि जनसाधारण बहुत आसानी से बुरे काम करने के लिए प्रेरित नहीं होता। अदृश्य का भय उसे रोकता रहता है। २४६।

जैसे उदयी तैसे भान।
न इनके झोटई न उनके कान॥

जब दो साथियों में दोनों एक दूसरे से बढ़ कर हों, दुष्टता या शरारत करने में तो इस कहावत का प्रयोग होता है। दो बेशर्म और बेफिकरे व्यक्तियों की दोस्ती पर भी ऐसा कहा जाता है। इस कहावत में घोर तिरस्कार की भावना नहीं है। कुछ हास्यपूर्ण स्थितियों में भी इसका उपयोग किया जाता है। किसी एक व्यक्ति से कार्य सिद्धि होने की आशा हो और विफलता मिले और दूसरे व्यक्ति के सहारे कार्य को पूरा करने का विचार किया पर वह भी उतना ही बेकार सिद्ध हो तो चतुर लोग इस कहावत के द्वारा दोनों का तिरष्कार कर देते हैं। २४७।

'ना हंसि कै कर गहिन ना रिस कै खेंचिन केस।'
जैसे कन्ता घर रहे, तैसे रहे बिदेस॥

पति का घर रहना और विदेश रहना एक समान है यदि उससे कभी हंस कर प्रेम से पत्नी का हाथ न पकड़ा हो और गुस्से में आकर बाल झकझोरे हों। पत्नी उपेक्षा नहीं सह सकती। वह प्रेम तो चाहती ही है, परन्तु अपने पति के क्रोधित होने पर भी सुखी होती है क्योंकि क्रोध और प्रेम दोनों में अपनेपन की आधारभूमि रहती है। परन्तु उपेक्षा में अपनापन छूट जाता है। जब अपनापन न रहा तो पति का घर या विदेश रहना बराबर है। क्रोध उसी पर किया जाता है जिस पर कुछ अधिकार होता है। २४८।

जैसे जेहि कै चोट पिराय।
तैसे हल्दी मोल बिकाय॥

अर्थशास्त्र का अच्छा सूत्र है। जिस चीज की जितनी जरूरत बढ़ती जाती है उसी अनुपात में उसकी कीमत भी बढ़ जाती है। हल्दी चोट लगने पर लेप के रूप में लगायी जाती है। जितनी ही चोट अधिक दर्द करती है उतनी अधिक जरूरत हल्दी की होती है। बनिया इस स्थिति से फायदा उठाता है। जब जिस चीज की जितनी अधिक गर्ज होती है उतनी अधिक वह मँहगी होती है। किसी की ऐसी वणिक वृत्ति पर यह उक्ति कही जाती है। किसी के जरूरत से जब कोई अनुचित लाभ उठाने का यत्न करता है तब इस कहावत को चरितार्थ करता है। २४९।

जैसे नाग नाथ तैसे साँप नाथ।

नागनाथ और साँपनाथ में वस्तुतः कोई भेद नहीं है, क्योंकि दोनों ही जहरीले होते हैं। नाम भेद से गुण भेद नहीं होता। अतः साँप को चाहे नाग कहो या साँप—उनके काटने का परिणाम एक ही है—मृत्यु। जब दोनों व्यक्ति एक समान ही दुष्ट हों तो इस कहावत का उपयोग किया जाता है।२५०।

जो बिधवा होइ कै करै सिंगार।
ओहि ते सदा रह्यो हुसियार॥

जो स्त्री विधवा होने पर भी शृंगार करे उससे होशियार रहना चाहिए। समाज में विधवा के संबंध में इतनी कठोरता और सावधानी बरती जाती है, कि शायद ही कभी कोई विधवा शृंगार करने की सोचे। और यदि करेगी भी तो वह अपना ही अहित करेगी। इस पर भी कोई विधवा शृंगार करे ही तो निश्चित ही सावधान रहना चाहिए। इतने नियंत्रणों और निषेधों के होते हुए भी जो विधवा शृंगार करे तो सचमुच वह विधवा अधिक साहस वाली है जो कुछ भी कर सकती है। २५१।

जोरू टटोलै गठरी, अम्मा टटोलै अँतरी।

जब आदमी घर आता है तो पत्नी गठरी देखती है कि उसका पति उसके लिए क्या लाया और माँ बेटे की पेट देखती है कि बेटे ने खाना खाया है या नहीं। या उसका स्वास्थ्य पहले से अच्छा है या खराब। माँ का ध्यान अपने बेटे के स्वास्थ्य पर होता है और पत्नी अपने स्वार्थ की सिद्धि की चिन्ता में रहती है। यह माँ और पत्नी में अन्तर है। माँ का प्रेम निःस्वार्थ और पत्नी का प्रेम स्वार्थमय है। माँ के निःस्वार्थ प्रेम की घोषणा इस कहावत में की गई है। २५२।

जोरू न जाँता-ख़दा ते नाता।

जिसके कोई नहीं होता अथवा जिसका किसी से नाता नहीं केवल भगवान से होता है, उसके बारे में इस कहावत का उपयोग किया जाता है। ठीक ही है, जिसका इस धरती पर कोई संबंधी नहीं है उसका सम्बन्ध खुदा से तो है ही। खुदा शब्द का प्रयोग भी कुछ विचित्र है। हिन्दू परिवारों में इस प्रकार खुदा का प्रयोग कुछ अटपटा जरूर है। परन्तु हो सकता है इस कहावत का प्रारम्भिक सम्बन्ध किसी मुस्लिम परिवार से रहा हो। २५३।

जो फागुन मास बहै पुरवाई ।
तौ जान्यों गेहूँ गेरुई धाई ॥

खेती सम्बन्धी कहावत है । फागुन के महीने में जब गेहूँ पक जाता है और कटनी शुरू हो जाती है, उस समय यदि पछुवा हवा न चली पुरवा नम हवा चली तो गेहूँ ठीक से सूख नहीं पायेगा । उसी हालत में वह बखारी में लगा दिया जायेगा तो उसमें गेरुई जरूर लगेगी और गेहूँ खराब हो जायेगा । पुरवा हवा की नमी के कारण ऐसा होता है । २५४ ।

जौनी पतरी माँ खायँ ओही माँ छेदु करैं ।

जिसके सहारे जियें उसी की निन्दा करें । संयुक्त परिवार में बहुत से ऐसे नाते रिश्तेदार रहने लगते हैं जो परिवार के प्रति अपना कर्तव्य नहीं समझते, केवल अधिकार जनाते हैं और आनन्द करते हैं । कोई बाहरी मिला तो अपनी तारीफ करते हैं, और जिसके यहां रहते हैं उसकी निन्दा करते हैं । 'यह तो मैं हूँ उनके यहां पड़ा हूँ, कोई दूसरा होता तो एक दिन न ठहरता— इत्यादि । २५५ ।

जो पुरवा पुरवैया पावै ।
भूरी नदिया नाव चलावै ॥

वर्षा सम्बन्धी कहावत है । जो पूर्व में पुरवा बहे तो सूखी नदियाँ भर जायें और नावें चलें । पहले ही कहा जा चुका है, कि उत्तर भारत में पुरवा हवा से पानी बरसता है । इसलिए पुरवा हवा का वर्षा से घनिष्ठ सम्बन्ध है । २५६ ।

(ञ)

भौंगुर बचुका माँ का बैठिगा जानौ बजाजा ओही का होइगा ।

'अपना माल न होने पर भी थोड़ा सा अधिकार पाने पर जब व्यक्ति अपना पूर्ण अधिकार समझने लगता है; और मालिक की भाँति लोगों से व्यवहार करने लगता है तो लोगों को उसका यह मालिकाना व्यवहार पसन्द नहीं आता

तब वह इस कहावत का उपयोग करता है। बजाजे में झींगुर पहुँच गया तो समझने लगा कि सारा बजाजा उसी का है। मालिक न होने पर भी या अधिकारी न होने पर भी, जरासी शह से जब व्यक्ति मालिकाना रुआब और अधिकार जताने लगता है तो इस कहावत को चरितार्थ करता है। २५७।

झोरी मां टका नहीं सरायें मां डेरा।

गाँठ में पैसा नहीं और सराँय में ठहरने चला है। सराँय में ठहरने के लिए पैसे लगते हैं। अब तो अँग्रेजों के आगमन के बाद सराँय का स्थान होटलों ने ले लिया है। जो बिना रुपये पैसे जीवन का मजा लूटना चाहते हैं, उनके बारे में यह कहावत कही जाती है। या ऊँची-ऊँची महत्वाकांक्षाएँ रखने वाले लोग इस कहावत को चरितार्थ करते हैं। २५८।

(ट)

टेंटे लरिका गाँव गोहारि।

गोद में लड़का लिये हुए हैं और गाँव भर में शोर कर दिया कि मेरा लड़का खो गया और ढूढ़ती फिरती है। सुघिबैली औरत के लिए यह व्यंग्य है। मुलक्कड़ों के सम्बन्ध में इस कहावत का प्रयोग किया जाता है। उसे अपने लड़के की इतनी चिन्ता है कि उसे हमेशा डर लगा रहता है कि उसके लड़के को कहीं कुछ हो न जाये—वह इधर-उधर न चला जाये। उसकी कल्पना का भय कभी-कभी उसको ऐसी मानसिक स्थिति में पहुँचा देता है कि उसे सचमुच महसूस होने लगता है कि लड़का खो गया। २५९।

टेढ़ जानि संका सब काहू।

टेढ़े या वक्र अथवा दुष्ट से सबको शंका रहती है भले ही वह कुछ अहित या बुराई न करे परन्तु फिर भी उसके प्रति मन में अशंका बनी रहती है। दृष्टान्त के लिए इसकी अगली पंक्ति में ही कहा गया है कि राहु पूर्णमासी के चन्द्र को ही क्षति पहुँचाता है, वक्र चन्द्रमा को नहीं ग्रसता। अर्थात पूर्णमासी के चन्द्रमा में ही ग्रहण लगता है। वक्र चन्द्रमा में नहीं। २६०।

(ठ)

ठठेरन ठठेरन बदलाई नहीं होत ।

ठठेरे यानी बर्तन बनाने वाले । इनमें आपस में बर्तनों की अदला बदली नहीं होती । ये खुद खरीदने वालों से अदला बदली करते हैं । अर्थात पुराने टूटे बर्तन कुछ और पैसे लेकर वे नये बर्तनों से बदल देते हैं । वे व्यापारी हैं । आपस में इस प्रकार अदला बदली का व्यापार नहीं चलता क्योंकि वे एक दूसरे की चालाकी जानते हैं । इसी प्रकार की एक और कहावत है—नमक नमक से नहीं खाया जाता । अर्थात आपसदारी की जगह बेईमानी या चालाकी नहीं चलती । और कोशिश भी नहीं करनी चाहिए । २६१ ।

ठाढ़ि ठाढ़िन रहे बैठि गोहरावैं लागि ।

जो खड़े इन्तजार कर रहे थे और राह देखते-देखते थक गये थे, वे बेचारे तो खड़े ही रहे, परन्तु जो आराम से बैठे थे वे चिल्लाने लगे जिनको कोई विशेष कष्ट नहीं था । जिनका चिल्लाना अधिक स्वाभाविक था वे तो चिल्लाये नही, जिनका चिल्लाना अनुचित था, वे शोरगुल मचाने लगे । प्रतीक्षा या परिश्रम के आधार पर जिस व्यक्ति का जिस चीज पर अधिक अधिकार होता है, वह जब उसे न मिल कर अनाधिकारी या कम अधिकारी व्यक्ति को मिलती है तो उपर्युक्त कहावत का प्रयोग होता है—या जब अनाधिकारी व्यक्ति किसी चीज के लिए दूसरों के अधिकारों पर ध्यान दिये बिना अपना अधिकार जताने लगता है । २६२ ।

ठाढ़ी खेती गाभिन गाय ।
तब जानौं जब मुँह तरे जाय ।।

नीति का दोहा है । खेत में खड़ी फसल और गाभिन गाय का तभी उपयोग सिद्ध होता है जब अन्न और दूध खाने को मिलता है । अंग्रेजी में एक कहावत है : There are many slips, between cup and lipse. खेत से अनाज जब तक घर नहीं आ जाता तब तक अनेक बाधाएँ रहती हैं, और खेत से अनाज घर तक पहुँचने तक के समय में वह नष्ट भी हो सकता है । उसी प्रकार गाय जब तक सकुशल बच्चा नहीं दे देती, तब तक बहुत-सी ऐसी बातें हो सकती हैं जो दूध के मिलने में बाधक हो सकती है । २६३ ।

29423

(ड)

डुग डुग वाजै बहुत नीक लागैं।
नौआ नेगु माँगै तौ उठा बैठी लागैं॥

यह एक सीधा प्रहार है जो प्रजाजन प्रायः नेग माँगने के समय अपने किसान या मालिक पर कर देते हैं। इसमें व्यंग्य भी कठोर है। जब बाजे बजते हैं, काम काज होता है तब बहुत अच्छा लगता है, परन्तु जब नाई या अन्य प्रजाजन अपना नेग माँगते हैं, तो बड़ी तकलीफ होती है। आज कल शहरों में तो यह नेग वाली बात बहुत कम हो गयी है, परन्तु गाँवों में अभी भी वही ढंग चला आ रहा है। इन प्रजाजनों के नेग बढ़ गये हैं और काम घट गये हैं। अर्थ यह है कि मनोरंजन की कीमत चुकाने पर बड़ी तकलीफ महसूस होती है लेकिन मनोरंजन बहुत सुखदायक लगता है। इसमें यही व्यंग्य है। २६४।

डुंड़ी गाय सदा कलोरि।

जिस गाय के सींग नहीं होते वह हमेशा जवान मालूम देती है। उसी प्रकार छोटी काठी या कद के लोग भी जल्दी बुड्ढे नहीं दिखाई देते। डूँड़ी गाय शब्द उस औरत के लिए भी प्रतीक रूप में प्रयुक्त हुआ है जो अकेली है और बाल बच्चों तथा घर गृहस्थी की जिम्मेदारियों से मुक्त है। वह हमेशा युवा ही दिखाई देगी। २६५।

डोलै हथवा तौ बोलै मितवा।

कुछ पाने पर ही मित्र बोलता है। मित्र के स्वार्थीपन पर काफी कहावतें हैं। वह मित्र कैसा यदि कुछ पाने पर ही मित्र का साथ दे? मित्र तो वही असली है जो अपने मित्र के लिए सर्वस्व का निछावर कर सके। यहाँ इन कहावतों में उन्ही स्वार्थियों का उल्लेख है जो अपनी सुविधा के लिए मैत्री करते हैं। मित्र से कुछ पाने पर ही वे उसका काम करते हैं। २६६।

डौल चिथड़न कै नहीं हवस कनातन कै।

स्थिति अच्छी न हो परन्तु महत्वाकाक्षाएँ बड़ी-बड़ी हों। पहनने के लिए फटे कपड़े न हों और यदि वह व्यक्ति कनातें बँधवाने की इच्छा करता है तो अपने को हास्यास्पद बना लेता है। मनुष्य को अपनी सामर्थ्य का ज्ञान होना

चाहिए और तद्नुसार उसे अपने जीवन की व्यवस्था बनानी चाहिए। ऐसा न करने से वह दुःख पाता है और लोग उस पर हँसते हैं। २६७।

(त)

तपा जेठ माँ जो चुइ जायँ।
सबै नखत हलुके परि जायँ॥

ज्येष्ठ मास में यदि थोड़ी भी वर्षा हो गयी तो वर्षा के सभी नक्षत्र अपने प्रभाव में कम पड़ जाते हैं अर्थात् वर्षा कम होती है। ज्येष्ठ मास के तपने पर ही वर्षा का योग अच्छा बैठता है। २६८।

तपै मिगसिरा जोय।
तौ बरखा पूरन होय॥

मृगसिरा नक्षत्र के तपने से ही अच्छी वर्षा होती है। यह नक्षत्र ज्येष्ठ मास में होता है। अस्तु, इस उक्ति में भी वही बात दोहरायी गयी है। २६९।

तपैं मिगसिरा बिलवैं चारि।
बन बालक औ भैंसि उखारि॥

मृगसिरा नक्षत्र में जब बहुत तपन होती है तो जंगल, बालक, भैंस और ईख को बहुत तकलीफ होती है। जंगल सूख जाते हैं, बच्चों का स्वास्थ्य खराब होने लगता है, भैंस का दूध सूख जाता है। गर्मी में भैंस को बहुत तकलीफ होती है, और ईख सूखने लगती है। मृगसिरा नक्षत्र में गर्मी बहुत अधिक होती है क्योंकि इस समय सूर्य सीधा कर्क रेखा पर होता है जिसका प्रभाव उत्तर प्रदेश पर अधिक होता है। २७०।

तिरिया चरित्तर जानै न कोई।
खसम मारि कै सत्ती होई॥

स्त्री के चरित्र को कोई नहीं समझ सकता। ऐसी स्त्रियाँ भी हो सकती हैं जो पहले अपने पति को मार डाले, और फिर अपने मृत पति के साथ सती हो जाये। अपने सती पने को दिखाने के लिए अपने पति को मार डाला और खुद मर गयी। एक असंभव घटना है; परन्तु स्त्री चरित्र इतना गूढ और विलक्षण है

कि यह भी संभव हो सकता है। स्त्रियाँ एक दूसरे के आचरणों की निन्दा करते समय अपने को उस वर्ग से पृथक मान लेती हैं। निन्दक अपने को कदाचित अपवाद मान लेता है। उसके सिवाय सब बुरे हैं। पुरुष तो प्रायः ही स्त्रियों पर इस प्रकार के व्यंग्य बाण चलाते ही रहते हैं। २७१।

तीतुर बरनी बादरी, बिधवा पान चबाय।
उई पानी लै आवै, ई पानी लै जाय॥

तीतुर के वर्ण के बादल हों तो समझना चाहिए पानी बरसेगा और यदि विधवा पान खाये तो समझना चाहिए कि पानी जायेगा—(प्रतिष्ठा की हानि होगी)। यह नीति सम्बन्धी दोहा है। ग्रामीण समाज में कभी-कभी ऐसे लटके सुनने को मिल जाते हैं। बहुत सी विधवाएँ आदत के कारण पान खाती हैं; और मरण पर्यन्त खाती रहती हैं; परन्तु उनके चरित्र में कोई दोष नहीं आता। पान जब होंठ रचाने के लिए खाया जाता है तब तो उसका सम्बन्ध शृंगार से होता है अन्यथा पान खाना कोई बुरी बात नहीं है। तात्पर्य यह है कि विधवा को शौक और साज शृंगार की चीजों से दूर रहना चाहिए। न रहने पर चरित्र भ्रष्ट हो सकता है। २७२।

तीनि कनौजिया तेरह चूल्ह।

अनेक प्रकार से यह कहावत कही जाती है। कोई दस कनवजिया ग्यारह चूल्ह भी कहते हैं। इस दूसरे प्रकार से कहने में अधिक सार्थकता प्रतीत होती है। कान्यकुब्ज ब्राह्मण अपना-अपना भोजन अलग बनाते हैं और छुआछूत का इतना विचार करते हैं कि एक दूसरे के चूल्हे से आग भी नहीं लेते। अतः एक चूल्हा अलग रखते हैं जिसमें भोजन नहीं पकाते। यदि दस कनवजिया ब्राह्मण हुए तो प्रत्येक का अपना-अपना चूल्हा अलग होगा और एक चूल्हा बिलकुल अलग होगा। इस प्रकार दस कनवजियों के बीच में ग्यारह चूल्हे होंगे। परन्तु कुछ लोग कदाचित् अनुप्रास प्रियता के कारण या बात को और भी बढ़ाकर कहने के लिए तीन और तेरह संख्याओं का प्रयोग करने लगे हैं। २७३।

तुम्हरी महतारी खरी खायँ।
मोहिका देखे जरी जायँ॥

ऐसा मालूम देता है कि तुम्हारी माँ अनाज नहीं खाती—जानवरों को दी जाने वाली खरी खाती हैं। यदि ऐसा न होता तो मुझे देख कर क्यों जलतीं?

मैं भी तो आखिर उसी अन्न की रोटियाँ खाती हूँ जिसकी तुम्हारी माँ खाती है। परन्तु मेरे प्रति उनकी ईर्ष्या से मालूम होता है कि वह रोटियाँ नहीं खरी खाती हैं। तभी तो उनको मेरी रोटियाँ खाना खराब लगता है। स्त्रियों में एक दूसरे के प्रति इर्ष्या-द्वेष का भाव बहुत रहता है और प्रायः अकारण। इसी अकारण द्वेष भाव पर इस कहावत में व्यंग्य कसा गया है। मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि व्यक्ति होनावस्था के कारण अधिक ईर्ष्यालु हो जाता है। २७४।

तुरुक होय तो बेहना।

अपना धर्म छोड़े और मुसलमान बने तो अच्छा मुसलमान बने। अपना धर्म भी छोड़े और जिस धर्म को स्वीकार करे उसमें भी सम्मान न पावे। अपना धर्म आखिर किसी लाभ के लिए ही व्यक्ति छोड़ता है। प्रायः शूद्र मुसलमान या ईसाई इस ख्याल से बने कि मुसलमान या ईसाई बनने से उन्हें सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त होगी; परन्तु यदि धर्म बदलने पर भी सामाजिक मर्यादा में उत्थान न हुआ तो धर्म बदलना बेकार हुआ। अतः बेहना के सामाजिक स्तर के लिए अपना धर्म छोड़ना मूर्खता है। २७५।

तुलसी बिरवा बाग माँ सीचे तो कुम्हिलाय।
रहै भरोसे राम के पर्वत पर हरियाय॥

तुलसी दास जी का दोहा है जिसमें भाग्यवादी दृष्टिकोण का प्रतिपादन हुआ है। बाग में सिंचाई के बावजूद वृक्ष सूख जाते हैं और राम की कृपा से पर्वत पर भी बिना सिंचाई के भी हरेभरे बने रहते हैं। इसी दृष्टान्त को मानव जीवन पर घटित कर दीजिये तो यह अर्थ निकलेगा कि कभी प्रयत्न करके भी मनुष्य असफल हो जाता है और राम कृपा से बिना प्रयत्न के भी काम बन जाता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि जीवन में प्रायः ऐसा भी होता है। तुलसीदास राम भक्त थे और उन्हीं का भरोसा उनके लिए सब कुछ था। २७६।

तेल देखौ तेल कै धार देखौ।

प्रतीक्षा करके देखो कि तेल की धार किधर जाती है। अभी इतनी जल्दी कुछ कह सकना संभव नहीं। तात्पर्य यह है कि बिना अच्छी तरह निरीक्षण किये कोई निर्णय नहीं करना चाहिए। हर फैसले के पहले अच्छी तरह समझबूझ लेना चाहिए। कैसा तेल है और उसकी धार कैसी है—इससे देखने के बाद ही फैसला करना चाहिए। उतावलेपन में आकर लोग पहले से ही भ्रान्त अनुमान करने

लगते हैं। यदि जमीन पर तेल गिरेगा को किसी न किसी दिशा में बहेगा, जब बहेगा तो घार का पता लग जायेगा। २७७।

तेली का तेलु जले मसालची के गाँड़ि (पेटु) जरै।

मसाल जलती है तो तेल के सहारे। और तेल तेली का होता है मसालची का तो होता नहीं। फिर भी मसालची अधिक तेल न जले इसकी बड़ी चिन्ता करता है। (शायद तेल अपने उपयोग में लाने के लिए बचाने की दृष्टि से) परन्तु मसालची का ऐसा करना किसी को अच्छा नहीं लगता। उन्हें अँधेरा में चलना पड़ता है। इसीलिए काफी तलाशी के साथ कहावत कही गयी है। उसीसे यह कहावत बनी है, जब कोई व्यक्ति अपना न खर्च करने पर भी कंजूसी करता है और अधिक खर्च की शिकायत करता है, तब लोगों को उसकी यह किफायत-सारी पसन्द नहीं आती। २७८।

(थ)

(अब तौ सही न जाति है–)
थरिया पर कै भूख।

भोजन के लिए पाटा पर बैठ जाने पर प्रतीक्षा करना अच्छा नहीं लगता। भोजन के लिए तैयार होकर बैठ जाने पर भी जब भोजन न मिले तो धैर्य छूटने लगता है। इसीलिए कहा गया है कि थाली आ जाने पर भी यदि भोजन न मिले तो खराब लगता है। अनेक स्थितियों में प्रतीक्षा करना बहुत कष्टदायक हो जाता है तब इस कहावत का प्रयोग होता है।२७९।

थारी के भाँटा।

ढुलमुल नीति वाले व्यक्ति के लिए कहा जाता है। थाली जिस ओर झुक गयी उसी ओर उसमें रक्खा भाँटा लुढ़क जाता है। यह कहावत अवसरवादी व्यक्ति के लिए भी प्रयुक्त होती है। परन्तु उस व्यक्ति पर अधिक लागू होती है जिसकी अपनी कोई निश्चित नीति नहीं होती। भाँटा-बैंगन गोल होता है और वह अस्थिर स्थितियों में नहीं रह सकता। २८०।

थारी गिरी-झनकार भै-फूटै चहै न फूटै ।

थाली गिरी तो आवाज हुई । सुनने वालों ने समझा थाली फूट गयी, भले ही वह न फूटी हो । कोई बुरा काम न भी किया हो परन्तु यदि बदनामी हो गयी तो काम का होना न होना मतलब नहीं रखता । इसीलिए कहावत बनी है कि बद अच्छा बदनाम बुरा । वही चोर जो पकड़ा जाये । २८१ ।

थूक माँ सतुआ सानब ।

असंभव काम करने की असफल चेष्टा करना । सत्तू सानने में पानी की जरूरत होती है परन्तु यदि कोई व्यक्ति अपनी चतुराई दिखाने के लिए थूक से ही सानने की कोशिश करने लगे तो लोग उसके इस प्रयत्न पर हँसेंगे । वस्तुतः इस कहावत का प्रयोग कंजूस व्यक्ति के लिए किया जाता है । पानी से अधिक आसानी से सुलभ होने वाली सस्ती चीज और क्या हो सकती है पर यदि कोई व्यक्ति पानी बचाने के उद्देश्य से थूक में सत्तू सानने की कोशिश करे तो उसके समान कंजूस और कौन होगा ? २८२ ।

थोर खाय औ बहुत डकारै ।

दिखावा करना । थोड़ा खाने पर या भूखे रह जाने पर डकार नहीं आती । डकार छक कर खाने के बाद आती है । इसलिए बारबार डकार लेकर वह दिखाना चाहता है कि उसने बहुत खाया है । अपनी असमर्थता या गरीबी छिपाने के लिए जब मनुष्य इस प्रकार का कोई प्रयत्न करता है तो इस कहावत का प्रयोग किया जाता है । सामाजिक मर्यादा का लोगों को इतना ख्याल रहता है कि गरीब होने पर भी वे अमीरी का प्रदर्शन करते हैं । असलियत कभी छिपती नहीं । फिर भी मानवस्वभाव विलक्षण होता है और वह ऐसे ही प्रयत्न करता रहता है । प्रदर्शन वृत्त पर व्यंग्य है । २८३ ।

(द)

दुइयू भुनगै भरि देखात है ।

घमण्डी या अभिमानी व्यक्ति को आसमान भी छोटा दिखाई देता है । भुनगा एक बहुत ही छोटा उड़ने वाला कीड़ा होता है । अपनी महत्ता के अभिमान में मनुष्य किसी को कुछ नहीं समझता तब उसका उपहास करने के लिए यह कहावत कही जाती है । २८४ ।

दमड़ी कै घोड़ी नौ टका बिदाई।

असली चीज में उतना खर्च न हो जितना उसकी औपचारिकता में, या सिंगार में हो जाये। दमड़ी तो अब होती भी नहीं परन्तु मध्यकाल का यह सबसे छोटा सिक्का है। एक दमड़ी की घोड़ी और नौ टका विदाई में खर्च करने पड़े। आजकल सिलाई कपड़े की कीमत से अधिक हो गयी है। ऐसी स्थिति में इस कहावत का प्रयोग किया जा सकता है। २८५।

दमड़ी कै हँड़िया गै।
जाति तौ पहिचान गै॥

कुत्ते के चाटने से हँड़िया जूठी हो गयी परन्तु यह तो मालूम हो गया कि कुत्ता चोर है। जब आदमी कुछ खोकर कोई उपयोगी अनुभव प्राप्त करता है तब इस कहावत का उपयोग करता है। दोस्त सच्चा है या मक्कार इसका पता लगाने के लिए कुछ खोना ही पड़ेगा। २८६।

दाई ते पेटु नहीं छिपत।

किसी विशेषज्ञ या जानकार व्यक्ति से उसी के विषय की बात का छिपाना असंभव है। दाई बच्चे पैदा कराने के काम में निष्णात होती है। उनसे कोई औरत यह नहीं छिपा सकती कि वह गर्भवती है या नहीं। प्रायः जानकार कुशल अनुभवी व्यक्ति किसी बात के जान जाने पर अभिमान से इसी कहावत का प्रयोग करते हैं। २८७।

दाता ते सूम्यू भला जो तुरतै देय जवाबु।

आजकल दान करने वाले दानी से तो सूम (कंजूस) ही अच्छा है; कम से कम वह तुरन्त जवाब तो दे देता है। अटकाये तो नहीं रखता। दूसरों पर अपनी कृपा बनाये रखने वाले लोग सीधा जवाब नहीं देते, उससे उनकी कृपालुता में अन्तर पड़ता है परन्तु असली कृपा करते भी नहीं। ऐसे व्यक्ति से वह अच्छा है जो कृपा नहीं करता। कम से कम झूठे वायदे तो नहीं करता। २८८।

दाता देय औ भण्डारी का पेटु पिराय।

दानी देने का हुक्म दे देता है परन्तु भण्डारी को निकाल कर देने में तकलीफ होती है। जिसका माल है उसे अपनी चीज दे डालने में कोई तकलीफ नहीं है;

परन्तु उसे तकलीफ होती है जो उसका केवल रखवाला या प्रबंधक है—मालिक नहीं। २८८।

दाना न घासु खरहरा छः छः दईं।

घोड़े को पालने पर उसे चारा देना पड़ता है और उसे साफ रखने के लिए खरहरा करना पड़ता है। परन्तु जो मालिक घोड़े को खाना तो न देता हो परन्तु खरहरा बार-बार करता हो, वह केवल दिखावा करता है कि वह अपने घोड़े का कितना ख्याल रखता है। असली चीज जिसके बिना जीवन असंभव है उसका तो प्रबंध न करना और ऊपरी चीज जिसके बिना काम चल सकता है, उस पर अधिक ध्यान देना—इस कहावत को चरितार्थ करता है। बहुत शौक करने वाले व्यक्ति पर कटाक्ष है। २८०।

दालि-भातु माँ मूसरचन्द।

सुख-शान्तिमय एवं अनुकूल स्थिति में किसी बाधा का अचानक उपस्थित हो जाना। दो चार दोस्त आराम से बैठे बातचीत कर रहे हों। ऐसी स्थिति में अचानक किसी आगन्तुक का आ जाना, दाल-भात में मूसरचन्द की भाँति है। अनुकूलता में किसी प्रकार की प्रतिकूलता का उत्पन्न हो जाना इस कहावत को चरितार्थ करता है। २८१।

दिनु गा आरे-बारे।
जुआँ हेरैं दिया बारे॥

उपयोगी समय नष्ट करने वाले लोग जब गलत समय में कोई काम करने की कोशिश करते हैं तो इस कहावत का प्रयोग किया जाता है। दिन तो इधर-उधर में बिता दिया जब आसानी से जूँ ढूँढ़े जा सकते थे, और अब रात में दीपक की रोशनी में जूँ ढूँढ़ने बैठी हैं। इस प्रकार अनुपयुक्त समय पर काम करने वाले पर इस कहावत से कटाक्ष किया जाता है। यह कहावत भी प्रायः स्त्रियों में प्रयुक्त होती है। २८२।

दिन का बादर राति तरैया।
न जानौं प्रभु काह करैया॥

दिन में बादल छाये रहते हों और रात में आकाश साफ हो जाता हो, तो सर्दी के मौसम में पाला गिरता है, जिससे फसल नष्ट हो जाती है। इसीलिए

इस कहावत में कहा गया है कि यदि ऐसा मौसम रहे तो पता नहीं भगवान क्या मुसीबत पैदा करने वाला है। बादलों से पाला रुक जाता है। सर्दी भी कम रहती है। परन्तु बादलों के बाद रात में आसमान खुल जाने का मतलब यह होता है कि सर्दी की रोक-थाम नहीं हो सकती और रात में पाला गिरता है। बरसात में भी ऐसी हालत में वर्षा नहीं होती। २८३।

दिन माँ गरमी रात माँ ओस।
कहैं घाघ बरखा सौ कोस॥

दिन में गर्मी रहती हो और रात में ओस गिरती हो तो समझना चाहिए कि अभी वर्षा आने में बहुत दिन है। ये वर्षा के विरुद्ध लक्षण हैं जिन्हें देख कर कहा जा सकता है कि अभी वर्षा नहीं होगी। २८४।

दिया तरे अँधेरू।

दीपक के तले अँधेरा होता है। जो दूसरों को प्रकाश देता है, उसी के नीचे अंधेरा होता है। दूसरों को देने वाला त्याग करता है। अगर त्याग न करे खुद ही अपने लिए रख ले तो दूसरों को क्या देगा? परोपकारी मनुष्य अपने हित की चिन्ता नहीं करते जिस प्रकार दीपक अपने लिए प्रकाश की चिन्ता नहीं करता। परन्तु आजकल के बिजली के लैम्पों के नीचे तो प्रकाश हो जाता है (शेड के कारण) ऊपर नहीं होता। विपरीत तर्क करके आजकल परोपकारी वृत्ति के अभाव की बात कही जा सकती है। २८५।

दीन न खायँ बिनि-बिनि खायँ।

किसी का दिया हुआ खाने में उसका एहसानमन्द होना पड़ता है और वह यह भी जानता है कि इसने कितना खाया। इसलिए चालाक आदमी किसी का दिया नहीं खाते; परन्तु उसी को चुपचाप से उठाकर खा लेंगे। इस प्रकार वह दोनों बातों से बच जाता है; परन्तु वह इस ओर ध्यान नहीं देता कि इस प्रकार वह चोर बन गया है। इस कहावत में ऐसे व्यक्ति को व्यंग्य रूप से चोर कहा गया है। संयुक्त परिवार में ऐसी घटनाएँ प्रायः होती रहती हैं। परिवार में हर व्यक्ति बड़ी होशियारी से काम करता है और दिन रात घर में ही राजनीतिक दाँव-पेंच चलते रहते हैं। २८६।

दुआरे टटिया नहीं—नाम धनपति।

नामानुसार गुणों के न होने पर शिकायत की गयी है। बेचारे का नाम तो

घनपति या लखपत है परन्तु दरवाजे पर टटिया भी नहीं है। यानी फूस या अरहर की टटिया जिससे दरवाजा बन्द किया जाता है। घनपत नाम होने पर भी इतनी गरीबी है। इसमें बेचारे नाम का क्या दोष ? लेकिन ऐसे गरीब व्यक्ति का घनपत नाम विडम्बनापूर्ण है, क्योंकि लोग हँसते हैं। २८७।

दुइ हर खेती एकु हर बारी।
बूढ़े बैल ते भली कुदारी॥

जिसके दो हलों की खेती होती हो अर्थात् लगभग २५ एकड़ जमीन पर खेती होती हो, उसे तो खेती कहना उचित है, परन्तु एक हल की खेती तो फुलवारी या तरकारियों की बाड़ी है। उसे खेती कहना उचित न होगा। और बूढ़े बैल से अच्छी कुदाली है। खेतों के लिए बूढ़े बैल की कोई उपयोगिता नहीं है। उससे अधिक तो एक आदमी कुदाली से काम कर सकता है। २८८।

दुधाँड़ी के तरे साँप रेंगाउब।

संकेत से याद दिलाना। दूध पीने की इच्छा है और सीधे माँगने में संकोच होता है, तो कह दिया दुधाँड़ी के पास साँप जा रहा है। दूध की याद आने पर घर की पुरखिन दूध पिला देगी। अतः जब सीधे माँगने में संकोच अनुभव होता हो, और संकेत में वही बात कही जाये तो इस कहावत का प्रयोग होता है। अरे सीधे कहो—दुधाँड़ी के नीचे साँप क्यों रेंगाते हो ? २८९।

दुधारू गाई कै लातौ सही जाति है।

जिससे लाभ होता है, उसकी चोट भी बर्दाश्त करनी पड़ती है। दूध देने वाली गाय की लातें भी सहनी पड़ती हैं। दूध दुहते समय अक्सर कुछ गायें लातें मार देती हैं। परन्तु अपने स्वार्थ के लिए उसकी लातें भी बर्दाश्त करनी पड़ती है।३००।

दुर्बल का दइयू घातक।

कमजोर को ईश्वर भी तकलीफ देता है ! जिससे सन्देश प्राप्त होता है कि सबल एवं सक्षम बनने का यत्न करो। 'Survival of the fittest' वाली बात ही इन शब्दों में प्रकारान्तर से प्रकट हुई है। प्रकृति का सामान्य नियम है कि जो अशक्त हो उसको नष्ट हो जाने दिया जाये। और यहीं से मानवता अथवा इंसानियत शुरू होती है। जो सबल है, सक्षम है वह तो अपना मार्ग प्रशस्त कर

ही लेगा; परन्तु जो निर्बल है, दुर्बल है, उसकी हमें सहायता करनी चाहिए। परन्तु साधारणतः इस स्वार्थमय संसार में ऐसा होता नहीं इसीलिए कहावत की सार्थकता है। ३०१।

दुबिधा माँ दून्हों गईं माया मिली न राम।

अनिश्चय के कारण प्रायः दुगुना नुकसान हो जाता है। जो चाहते थे वह तो नहीं ही मिलता और जो पास में था वह भी चला जाता है। इस मायापूर्ण संसार में तो हमने जन्म ही लिया है अतः यह तो हमारा स्वाभाविक प्राप्य है ही परन्तु कभी दार्शनिक एवं धार्मिक वृत्तियों के प्रभाव स्वरूप हम इस प्राप्य की उपेक्षा करने लगते हैं; परन्तु दार्शनिक एवं धार्मिक दृष्टि अभी निश्चित नहीं हुई है। परिणाम यह होता है कि भगवान तो नहीं ही मिलता, यह संसार भी छूट जाता है। अर्थात् संसार का भी हम समुचित उपभोग नहीं कर पाते। उर्दू में भी एक ऐसी ही कहावत है, "खुदा ही मिला न विसाल-इ-सनम।" ३०२।

दुसरे का कुआँ खोदैं अपनै गिरैं।

दूसरे के अहित चिन्तन में प्रायः अपना ही अहित हो जाता है। इसलिए कुआँ खोदा कि दुश्मन आकर गिर जाय और मर जाय। वह तो न आया पर एक रात खुद उस कुएँ में गिर गये। सामान्य सत्य की अपेक्षा इस कहावत में सामाजिक नैतिकता की दृष्टि से लोगों को समझाने या डराने की कोशिश की गयी है। जब हमारा समाज जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में इतना संगठित था कि एक का अहित दूसरे के हितों पर बुरा प्रभाव डालता था तब तो यह कहावत बहुत सही थी। ३०३।

दुसरे का सगुन बतावैं।
अपना कुकुरन चिथावैं॥

'दीगरा नसीहत खुदरा फजीहत' वाली फारसी कहावत इसी संदर्भ में प्रयुक्त होती है। यहाँ सगुन बताने की बात है जो कोई पंडित या ज्योतिषी ही करता है। अर्थात् वह पंडित या नजूमी दूसरों को तो बतलाता है कि किस शुभ घड़ी में कार्यारम्भ किया जाये जिससे सफलता प्राप्त हो, परन्तु वह स्वयं अपनी दरिद्रता दूर नहीं कर पाता। जीवन में क्षण-क्षण वह असफलता ही प्राप्त करता है। यात्रा के समय अक्सर सगुन-विचार किया जाता है जिससे यात्रा निरापद हो परन्तु जब पंडित जी कहीं जाते हैं तो उन्हें मार्ग में कुत्ते काट लेते हैं। अर्थात जब कोई

व्यक्ति दूसरे को राह बताता है, बड़ी-बड़ी सलाहें देता है,परन्तु स्वयं उनका पालन नहीं करता तब इसका प्रयोग किया जाता है। ३०४।

दुसरे का लोखरेऊ सगुन बतावैं।
अपना कुकुरन तो नोचावैं॥

उपर्युक्त कहावत के समान ही है। इसमें व्यंग का आघात लोखरेऊ (लोमड़ी) शब्द के प्रयोग से बढ़ गया है। सगुन बताने वाले को लोमड़ी कहा गया है। अर्थात् लोमड़ी खुद इतनी होशियार होती है कि सबको राह बताए तो वह स्वयं अपना मार्ग क्यों नहीं निरापद बना लेती है? अर्थात् ऐसे सलाह देने वाले चालाक और मक्कार लोगों को सलाह नहीं माननी चाहिए। ३०५।

दुष्ट संघ जनि देहु बिधाता।
गहि ते भला नरक का बासा॥

तुलसी दास जो ने इस चोपाई में जीवन का एक कटु सत्य प्रस्तुत किया है। प्रत्येक मनुष्य के जीवन में इस प्रकार की स्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं जिनका कारण वह स्वयं नहीं, बल्कि उसका दुष्ट पड़ोसी या साथी हैं; परन्तु उसका भोग उसे भी भोगना पड़ता है। मनुष्य केवल अपने ही कर्मों का भोग नहीं भोगता बल्कि सारे समाज के अच्छे बुरे कर्मों का भोग भोगता है। ऐसी स्थिति में दुष्ट संगति में दुख उठाना अनिवार्य-सा है। देखा गया है कि दुष्ट व्यक्ति के पड़ोस से साधु व्यक्ति को भी हमेशा कष्ट सहने पड़ते हैं और न सहन करते पर उसे और भी अधिक कष्ट उठाने पड़ते हैं। अतः दुष्ट व्यक्ति का संग या पड़ोस नरकवास में भी बुरा है। ३०६।

दूध का जरा माठो फूंकि फूंकि पियत है।

एक बार नुकसान उठाने पर व्यक्ति सतर्क हो जाता है और दुबारा वैसी ही स्थिति आने पर बड़ी सावधानी से कार्य करता है। मट्ठे और दूध में वर्ण साम्य से भ्रम होना स्वाभाविक है। एक बार भूल से गर्म दूध पीकर मुँह जलने के अनुभव के बाद जब वह मट्ठा पीता है तो उसे भी फूंक फूंक कर पीता है। जीवन के कड़ुए अनुभवों के पश्चात जब व्यक्ति अतिरिक्त सावधानी से काम करता है तो इस कहावत का प्रयोग होता है। मट्ठे को फूंक-फूंक कर पीना मूर्खता है परन्तु कहीं कहीं अतिरिक्त सावधानी बरतना भी मूर्खता है। कुछ भी हो मनुष्य अपने जीवन के अनुभवों और पीड़ाओं को नहीं भूल सकता। ३०७।

दूधन नहाओ पूतन फलौ।

सफल और सम्पन्न होने के लिए आशीर्वचन है। हमारे गाँव में प्रत्येक स्त्री अपने बड़ों के पैर छूती है और बड़े प्रायः इसी प्रकार का आशीष देते हैं। विशेष रूप से नई आयी बहुओं को तो सभी से यही आशीर्वाद मिलता है। जीवन में संतति और सम्पत्ति सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। दूध में नहाना प्रतीक है, सम्पन्नता का। जिसके घर जितना ही अधिक दूध होता है वह उतना ही अधिक सम्पन्न व्यक्ति है और जिसके जितने ही अधिक बलिष्ठ पुत्र हैं वह उतना ही सफल परिवार है। कृषि प्रधान भारतीय संस्कृति का इस कहावत से पता चलता है। जीवन के मान दण्ड क्या हैं इनका रूप इस आशीर्वचन से व्यक्त होते हैं। राम नरेश त्रिपाठी "दूधन नहाओ" का शाब्दिक अर्थ करते हुए कहते हैं कि दूध में नहाने से बंध्यापन यदि हो भी तो दूर हो जाता है, और स्त्री पुत्रवती होती है। यह अर्थ संदिग्ध है। ३०८।

दूर के बोल (ढोल) सोहावन।

प्रेमचन्द ने भी किसी उपन्यास में कहा है कि दूर के सुन्दर दृश्य निकट आकर अनाकर्षक हो जाते हैं। अंग्रेजी में भी एक उक्ति है "Distance enchants the view" यह ठीक है। मनुष्य को अप्राप्य सबसे अधिक आकर्षक और मनोरम लगता है। उसी के प्राप्त हो जाने पर उसके प्रति उदासीनता का भाव आ जाता है। उसी प्रकार किसी सुन्दर बोल के प्रति उसके मन में तीव्र आकर्षण उत्पन्न होता है, परन्तु उसके निकट आ जाने पर उसका आकर्षण मिट जाता है। जब तक घर में रेडियो नहीं होता रेडियो के प्रति मन दीवाना-सा रहता है, आ जाने पर फिर उसे प्रयोग में लाने का भी मन नहीं होता। और वस्तुतः यह यथार्थ भी है कि दूर से दिखाई देने वाला दृश्य अधिक पूर्ण दिखाई देता है निकट आने पर उसका केवल एक पार्श्वमात्र दिखता है। ३०९।

दूरि बसै तौ गंगा पार।

इसका अनुभव तो मुझे एक बार पूस की रात में हुआ। मैं फतेहपुर से असनी घाट उतर कर गेगासों जा रहा था। असनी पहुँचने-पहुँचते रात हो गयी। मल्लाहों से बड़ी प्रार्थना-विनती की पर रात हो जाने से उन्होंने पार नहीं उतारा। वहीं पर सर्दी की रात बिना ओढ़न-बिछावन के काटनी पड़ी। रात भर घर आँखों के सामने दिखाई देता रहा पर पहुँचना असंभव था। इस घटना के पूर्व इस उक्ति में मुझे अधिक सार नहीं दिखाई देता था। परन्तु सारी रात यदि

कोई सत्य अपने नग्नतम एवं प्रखरतम रूप में था तो यही कि 'दूरि बसै तो गंगा पार !' अर्थात किसी नदी का अन्तराल अनेक बाधाएँ और अलांघ्य दूरी की स्थिति उत्पन्न कर देता है। ३१०।

देबिन चढ़ी सोहारी।
कूकर खाय चाहै बिलारी॥

सोहारी का अर्थ है पूरी—छोटी-छोटी पूरियाँ। एक बार देवी पर अर्पित हो जाने पर चढ़ाने वाले के लिए इन पूरियों का महत्व समाप्त हो गया। वह उन्हें वापिस नहीं ले सकता। अब इन पूरियों को चाहे कुत्ते खायें चाहे बिल्लियाँ। उसने तो उन्हें देवी पर अर्पित किया है। उसे विश्वास है कि वे पूरियाँ देवी को मिल गयी हैं। उसकी भावना के अनुसार उसका कर्त्तव्य पूरा हो गया है। अब उनका क्या उपयोग होता है इससे उसे सरोकार नहीं। शायद यह उक्ति किसी शंकालु के प्रश्न के उत्तर में कही गयी है। उसने कहा होगा कि तुम्हारे चढ़ाने से क्या फायदा—यहाँ तो पूरियों का भोग कुत्ते बिल्ली करेंगे। अपना कर्तव्य पूरा करके भी प्रायः लोग ऐसा कहते हैं—कुछ भी हो हमने जो बन सका कर दिया। ३११।

देवारी के खाये पड़वा न मोटाई।

दिवाली ऐसा त्यौहार है जिस दिन अनेक प्रकार की भोजन सामग्री बनती है; और गरीब होने पर भी लोग उधार लेकर त्यौहार मनाते हैं और खूब खाते-पीते हैं और खुशियाँ मनाते हैं। परन्तु कोई यथार्थ वादी व्यक्ति टोक देता है। साल भर उपवास करना और दिवाली के दिन खूब खाना—इससे कोई लाभ नहीं है। दिवाली के दिन अच्छा-अच्छा और खूब खाने से कोई स्वस्थ नहीं होगा। स्वस्थ होने के लिए तो नियमित रूप से प्रतिदिन अच्छा भोजन चाहिए। अर्थात किसी एक दिन खूब खाने या काम करने से कोई विशेष लाभ नहीं होता। ३१२।

देसी कुतिया बिलैती बोली।

जब कोई व्यक्ति बनावटी परिष्कार का दिखावा करता है। प्रायः लोग दूसरों को प्रभावित करने के लिए कुछ ऐसे काम करते हैं जो उनकी पृष्ठभूमि और स्वभाव के अनुकूल नहीं होते, तो कोई मुँहफट आदमी इस कहावत को उसके मुंह पर दे मारता है। इस कहावत का प्रयोग करना बड़े साहस की बात है,

क्योंकि जिसके लिए इस कहावत का प्रयोग किया गया है वह नाराज हो सकता है। लेकिन प्रायः यथार्थ स्थिति में प्रयोग के कारण बनावटी आदमी इतना साहस भी नहीं कर सकता कि उसका जवाब दे। प्रायः यह देखा जाता है कि कुछ लोग अपनी बात को प्रभावशाली बनाने के लिए कुछ अंग्रेजी के शब्द बीच-बीच में बोलते जाते हैं, जो साधारण व्यक्ति को पसन्द नहीं आता। वह अपनी नापसन्दगी इस कहावत के माध्यम से व्यक्त करता है। ३१३।

(ध)

धन के तेरह मकर पचीस।
चिल्ला जाड़ा दिन चालीस॥

लोग खूब सर्दी पड़ने पर मकर संक्रान्ति के आस-पास यह हमेशा कहते हैं। धनु के तेरह मकर के २५ मिला कर लगभग चालीस (३८) दिन होते हैं जब भयंकर सर्दी पड़ती है क्योंकि इस समय सूर्य दक्षिणी गोलार्द्ध की निम्नतम स्थिति तक पहुँच जाता है। मेरा ख्याल है कि तेरह की जगह पन्द्रह होना चाहिए। मैंने जैसा सुना वैसा ही रखा है। शायद कुछ लोग सही बोलते हों और "धन के पन्द्रह" ही कहते हों। इन चालीस दिनों में उत्तर भारत में अधिक सर्दी होती है। इसी सत्य को इन शब्दों में व्यक्त किया गया है। ३१४।

धन कै फिकिर न मन कै चोट।
यह धंधूसर काहेक मोट॥

जिस व्यक्ति को धन की चिन्ता न हो और जिसे किसी प्रकार की मानसिक पीड़ा न हो स्वाभाविक है कि वह व्यक्ति मोटा होगा। निश्चित रहने वालों का प्रायः स्वास्थ्य अच्छा होता है। फिर यदि उसके पास इतना धन भी हो कि उसे धन की चिन्ता न करनी पड़े तो फिर क्या कहने? ऐसा व्यक्ति निश्चित ही मोटा होगा। ३१५।

धरै बजारै नहीं लगतीं।

इस उक्ति में व्यक्ति स्वातंत्र्य और जनतंत्र की गूँज है। जबरदस्ती पकड़ कर बिठाने से बाजार नहीं लगती। कई बार मेरे गाँव में साप्ताहिक बाजार लगाने

की कोशिशें की गयीं। तमाम व्यापरियों और सौदागरों को बुला कर बिठाया गया; परन्तु विशेष बिक्री न होने की वजह से व्यापारी दुबारा बाजार में नहीं आये; और इस प्रकार कई बार बाजार लगी और कई बार उजड़ी। पंचायत ने भी कोशिश की परन्तु बाजार नहीं लगी। अतः जबरदस्ती ऐसे काम नहीं होते। ऐसे कामों के लिए पहले से अनुकूल परिस्थितियां बनानी पड़ती हैं। जहां मर्जी का सवाल हो वहां जबरदस्ती नहीं चलती। क्रय-विक्रय के क्षेत्र में विशेष रूप से स्वतंत्रता की आवश्यकता होती है। ३१६।

धान गिरै सुभागे का।
गेहूँ गिरै अभागे का॥

यह खेती संबंधी कहावत है। धान की बालें भारी होने पर झुक जाती हैं जिससे पता चलता है कि धान की खेती अच्छी है। भाग्यवान व्यक्ति के धान के खेत झुकते हैं। धान का झुकना सौभाग्य का लक्षण है और गेहूँ की लौक गिरी तो समझिये गेहूँ की खेती चौपट हुई। गेहूँ का गिरना दुर्भाग्य का संकेत है क्योंकि ऐसा होने से खेती नष्ट हो जाती है। किसान का जीवनाधार खेती ही है, जिसके नष्ट होने से उसका भाग्य अस्त हो जाता है। ३१७।

धान सब ते भले-कूटे खाये चले।

इस कहावत के पीछे एक कथा है। एक बार एक ब्राह्मण सत्तू लेकर यात्रा पर निकला। मार्ग में उसे एक नाई मिला। ब्राह्मण बुद्धू होता है और नाई बड़ा चालाक। उसमें छत्तीस बुद्धियों का होना माना जाता है। नाई धान लेकर चला था। उसके सामने समस्या थी कि उन्हें कैसे खाये? उसने ब्राह्मण को समझाया धान सब से भले कूटे खाये चले और सत्तू 'हुँ-मन भत्तू, कहाँ सानै, कहाँ खाये, मुसाफिरी का मामला पानी मिला न मिला।" ब्राह्मण मूर्ख तो था ही। सत्तू संबंधी इस शाब्दिक कठिनाई को सुन कर चौंका और उसने नाई के धानों से सत्तू बदल लिये। आशय यह कि किस प्रकार भाषा एवं वर्णन शैली किसी चीज को कम या अधिक महत्व प्रदान करा देती है। जब कोई अपने वर्णन द्वारा किसी को कम या अधिक बताने की कोशिश करता है तो उसे इस कहावत की याद दिलायी जाती है। ३१८।

धिया के चले भँड़ेहरी हालै।
बउहर चलै तौ सब घरु हालै॥

घर में लड़की के चलने से तो केवल वह कोठरी ही हिलती है जिसमें मिट्टी के बर्तनों में अनाज वगैर रखा जाता है। और जब बहू चलती है तो सारा घर हिलता है। यह कहावत व्यंग्य है बहू के फूहड़पन पर। लड़की घर में स्वतंत्र होती है उसके चलने-फिरने से अगर घर हिलने लगे तो स्वाभाविक है परन्तु यदि बहू से ऐसा हो तो अनुचित है क्योंकि उसके उठने-बैठने, चलने-फिरने, बोलने-चालने में शालीनता होनी चाहिए। बहू को बहू की भाँति रहना चाहिए। बहू में उदण्डता नहीं होनी चाहिए। वह लड़की में हो सकती है। भारतीय बहू से हमारे समाज को अनन्त अपेक्षाएँ हैं। वह गृहलक्ष्मी है—कुल बधू है, भविष्य की गृहस्वामिनी है। ३१८।

घी ते कहैं बहू करे कान।

कहती लड़की से है पर, सुनती बहू है। लड़की अपने माँ बाप के घर स्वतंत्र रहती है। अक्सर उसे आजादी भी यह कह कर दी जाती है, कि अरे चार दिन में तो सुसराल चली जायेगी फिर तो आजीवन यही सब करेगी अर्थात बन्धनों में बँध कर रहेगी। परन्तु माँ को चिन्ता रहती है कि उसकी समधिन उसे उलाहना न दे इसलिए वह उसे हर तरह से सिखाती पढ़ाती रहती है। परन्तु इस कहावत में कुछ और ही बात कही गयी है। माँ कोई राज की बात लड़की को बताना चाहती है परन्तु लड़की अनसुना कर देती है और बहू जिससे वह कुछ कहना नहीं चाहती, बड़ी उत्सुकता से सुनना चाहती है। इसमें सास बहू के संबंध की एक झाँकी मिलती है कि दोनों में एक दूसरे के प्रति अविश्वास की भावना रहती है। कहावत का अर्थ कि बात किसी से कही गई हो और सुनता कोई दूसरा हो। ३२०।

धोबी बसि का करैं जो होय दिगम्बर गाँव।

दिगम्बर जैनी नंगे रहते हैं। उन्हें कपड़ों की आवश्यकता नहीं होती। ऐसे स्थान में जहाँ लोग कपड़ों का उपयोग न करते हों, वहाँ धोबी की क्या आवश्यकता। जहाँ जिसके रहने से कोई लाभ नहीं है वहाँ वह क्यों रहेगा? अनुपयोगी स्थान में कोई भी नहीं रहना चाहेगा। जीवन में उपयोगिता का अत्यन्त महत्व है। पर पता नहीं यह कहावत हमारे क्षेत्र में कैसे प्रचलित हुई क्योंकि अवधी क्षेत्र में दिगम्बर जैनियों का नितान्त अभाव है। या तो कहावत कहीं

अन्यत्र से आई है या कभी कुछ दिगम्बर जैनी कहीं आस-पास बसे होंगे। या किसी चतुर व्यक्ति ने अपनी चतुराई का कमाल दिखाया होगा। कहावत बड़ी अर्थवान है। ३२१।

नंगा का नहाय का निचोरै।

नंगा व्यक्ति नंगा ही है। उसके पास न तो कुछ पहन कर नहाने के लिए कपड़े हैं, न पहनने के लिए। अतः वह क्या पहन कर नहाये? और जब कोई कपड़ा है ही नहीं तो गीले होने का भी सवाल नहीं उठता। अतः उसे निचोड़ने की भी चिन्ता नहीं है। अर्थात् नंगे आदमी को किसी प्रकार की चिन्ता नहीं है। निश्चिन्त आदमी बेशर्म भी हो जाता है। हमारे यहाँ बेशर्म, झगड़ालू आदमी को नंगा कहते हैं। उसे सामाजिक मान-मर्यादा की कोई चिन्ता नहीं होती। ऐसे अवसरों पर इस कहावत का उपयोग किया जाता है। ३२२।

नंगा नाचै फाटै का।

लगभग उपर्युक्त कहावत की भाँति यह कहावत है। नाचने वाले अनेक प्रकार के कपड़े पहनते हैं, जिनके लिए उन्हें खर्च करना पड़ता है और सावधानी से उन्हें सुरक्षित रखना पड़ता है। परन्तु नंगे व्यक्ति के नाचने में कोई परेशानी नहीं क्योंकि उसे वस्त्रों की आवश्यकता ही नहीं। अर्थात् बेशरम आदमी को अपनी बेशरमी प्रदर्शित करने में कोई कठिनाई नहीं है, परन्तु प्रतिष्ठित व्यक्ति को नाचने में काफी प्रयत्न करने पड़ते हैं। यह ध्यान रखना चाहिए कि हमारे समाज में नाचना कोई सम्मानपूर्ण कार्य नहीं माना जाता। नाचने से सामाजिक मर्यादा घटती है। परन्तु जिसकी कोई सामाजिक मर्यादा है ही नहीं उसका क्या घटेगा? अर्थात नंगा तो पहले ही से बेशर्म आदमी के रूप में विख्यात है। उसके नाचने से उसका कुछ नहीं बिगड़ता। कोई बेशरम आदमी जब बेशरमी करने लगता है, तो इस कहावत का उपयोग किया जाता है। ३२३।

नंगे भला कि टँटे मचवा?

यह एक प्रश्न है जिसमें संकेत छिपा हुआ है कि कमर में, नग्नता को छिपाने के लिए, मचवा (पाया) लटकाये घूमने से तो नग्न रहना ही अच्छा है क्योंकि उस मचवा से उसकी नग्नता की ओर और भी ध्यान आकृष्ट हो जाता है। अतः सांकेतिक नग्नता अधिक आकर्षक और अश्लील होती है अपेक्षाकृत पूर्ण नग्नता के। फिल्म सेंसर के रूप में इस प्रश्न पर अक्सर गहराई से विचार करना पड़ता है।

पश्चिमी फिल्मी दुनिया की निगाहों में भारतीय रोमांटिक दृश्य अधिक अश्लील हैं जब कि उनकी नग्नता अश्लील नहीं है। हमारे रोमांटिक दृश्यों में छिपाव, दुराव और सांकेतिकता है जबकि उनके दृश्यों में स्पष्टता और नग्नता है। तात्पर्य यह कि कभी-कभी नग्नता को छिपाने के प्रयत्न में हम नग्नता को और भी उद्भासित कर देते हैं। ३२४।

नई नाउनि नोखे कै नहन्नी।

हमारे यहाँ 'बाँस की नहन्नी' भी कहते हैं। किसी भी नौसिखुए के सम्बन्ध में यह व्यंग्य किया जाता है। जब कोई व्यक्ति किसी नये काम में अटपटापन महसूस करता है, परन्तु दिखाना यह चाहता है कि वह एक्सपर्ट या निपुण है, इस निपुणता प्रदर्शन में वह और भी अपना अज्ञान प्रदर्शित करता है तब इस कहावत का प्रयोग किया जाता है। बाँस के नहरन से नाखून नहीं कट सकते। ३२५।

नक्कार खाने में तूती के आवाज।

तूती एक छोटी चिड़िया भी होती है, परन्तु यहाँ पर तूती एक प्रकार की छोटी सी पिपिहरी है। जहाँ नगाड़े बज रहे हों वहाँ उस छोटी सी पिपिहरी की आवाज कैसे सुनी जा सकती है? बड़े आदमियों के बीच में जब छोटों की कोई नहीं सुनता, तो अपनी उपेक्षा की शिकायत इस कहावत के शब्दों में प्रकट होती है। किसी बड़ी महफिल या सभा में प्रायः ऐसा होता है कि कुछ महत्वपूर्ण लोगों के सामने साधारण लोगों की अच्छी बातें भी लोगों को मान्य नहीं होतीं। ३२६।

न धान बोवै न बदरन कैती चितवै।

पानी की आवश्यकता धान के खेतों को सबसे अधिक होती है जो किसान धान बोता है उसे बरसात की बड़ी चिन्ता रहती है। वह बादलों की ओर देख कर अपनी खेती के बारे में चिन्तित होता रहता है। परन्तु जिसने धान बोये ही नहीं उसे क्या चिन्ता? वह बादलों की ओर क्यों देखेगा। अस्तु, जिस व्यक्ति ने चिन्ता की कोई स्थिति पैदा ही नहीं की वह क्यों भयभीत हो? कुछ लोग इसी-लिए अपनी निश्चिन्तता प्रकट करते रहते हैं क्योंकि उन्होंने ऐसा कुछ किया ही नहीं है जिससे उन्हें भयभीत होना पड़े। ३२७।

न धाय कै चाढ़ै न खसकि (रपाट) कै गिरै।

जल्दबाजो से अक्सर काम बिगड़ जाते हैं और तकलीफ भी उठानी पड़ती है। इसीलिए कहा भी गया है कि जल्द काम शैतान का। जितनी ही गति में त्वरा होगी, उतनी ही अधिक संभावना दुर्घटना की होगी। अतः विवेकी मनुष्य कहता है कि न तेजी से चढ़े और न फिसल कर गिरने का खतरा पैदा हो। सावधानी से काम करना चाहिए। जिससे असफलता और कठिनाइयों से बचा जा सके। इसमें व्यवहार सीख है। ३२८।

न धोबी के औरु परोहन न गदहा के औरु किसान।

यह बहुत ही अर्थ पूर्ण कहावत है। प्रायः जीवन में ऐसे संयोग बैठते हैं जिसके अतिरिक्त अन्य संयोग अनुचित या बुरे प्रतीत होते हैं। धोबी और गधे का साथ आदर्श-सा है क्योकि धोबी को गधे से अच्छी सवारी नहीं मिल सकती और गधे को धोबी से अच्छा मालिक भी नहीं मिल सकता। जैसे किसी धनी मूर्ख को कुरूप विदुषी मिल जाये। मूर्ख धनी और कुरूप विदुषी का मेल इस कहावत को चरितार्थ करने वाला है। कुरूप को न तो उस धनी से अच्छा पति मिल सकता था और न उस मूर्ख को उस कुरूपा से अच्छी विदुषी मिल सकती थी। हम इस कहावत का उपयोग तब सकते हैं जब इसी प्रकार का संयोग मिल जाय। इसमें गहरा व्यंग्य है। ३२९।

न नौ मन तेलु होई न राधा नचिहैं।

यह बहुत ही प्रचलित कहावत है। अपनी श्रेष्ठता का ढिंढोरा पीटते रहना; और जब परीक्षा का अवसर आये तो ऐसी शर्त रख देना जो अशक्य हो। ऐसा करने वालों को लोग जान ही जाते हैं और उनकी श्रेष्ठता की पोल खुल ही जाती है। तब लोग स्पष्ट कहते हैं कि न तुम्हारी शर्त पूरी होगी न तुम अपना कमाल दिखाओगे। अर्थात तुममें वह कमाल है ही नहीं, जिसका इतना बखान हो रहा है। ३३०।

ना अति बरखा ना अति धूप।
ना अति बकता ना अति चूप॥

यह नीति संबंधी अर्द्धाली है। "अति सर्वत्र वर्जयेत" इसे संस्कृत की कहावत में यही भाव है। अति किसी प्रकार की भी अच्छी नहीं होती। अतिवृष्टि, अनावृष्टि दोनों से नुकसान है। अधिक बोलना भी अच्छा नहीं है और अधिक चुप रहना भी

ठीक नहीं। समयानुसार आवश्यकतानुसार सभी बातें शोभा देती हैं। उनकी उपयोगिता भी सानुपात और निश्चित सीमा में रहने से ही समझ में आती है। ३३१।

नाऊ की बरात माँ सब ठकुरै-ठाकुर।

जब कहीं एक जैसे ही आदमी मिल जायँ तो इस कहावत का प्रयोग व्यंग्य रूप में किया जाता है। नाई को समुचित सम्मान देने के लिए प्रायः नाऊ ठाकुर कहते हैं। ठाकुर क्षत्रिय वर्ण के लोगों को कहते हैं। इस प्रकार नाइयों का ठाकुर शब्द से विशेष सम्मान किया गया है। नाइयों की बारात में शामिल नाई ही होंगे और यदि इनका सम्मान सूचक शब्द प्रयुक्त किया गया तो नाइयों की बारात में सब ठाकुर ही ठाकुर होंगे। यह अभिजात्य वर्ग के लोगों का व्यंग्य है नाइयों पर कि वे नाई नहीं ठाकुर बनने की कोशिश करते हैं। जाति भेद की बात हमारी समाज में बहुत गहराई से जमी हुई है। और यदि कोई श्रेष्ठ बनने को कोशिश करता है तो श्रेष्ठ जाति वालों को अच्छा नहीं लगता। इसी पृष्ठभूमि पर यह कहावत बन गयी है। ३३२।

"नाऊ नाऊ केत्ते बार ?"
जजमान सब अगहे ऐ हैं।"

यह संवाद है जिससे संकेत मिलता है कि जो अवश्यम्भावी है उसके प्रति अधीर होने से कोई लाभ नहीं। वह अपने आप प्रकट हो जायेगा—उसके संबंध में अनुमान और अटकल लगाने की कोई आवश्यकता नहीं। बाल कटवाने वाला अपने बालों के संबंध में उत्सुक हो रहा है। नाई एक यथार्थवेत्ता निष्णात की भाँति उसे समझाता है कि अभी तुम्हारे सामने सब बाल आ जायेंगे तब देख लेना। "प्रत्यक्षं किम प्रमाणं" जो प्रत्यक्ष है उसके लिए किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं। ऐसी स्थिति में जब कोई उत्सुकतावश ऐसा प्रश्न करता है तो इसी कहावत के द्वारा उसके औत्सुक्य का शमन किया जाता है। ३३३।

नाचि न आवै आँगन टेढ़।

यह बहुत ही लोकप्रिय कहावत है। अपनी कमियों अथवा अज्ञान को छिपाने के लिए प्रायः लोग दूसरों को दोष देने लगते हैं। यह बहुत ही सामान्य एवं विश्वव्यापी सत्य है। साधारण खिलाड़ी अपनी हॉकी स्टिक का या रैकट का दोष देता है अगर अच्छा नहीं खेल पाता। जबकि सत्य यह है कि वह अच्छा खिलाड़ी नहीं है। नाचने वाली स्टेज का, साजसज्जा का, संगीतज्ञों को दोषी ठहराती है।

कोई भी अपनी भूलों और कमियों को देखने और समझने के लिए तैयार नहीं है। ऐसी स्थिति में उसे इस व्यंग्य की चोट सहनी पड़ती है। नाचना आता नहीं आँगन को टेढ़ा बतलाते हैं। ३३४।

नानी के आगे ननौरे की बातैं।

किसी जानकार व्यक्ति के समक्ष जब कोई अनाप-शनाप बढ़ा चढ़ा कर तमाम बातें करने लगता है तो उस व्यक्ति को बरदास्त नहीं होता और वह कह उठता है कि ये सब बातें औरों के सामने करना जो जानता न हो। नानो के समक्ष ननिहाल की बातें करने से क्या फायदा, क्योंकि नानो सब कुछ जानती है उससे ज्यादा उसके घर और गाँव के बारे में नाती को क्या पता होगा। अतः उस व्यक्ति को जो जिस विषय का अच्छा जानकार है. उसी को उसके विषय पर समझाना या बताना व्यर्थ है और उपर्युक्त कहावत को चरितार्थ करता है। ३३५।

नाम निर्मलदास देही भरे माँ कोढ़ु।

इस विषय के आधार पर अनेक कहावतें कही जाती हैं जिनमें से कुछ ही यहाँ दी गयी है। नाम का कुछ अर्थ होता है और प्रायः उस नामधारी व्यक्ति में वे गुण नहीं मिलते जिनका संकेत नाम के अर्थ से होता है। संस्कृत में पापक की कथा सर्वविदित है। सच तो यह है कि माँ बाप जन्मोपरान्त शीघ्र ही अपने बच्चों की अच्छा-सा नाम रखते हैं। न तो उस समय गुणों का पता चलता है और न यह संभव है कि गुणों के आधार पर नाम रखा जा सके। अतः बुरे से बुरे व्यक्ति का नाम अच्छा और विपरीत अर्थ वाला हो सकता है। इसी अर्थ और गुण-विपर्यय के आधार पर इस कहावत का जन्म हुआ है। ३३६।

नाम पहाड़ीसह देंहीं चियाँ असि।

प्रारम्भ में एक या दो ऐसी कहावतें प्रचलित हुई होंगी बाद में लोगों ने ढूँढ़ ढूँढ़ कर ऐसे विपर्ययों के आधार पर अनेक कहावतें बना डाली होंगी। इनके पीछे एक दुर्भावना छिपी हुई रहती है कि किसी भी प्रकार हम अन्य व्यक्ति को नीचा दिखायें। यह मानव का ऐसा विश्वव्यापी गुण या दुर्गुण, है जिसने मानव जीवन में दुख और मानसिक पीड़ा को बहुत बढ़ाया है। मेरे अतिरिक्त सभी व्यक्ति घटिया हैं। अपनी श्रेष्ठता जमाने का अगर कोई दूसरा साधन नहीं है तो नाम के अर्थ और व्यक्ति के गुणों में तो भेद मिल ही जायेगा अतः वही आधार पकड़ा गया है। ३३७।

नाम पिरथीपाल मुंइं बिसवौ भरि नहीं ।

अगर किसी व्यक्ति का नाम श्यामसुन्दर है पर वह कुरूप है, यदि किसी का नाम पृथ्वीपाल है और उसके पास विश्वा भर भी धरती नहीं है, यदि वह कद में छोटा है पर नाम पहाड़सिंह है, तो इसमें उसका क्या दोष है ? और किसी का भी क्या दोष है । ऐसी निर्दोष स्थिति को लेकर हम इस प्रकार आचरण करते हैं मानो इसमें उसका बड़ा भारी दोष है, वह अपराधी है । यह चढ़ाऊपरी स्पर्द्धा की भावना हमारे जीवन में विषवपन करती रहती है । जब तक जीवन में स्पर्द्धा की भावना है, मानव समाज अधिक सभ्य और सुसंस्कृत नहीं समझा जा सकता । नाम विपरीत स्थिति होने पर इस कहावत का प्रयोग किया जाता है । ३३८ ।

नाम फूलसिंघ गांड़ि चैला असि ।

परन्तु हमारे जीवन में प्रारम्भ से ही प्रतिस्पर्द्धा पर बल दिया जाता है । इससे एक दो आगे आयेंगे पर जिससे अन्य लोगों की मानसिक पीड़ा और अस्तित्व की छटपटाहट बढ़ जायेगी । संस्कृति वह तत्व है जो व्यक्ति को भीतर से समृद्ध बनाता है और जिसके सम्पर्क से अन्य का भी अन्तर्मन प्रफुल्लित हो उठता है । ऐसा करना तो दूर रहा हम सदैव दूसरों को यही बताने की कोशिश में लगे रहते हैं कि वह कितना छोटा है, अज्ञ है, मूर्ख है, दोषी है, अपराधी है । इस प्रकार समस्त समाज का प्रत्येक व्यक्ति अन्य के समक्ष छोटा है, हीन है । हम दूसरों में हीन भावना भर कर सबल बनना चाहते हैं । जबकि होना यह चाहिए था कि यदि परिस्थितिवश हममें कोई गुण या विशेषता है, बल या बुद्धि है तो उसमे दूसरों की सहायता करें । ३३९ ।

नाम स्यामसुन्दर मुँह कूकुरि का अस ।

परन्तु सामान्यतः यह देखा जाता है कि अधिक बलवाले, बुद्धिवाले कम बल वालों का शोषण करते हैं । ये कहावतें इसी मानवीय शोषण की प्रक्रिया से प्रकट हुई हैं । जहाँ बेचारे का कोई दोष भी नहीं है वहाँ भी हम उसको दोषी ठहराना चाहते हैं । सहानुभूति एवं सहयोग के स्थान पर शोषण की भावना कार्य कर रही है जो मानवीय विकास की भावना के विरुद्ध है । इसी भावना के परिणामस्वरूप अनेक सन्त, महात्माओं एवं सत्य शोधियों की अपनी जीवन का उत्सर्ग करना पड़ता है । सबसे अधिक संख्या में इस प्रकार की कहावतों का पाया जाना इसी स्थिति को सिद्ध करता है । ३४० ।

नाम सुगन्धा पादै का बिखु ।

दूसरे को पोड़ा पहुँचाने में मनुष्य को एक विचित्र प्रकार का Sadistic सुख प्राप्त होता है । कोई भी पादेगा, तो उससे दुर्गन्ध फैलेगी चाहे उसका नाम सुगन्धा हो या चमेली । परन्तु उस बेचारी का पादना जहर हो गया क्योंकि उसका नाम सुगन्धा है । खैर, कहावत का प्रयोग इसी प्रकार के अनेक व्यक्तिगत विपर्ययों को लक्ष्य करके किया जाता है । प्रायः हम सभी के संबंध में ऐसे विपर्यय आसानी से खोज सकते हैं । कभी-कभी इस कहावत का प्रयोग ठीक भी होता है—जब कोई व्यक्ति बड़ा दिखावा करता है परन्तु गुणों में वैसा नहीं होता तो इस कहावत का अच्छा प्रयोग होता है । ३४१ ।

नारि सुहागिन जल घट लावै ।
दधि मछली जो सनमुख आवै ।।
सनमुख धेनु पिआवै बाछा ।
मंगल करन सगुन है आछा ।।

यह यात्रा-सगुन-संबंधी कहावत है । पहले यात्रा बहुत ही अनिश्चित और भयावह थी । अतः शंकालु मन को प्रारम्भ में आश्वस्त रखने के लिए इस प्रकार के संकेतों से कुछ बल मिलता था । इनमें कोई वैज्ञानिक तर्क नहीं मिल सकता । केवल कुछ माने हुए चिह्न हैं जो विपरीत भी सिद्ध होते रहते हैं । परन्तु इनका प्रभाव बड़ा व्यापक है । जल से भरा हुआ बर्तन वह भी सुहागिन के सिर पर, दही मछली, दूध पिलाती हुई गाय अच्छे सगुन हैं । चित्र-निर्माण के पूर्व हमारे सिनेमावाले भी बड़े धार्मिक हो जाते हैं और मुहूर्त करते हैं । ३४२ ।

ना होई बाँसु न बाजी बाँसुरी ।

यदि कारण को ही समाप्त कर दिया जाये तो परिणाम उत्पन्न ही न होगा । बाँसुरी बाँस से बनती है अतः बाँस को ही समाप्त कर दिया जाये तो बाँसुरी कैसे बनेगी; और जब बाँसुरी नहीं होगी तो बजने का सवाल ही नहीं पैदा होगा । पता नहीं किस व्यक्ति को बाँसुरी से इतनी घृणा हो गयी कि चाणक्य की भाँति कुशों की जड़ों में माठा और नमक भरने लगा । बड़ा निर्मम रहा होगा वह व्यक्ति । यहाँ पर बाँसुरी किसी अप्रिय घटना के प्रतीक स्वरूप प्रस्तुत की गयी है । यदि अप्रिय घटना से बचना है तो उसके उत्पादक कारणों को मिटाना पड़ेगा । यही सन्देश है इस कहावत में । कदाचित बाँसुरी वादन से कोई आसिक बहुत चिढ़ गया होगा और उसके विनाश के लिए तुल गया होगा । ३४३ ।

निउनी चली बरन का अदहनु धरै।

बड़े बनाने के लिए अदहन नहीं चढ़ाया जाता, बल्कि दाल पानी में भिगोयी जाती है। दाल पकाने के लिए कुछ पहले से पानी चढ़ा दिया जाता है और पानी के गर्म हो जाने पर उसी में दाल छोड़ दी जाती है। ऐसा करने से दाल अच्छी पकती है। निउनी यानी निपुण। यहाँ पर व्यंग्य है कि बड़ी निपुण हैं, बड़े बनाने के लिए अदहन चढ़ाने जा रही हैं। घर में जब बहू ऐसी ही कोई अटपटी भूल कर बैठती है तो सासु के व्यंग्य वाणों का शिकार होती है। यह घरेलू कहावत है जिसका प्रयोग ऐसी ही स्थितियों तक सीमित है। जब बेवकूफ आदमी अक्लमंदी दिखाने की कोशिश में बेवकूफी का काम करता है तो इस कहावत को चरितार्थ करता है। ३४४।

निबरे कै मेहरिया जबारि भर कै भौजी।

भौजी या भावज या भाभी एक ऐसा रिश्ता है, जिसमें व्यक्ति को देवर बनकर स्त्री से श्लील अश्लील मज़ाक करने का अधिकार मिल जाता है। पुराने जमाने में देवर भाभी का, पति के बाद, दूसरा पति होता है। इस विशेषाधिकार का सभी उपभोग करना चाहते हैं परन्तु ऐसा अधिकार प्रत्येक की पत्नी के साथ नहीं मिल सकता परन्तु कमजोर व्यक्ति की पत्नी के साथ ऐसा संबंध जोड़ना संभव हो जाता है क्योंकि कमजोर होने के कारण वह अन्य लोगों के इस अधिकार का विरोध नहीं कर सकता। कमजोर व्यक्ति के साथ जब कोई ऐसा व्यवहार करता है तो इस कहावत का प्रयोग होता है। ३४५।

नेनू कै नाक पिसान का दिया।

मक्खन की नाक और आटा का दिया। बहुत ही भावुक व्यक्ति जब छोटी-छोटी बातों से प्रभावित होकर दुखी होने लगता है, तब इस कहावत के जरिये उसकी भावुकता की निन्दा की जाती है। मक्खन की नाक जरा सी गर्मी से पिघल जाती है। यहाँ पर आटा का दिया है जो अधिक ताप नहीं सह सकता। परन्तु मक्खन उतनी भी गर्मी बर्दाश्त नहीं कर सकता। इस कहावत का अच्छा उपयोग सासुओं द्वारा किया जाता है। पहले तो वे बहुओं की लानत मलामत करती रहती हैं, व्यंग्य एवं टोने बोलती रहती हैं। और जब बहू उनको नहीं सह पाती और अपनी विवशता में रोने लगती है तो सासु इस कहावत से उसी को दोषी ठहराती हैं—इतनी भावुकता भी किस काम की। ३४६।

नोखे कै भगतिनि गरारी कै माला।

अनोखी भगतिन है गरारी की माला जपती है। गरारी लकड़ी की गिर्री है जिसके सहारे कुएँ से पानी खींचा जाता है। माला की गुरियाँ भी उसी लकड़ी की गिर्री की तरह होती है। भगतिन कोई साधारण नहीं है—अनोखी भगतिन है, तो स्वाभाविक ही है कि उसकी भक्ति का ढंग भी अनोखा होगा। उसकी गिरियों की बनी होगी। जब कोई व्यक्ति अपनी महत्ता या विशेषता दिखाने के लिए कुछ विचित्र प्रकार का आचरण करता हो तो इस कहावत का उपयोग किया जाता है। ३४७।

नोखे घर का नौकर।
चूनी खाय न चोकर॥

अनोखे घर का नौकर चूनी चोकर नहीं खाता। बात यह है कि—नौकर के लिए अलग प्रकार का साधारण और सस्ते अन्न का भोजन बनाया जाता है। परन्तु कोई नौकर यदि ऐसा आ गया जो साधारण भोजन नहीं करता तो उपर्युक्त शब्दों में उसकी आव भगत होती है। जब कोई साधारण व्यक्ति किसी विशेष सम्पर्क में रहने के कारण, असाधारण व्यवहार करता है तो उसे इस व्यंग्य बाण को बरदाश्त करना पड़ता है। अपने घर में तो वह मोटा अन्न खाता होगा पर दिखाने के लिए दूसरे के यहाँ मोटा अन्न नहीं खाता। ३४८।

नौ कै लकड़ी नब्बे खर्चु।

किसी वस्तु का मूल्य तो अधिक न हो परन्तु उस पर ऊपरी खर्च अधिक आये तो इस कहावत का प्रयोग होता है। इस भाव के लिए भी अनेक कहावतें हैं। प्रायः कपड़े की कीमत से कपड़े की सिलाई अधिक पड़ जाती है तो यही कहते हैं। नौ रुपये की तो लकड़ी खरीदी, परन्तु उसके ढोवाने, कटाने इत्यादि में नब्बे रुपये खर्च हो गये। ३४९।

नौ दिन चलै अढ़ाई कोस।

सुस्त और कामचोर को लक्ष्य करके यह कहावत कही जाती है। चले तो नौ दिन परन्तु फासला ढाई कोस का ही तय किया। नौ दिन में ढाई कोस चलना, चलना नहीं। कुछ लोगों को दूसरे संदर्भ में भी इस कहावत का उपयोग करते सुना गया है : पैदल चलते-चलते आदमी थक जाता है और अपने गन्तव्य को नहीं पहुँच पाता। ऐसा प्रतीत होता है कि दूरी बढ़ती जा रही है तो

अपने प्रयत्न को अधिक और परिणाम को कम दिलाने के लिए इस कहावत का प्रयोग होता है। अर्थात् चले तो इतना अधिक परन्तु पहुँचे कभी कहीं नहीं। मेहनत इतनी अधिक की पर परिणाम उतना न मिला। ३५०।

नौ सौ चूहा खाय बिलरेऊ हज का चलीं।

स्वभाव बुरे काम करने का है और जीवन में अब तक केवल बुरे ही काम किये हैं, पर दावा अच्छे काम करने का है, तो लोगों को विश्वास नहीं होता। जैसे बिल्ली कहे कि अब मैं भगतिन हो गई हूँ और इसलिए चूहे नहीं खाऊँगी तो किसी को उस पर भरोसा नहीं होगा। पाप या बुरे काम तो कर ही डाले अब पाक-साफ बनने से क्या होगा? कहावत की ध्वनि यह है कि यदि कोई काम बुरा है तो उसे करना ही नहीं चाहिए। करने के बाद फिर छोड़ने से आचरण की शुद्धता कैसी? ऐसे व्यक्तियों पर अविश्वास हो जाता है। ३५१।

(प)

पउला पहिनि कै हर जोतै, औ सुथना पहिनि निराबै।
घाघ कहैं ई तीन्यू भकुआ सिर बोझा औ गावै॥

घाघ शब्द के अर्थ ही घाघ के कारण चतुर, होशियार, अनुभवी व्यक्ति के हो गये हैं। घाघ और भड्डरी की बहुत-सी उक्तियाँ कहावतों के रूप में प्रचलित हो गयी हैं। बहुत-सी उक्तियाँ पं० राम नरेश त्रिपाठी की पुस्तक में से संकलित हैं। उन सभी उक्तियों का कहावतों के रूप में उपयोग नहीं होता। लोक साहित्य की पहली शर्त है कि वह मौखिक होता है। लिखित साहित्य भी मौखिक परम्परा में अलिखित रूप में प्रचलित हो जाता है तो वह भी एक प्रकार का लोक साहित्य हो जाता है। तुलसीदास की रामायण का बहुत सा अंश मौखिक परम्परा में प्रचलित हो गया है। लकड़ी के जूते (पउला) पहन कर हल जोतना कष्ट साध्य कार्य है, पाजामा पहन कर निराई भी ठीक नहीं बनती और सिर पर बोझा लेकर चलने से वैसे ही दम फूलने लगता है, उस पर से गाना। ऐसा करने वाले बेवकूफ ही होंगे—ऐसा घाघ का कथन है।३५२।

पछुवा हवा ओसावँ जोई।
घाघ कहैं घुन कबौं न होई॥

यह उक्ति कृषि सम्बन्धी है जो अनुभव पर आधारित है। पुरवा हवा में ओसाने से अनाज में कुछ गीलापन रह जाता जिससे घुन बहुत जल्दी लग जाते हैं; परन्तु पछुवा हवा बिलकुल शुष्क होती है। पछुवा हवा में ओसाने से अनाज ठीक से सूख जाता है। पूरी तरह से सूखे अनाज को बखारी में या अन्यत्र रखने से घुन नहीं लगता क्योंकि दाना सख्त और सूखा होता है। किसानों के लिए यह बड़ी उपयोगी सीख है। खेतों में तो अनेक कारणों से अनाज को नुकसान पहुँचता ही है; परन्तु ठीक से न रखने पर भी अनाज खराब हो जाता है। ३५३।

पढ़ै-लिखै की ऐसी-तैसी।
जोतब खेत चराउब भैंसी॥

यह कहावत, उस समय बतायी गयी होगी जब साक्षरता प्रसार के प्रयत्न प्रारम्भ हुए होंगे। जिस प्रकार साक्षरता के लिए समाज सेवकों ने नारे लगाये होंगे उसी प्रकार गांव के लोगों ने भी अपने नारे तैयार कर लिये होगे। पढ़ना-लिखना बेकार है। अतः अपना समय उसमें क्यों नष्ट किया जाये? जिस समय खेती के लिए उपयोगी बच्चे स्कूलों में पढ़ेंगे, उतनी देर में वे ही बच्चे अपने खेत जोत सकते हैं, अपने जानवरों को चरागाहों में चराने के लिए ले जा सकते हैं। अतः किसान अपने बच्चों को पाठशालाओं में भेज कर उनका समय नहीं नष्ट करना चाहते। अब इस धारणा में परिवर्तन हो गया है। ३५४।

पढ़े-लिखे ते कुछो न होई।
हरु जोते कोठिला भरि होई॥

इस उक्ति के माध्यम से भी उपर्युक्त दृष्टिकोण को ही स्पष्ट किया गया है। पढ़ने लिखने से कुछ न होगा जब कि हल जोतने से कोठिला भर के अनाज होगा। कृषि जीवन की दृष्टि से शिक्षा की अनुपयोगिता पर कृषकों की यह उक्ति काफी समय तक प्रचलित रही; और किसान अपने बच्चों को पाठशालाओं में भेजने से इन्कार करते रहे। जबरिया तालीम या अनिवार्य शिक्षा कठिनाई से लागू की गयी और कुछ समय तक अशिक्षित माँ बाप अनेक बहाने करके अपने बच्चों को स्कूल जाने से रोकते रहे। ३५५।

पतुरिया रूठी धरमु बचा ।

बड़ी सारगर्भित कहावत है। स्त्री के सहवास के लिए उतावला रहना पुरुष के लिए स्वाभाविक है। इस मामले में वह इतना कमज़ोर है कि अपने धर्म की रक्षा नहीं कर सकता। पतुरिया या रण्डी के आकर्षक से वह अपने को बचा नहीं सकता। अतः वह इस प्रकार का पाप कर ही बैठता है; परन्तु यदि पतुरिया या रण्डी रूठ जाये तो पुरुष का धर्म बच जाये। अतः उसके धर्म की रक्षा उस पर निर्भर नहीं, बल्कि उस स्त्री पर है जो उसे पाप करने पर प्रेरित करती है। ऐसी किसी भी अन्य स्थिति में जब मनुष्य अपने प्रयत्नों से नहीं, बल्कि स्थिति के कारण किसी बुराई से बच जाता है तो इस कहावत का प्रयोग होता है। ३५६।

परकी गाय कोलैंदा खाय ।
बारबार मौहा तरे जाय ॥

मौहा (मधूक) का बना हुआ हलुआ (लपसी) गाय एक बार खा लेती है। उसकी महक तब से उसके मन में बसी हुई है। उसी महक के सहारे वह बार-बार मौहा (मधूक) वृक्ष के नीचे जाती है कि उसे कोलैंदा खाने को मिलेगा पर वहाँ तो कोलैंदा मिलता नहीं। उसी स्थिति को मानव व्यवहार पर लागू किया गया है। एक बार संयोग से किसी व्यक्ति को कोई लाभ हो जाता है तो वह समझता है कि वह तो उसका प्राप्य ही है और उसे मिलना ही चाहिए। वह उसी इरादे से उसी स्थान पर बार बार जाता है, या प्रयत्न करता है और निराश होता है तो इसी कहावत को चरितार्थ करता है। ३५७।

परकी घोड़ी भुसौरे ठाढ़ि ।

लगभग उपर्युक्त कहावत की भाँति है। परकी घोड़ी बार-बार भुसौरे के पास आकर खड़ी हो जाती है। एक बार वह भुसौरे में जाकर भुस खा आयी। अब उसे चोट लग गई। भुस खाने की उम्मीद में वह भुसौरे के पास आकर खड़ी हो जाती है, इस घात में कि मौका लगे कि वह भुस खाय। पर भुसौरे का मालिक अब सावधान हो गया है, और अब घोड़ी को मार भगाता है। इसी प्रकार जब मनुष्य किसी प्रकार की मुफ़्तखोरी का आदी हो जाता है तो परकी घोड़ी की भाँति आचरण करता है पर उसे हमेशा सफलता नहीं मिलती। ऐसे व्यक्ति पर यह कहावत चरितार्थ होती है। ३५८।

पर उपदेस कुसल बहुतेरे ।

गो० तुलसीदास की चौपाई का एक अंश है जो मानवीय आचरण की बड़ी ही सटीक व्याख्या करती है । दूसरे को सीख देने में सभी बड़े निपुण होते हैं पर ऐसा आदमी मुश्किल से ही मिलता है जो अपने कथनानुसार आचरण करते हों । दूसरों को उपदेश देने से अधिक आसान काम शायद ही और कोई हो । ३५८ ।

पर धन जोगवैं मूरखचन्द ।

बहुत ही उपयोगी सत्य को स्पष्ट ढंग से इस कहावत में प्रस्तुत किया गया है । वह व्यक्ति निश्चित ही मूर्ख होगा जो दूसरे के धन का संरक्षण करता है । जहाँ धन होगा, खतरा होगा । जान की जोखिम भी रहती है । अपने धन के संरक्षण की बात तो ठीक है क्योंकि वह यदि सुरक्षित रहा तो कभी काम देगा परन्तु दूसरे का धन यदि सुरक्षित रहा भी, तो संरक्षण कर्त्ता को क्या मिला । जिसका धन है वह एक दिन ले जायेगा और यदि खो गया या कोई चुरा ले गया तो संरक्षणकर्त्ता ही चोर समझा जायेगा और उसे धन का भुगतान करना पड़ेगा । साथ ही चोर डाकू के हाथों मार भी खाता है या कभी-कभी जान गँवाने तक की स्थिति पैदा हो जाती है । फिर भी पता नहीं क्यों इतना सब जानते हुए भी परधन संरक्षण करने वाले बहुत दिखाई देते हैं । ३६० ।

पर धन पै लक्ष्मी नारायन ।

इसके पूर्व की कहावत की मूर्खता का कारण इस कहावत में दिखाई देता है । अपने पास तो इतना धन है नहीं तो दूसरे का धन रख कर ही यदि धनपति या लक्ष्मीनारायण बना जा सके तो क्या बुरा है ! परन्तु लोग सब जानते हैं और जब कोई व्यक्ति इस प्रकार किसी अन्य के धन पर अपने को धनी जताने की कोशिश करता है तो लोग कह देते हैं कि पर धन पै लक्ष्मीनारायण । कभी-कभी लोग इस लालच से भी धन रखते हैं कि उसको भी उसका कुछ अंश मिल जायेगा । सम्पत्ति का मालिक मर गया तो वह धन उसका हो जायेगा । या कभी-कभी यह भी होता है कि लालच बढ़ता है और वह उस धन को अपना बना लेता है । साधारण सरल अर्थ है : दूसरे के धन के सहारे जीवन यापन करना । ३६१ ।

पर मरी सासु आँसों आवा आँस ।

हमारे समाज में सासु बहू का रिश्ता बड़ा विख्यात है । बहू को सासु के

शासन में रहकर अनेक प्रकार की यातनाएँ सहनी पड़ती हैं। बहू को किसी प्रकार की भी स्वतन्त्रता नहीं होती और ताने भी सहने पड़ते हैं। घर की सारी टहल तो करनी ही पड़ती है रात में थके हुए शरीर से सासु के पैर भी दाबने पड़ते हैं। इतना कष्ट देने वाली सासु यदि मरे तो स्वाभाविक है कि बहू को आँखों में आँसू नहीं आयेंगे और यदि आयेंगे भी तो मरने के बहुत दिनों के बाद जब वह कुछ अपनी यातनाओं को भूल गई होगी। अतः सासु की मृत्यु के एक वर्ष के उपरान्त बहू की आँखों में आँसू आये। स्वाभाविक तो है पर शिष्टाचार एवं व्यवहार को दृष्टि से अनुपयुक्त है। अतः इसी प्रकार अन्य क्षेत्रों में भी समय निकल जाने पर यदि कुछ किया जाता है तो इस कहावत का प्रयोग होता है। ३६२।

परहथ बनिज सँदेसन खेती, बिन बर देखे ब्याहै बेटी।
द्वार पराये गाड़ै भाती, ई चारिउ मिलि पीटैं छाती॥

इस कहावत भी घाघ जैसे व्यक्ति की कही हुई है। दूसरों के जरिये व्यापार, संदशों से खेती, बिना वर देखे हुए बेटी का विवाह करना और दूसरे के दरवाजे पर अपनी धरोहर (सम्पत्ति) को गाड़ने वाले लोगों की गणना मूर्खों में को जाती है। एक दिन ये चारों भयंकर परिणाम को भोगेंगे और सब छाती पीट-पीट कर रोयेंगे। अर्थात् व्यापार एवं खेती स्वयं करना चाहिये और बेटी के लिए वर स्वयं पसन्द करना चाहिए। जहाँ तक बन पड़े महत्वपूर्ण कार्य व्यक्ति को स्वयं करने चाहिए किसी के सहारे नहीं छोड़ देना चाहिए नहीं तो अवांक्षनीय स्थिति का उत्पन्न हो जाना स्वाभाविक ही है। ३६३।

पराई पतरी का बरा जादा नीक लागत है।

अथवा

पराई पतरी का भातु जातु जादा मिठात है।

एक ही बात दो प्रतीकों से कही गयो है—बड़ा और भात! दूसरों की हालत भले ही इतनी अच्छी न हो पर यह मानव स्वभाव है कि उसे अपनी स्थिति अन्य की तुलना में अच्छी नहीं लगती। उसे ऐसा महसूस होता है कि और सब तो सुख भोग रहे हैं और वह दुख पा रहा है। यह ईर्ष्या के कारण होता है जबकि सत्य इसके विपरीत भी हो सकता है। दूसरे की पत्तल का बड़ा या भात ज्यादा अच्छा लगता है। ३६४।

पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं ।

गो० तुलसीदास की यह उक्ति १९४७ ई० तक बच्चे-बच्चे के मुँह पर थी क्योंकि हमें अंग्रेजों की पराधीनता से मुक्त होना था। पराधीन व्यक्ति को स्वप्न में भी सुख नहीं मिल सकता। इस कथन के सत्य का अनुभव हमने जीवन के अनेक क्षेत्रों में किया है। अब हम स्वाधीन हैं। यथार्थ सुख भले ही न हो पर इतना सन्तोष तो है ही कि हम कुछ भी करने के लिए स्वतन्त्र हैं। भले ही हम कुछ भी न करें। बन्धन में मनुष्य को कभी सुख नहीं मिल सकता। ३६५।

परारी गाँड़ि माँ लकड़ी गै जानौ भूसा माँ मै ।

यह बहुत ही भोंड़ी कहावत है और गाँवों में लोग मौके पर निःसंकोच कहते हैं। प्रायः पुरुषवर्ग में इसका प्रयोग होता है। गुस्सा होने पर गाँव की स्त्रियाँ भी इसका प्रयोग करती हैं। क्रोधवश स्त्रियाँ तो न जाने क्या क्या कहती हैं? कहावत का आशय बड़ा ही अर्थ पूर्ण है। दूसरे को तकलीफ देने में किसी को हिचक नहीं होती। नवाबी जमाने में और कभी कभी जमींदारों के यहाँ यह सजा दी जाती थी। लगान न देने पर, बेगार न करने पर जमींदार महोदय किसान को पकड़वा मँगाते थे और हुकुम फरमाते, 'डाल दो इसकी गाँड़ में लकड़ी।' जमींदार साहेब की दृष्टि में उसकी गाँड़ में लकड़ी का जाना या भूसा में जाना एक समान था। ३६६।

पहिनि खड़ाऊँ खेतु निरावै ओढ़ि रजाई झोंकै ।
घाघ कहैं ई तीन्यू भकुआ बेमतलब की झोंकै ॥

इस दोहे से घाघ की अक्लमंदी प्रकट होती है। खड़ाऊँ पहन कर निराई करना बहुत ही कष्टप्रद है और साथ ही खेती भी खराब होती है। रजाई ओढ़ कर भाड़ झोकना या आग जलाना भी मूर्खता पूर्ण कार्य है और जलने का भी खतरा है। तीसरा मूर्ख आदमी वह है जो बेकार की बातें करता ही चला जाता है, कोई सुने चाहे न सुने। ३६७।

पहिलि बहुरिया बहुरिया,
दूसरि पतुरिया,
तीसरि कुकुरिया ।

इस कहावत की बात बहुत सही नहीं जँचती। केवल इतना अर्थ तो सही प्रतीत होता है कि पहले आने वाली बहू का अधिक स्वागत सम्मान होता है।

पर दूसरी बहू को पतुरिया कभी नहीं माना जाता; भले ही उसका पहली को भाँति सम्मान न होता हो और तीसरी कुकरी या कुतिया की भाँति तो कभी नहीं होती। इस कहावत में एक दो उदाहरणों के आधार पर सिद्धान्त बनाने की भूल की गयी है और यह कहावत प्रचलित भी अधिक नहीं है। अक्सर दूसरी पत्नी अपने पति पर अधिक प्रभाव दिखाती है और उसे मनमाने ढंग से नचाती है। ३६८।

पहिले तलैया माँ मुँह धोय आओ।

अर्थात किसी चीज के पाने योग्य बनना। किसी दुर्लभ वस्तु पाने के लिए तैयारी करना। मुँह धोकर तैयार होने में दो बातें हैं एक तो किसी खाद्य पदार्थ के खाने के लिए या किसी की दृष्टि में जँचने के लिए। परन्तु यदि कोई व्यक्ति यह जानता है कि अमुक वस्तु अमुक को नहीं मिलेगी और अमुक व्यक्ति उसे पाने की बड़ी तैयारी कर रहा है या पाने के लिए लालायित है, तो जानकार मनुष्य उस पर व्यंग्य करते हुए कहता है 'मुँह धो के रखो मिल चुकी।' कभी-कभी इसी अर्थ में दूसरी कहावत का प्रयोग होता है—'यह मुँह और मसूर की दाल' या 'बड़ा मन चटनी का।' पता नहीं मसूर की दाल और चटनी को इतना दुर्लभ क्यों समझा गया? ३६९।

पाँचैं आम पचीसै महुआ।
तीस बरस माँ अमिली कहुआ॥

पाँच वर्ष में आम का पेड़ फलने लगता है, पचीस वर्ष में महुआ (मधोक) और तीस वर्ष में इमली। ३७०।

"पाँचौ अँगुरी घी माँ।"
"मूँड़ कड़ाही माँ।"

किसी व्यक्ति का अनुकूल स्थितियों में होना। जब कोई हर तरह से लाभ की स्थिति में होता है तो कोई व्यक्ति कहता है 'आजकल तो तुम्हारी पाँचों अँगुली घी में हैं (चाहे जितना घी खाओ)' तो वह व्यक्ति उत्तर देता है "जी हाँ और सिर घी से भरी आग पर चढ़ी कड़ाही में।" अर्थात जिसको एक व्यक्ति दूसरे की व्यक्ति की स्थितियों को अनुकूल मानता है उन्हीं को भोगने वाला व्यक्ति प्रतिकूल मानता है। अब इस कहावत को मिलाकर एक ही व्यक्ति बिना समझे हुए कह जाता मानो दूसरी स्थिति भी सुखद है। ३७१।

पांचौ अँगुरी बराबर/नहीं होती ।

यह एक प्रकट सत्य है । जिस प्रकार हाथ की पाँचों अँगुलियाँ बराबर नहीं होतीं । उसी प्रकार यह दुनिया प्रत्येक के लिए एक-सी सुखद या दुखद नहीं होती । जीवन में अनेक रूपता दिखायी दे रही है वह व्यवहार के क्षेत्र में बहुत सार्थक और सत्य है । या परिवार के सभी लोगों का स्वभाव एक-सा नहीं होता । ३७२ ।

पांस परै तो खेतु ।
नाहीं तौ कूड़ा-रेतु ।।

खाद डालने से खेत अच्छा बनता है । उसकी मिट्टी में चिकनाई आ जाती है; और खेत अच्छा उगता है । मिट्टी की शक्ति भी बढ़ती है, अतः पैदावार भी अच्छी होती है । बिना खाद के खेत की मिट्टी कूड़ा या रेत की तरह निकम्मी रहती है । ऐसी मिट्टी में अच्छी पैदावार नहीं होती । ३७३ ।

पानी का हगा उतराये बिना नहीं रहत ।

यह एक सत्य है । पानी में नहाते समय यदि टट्टी लग आयी और किसी ने यह सोचा कि बाहर जाने की क्या जरूरत है, पानी में टट्टी कर लेने से किसे पता चलेगा और वह टट्टी कर लेता है । परन्तु टट्टी ऊपर तैरने लगती है और सबकी निगाहों में आ जाती है । इसी प्रकार जीवन में प्रायः लोग सोचते हैं कि चुपचाप कोई बुरा काम कर लें, किसी को क्या पता चलेगा ! परन्तु प्रत्येक कार्य का परिणाम होता है और वह कालान्तर में प्रकट हो जाता है । अर्थात समाज में एक साथ रहते हुए कोई ऐसा काम पूरा करना असंभव है जिसका परिणाम अन्य पर भी होने वाला हो । एक न एक दिन बात खुलेगी और तब सब भला बुरा कहेंगे, व्यंग्य कसेंगे । इसीलिए होशियार लोग पहले से ही इस कहावत के जरिये सावधान कर देते हैं । ३७४ ।

पानी पीजै छानि कै गुरू कीजै जानि कै ।

यह बहुत महत्वपूर्ण बात है । मनुष्य जीवन के दो ही पक्ष हैं जिनके ठीक होने पर जीवन बन जाता है और ठीक न होने पर सारा जीवन बिगड़ जाता है । यदि मनुष्य शरीर से स्वस्थ है और मन से शुद्ध तो वह मनुष्य सबसे अच्छा है । शरीर के स्वास्थ्य के लिए पानी छानकर पीना चाहिए और मानसिक शुद्धता के लिए अच्छा गुरु ढूँढ़ना चाहिए । यदि मस्तिष्क पर अच्छे विचारों

का प्रभाव है तो भूल कभी न होगी और यदि पानी स्वच्छ है तो शरीर में कोई विकार न उत्पन्न होगा। अतः प्रत्येक व्यक्ति को स्वच्छ पानी और अच्छे विचारों को ग्रहण करना चाहिए। ३७५।

पानी माँ रहि कै मगर ते बैर।

मगर पानी में शेर के समान शक्तिशाली होता है। वह पानी का बादशाह है। पानी में उसके बल का कोई मुकाबला नहीं कर सकता। तो जिसे पानी में सकुशल रहना है उसे मगर की अनुकूलता प्राप्त करनी चाहिए नहीं तो वह जीना मुश्किल कर देगा। उसी प्रकार दुनिया में भी कुछ मगर होते हैं, जिनसे दोस्ती बनाये रखने में ही खैरियत है। प्रायः ऐसे दम्भी व्यक्ति स्वयं इस कहावत का प्रयोग करते हैं। अगर तुम्हें यहाँ सुख से रहना है तो मेरे कथनानुसार आचरण करना होगा। पानी में रह कर मगर से बैर नहीं रखा जाता। समाज में रह कर ऐसे शक्तिशाली व्यक्तियों से दोस्ती बनाये रखना पड़ेगा। ३७६।

पाही खेती अजा धान, बिटियन कै बढ़वारि।
एतनेहू पै धन न घटै, तौ करै बड़ेन ते रारि॥

जिसकी खेती में पाही लग गया हो और फसल नष्ट हो गयी हो, जिसका धान न उगा हो, और जिसके बहुत-सी लड़कियाँ हों, परन्तु इतना होते हुए भी जिसका धन न घटा हो, वही बड़े लोगों से झगड़ा मोल ले। बड़े लोगों से झगड़ा करने में हर तरह से तकलीफ़ ही रहती है। परन्तु इतना धन हो कि अनेक विपरीत स्थितियों में भी कोई कमी न आये तो झगड़ा करने में कोई बात नहीं है। ३७७।

पीपर पात खराखर डोलैं।
धकरे की बिटिया अँकरे के बोलैं॥

कान्यकुब्ज ब्राह्मणों में आँकर और धाँकर अर्थात् कुलीन एवं अकुलीन में बड़ा भेद-भाव चलता है। रोटी-बेटी का संबंध आँकरों और धाँकरों में नहीं होता था। अभी भी लोग बचाते हैं। प्रायः आँकर रुपये के लोभ में धाँकरों के यहाँ विवाह कर लेते थे, और अपने को और भी हास्यास्पद बना लेते थे। वही भेदभाव इस कहावत में प्रकट हुआ है कि धाँकर की बेटी आँकर की बेटी से बराबर बातचीत करने का दुस्साहस करे। ३७८।

पुक्ख पुनर बस भरैं न ताल।
तो भरिहैं फिरि अगली बार॥

यदि पुष्य पुनरबस नक्षत्रों में भी वर्षा न हुई और तालाब न भरे तो वे खाली ही रहेंगे। अगले वर्ष जब वर्षा होगी, तभी उनमें पानी आयेगा। अर्थात सूखा पड़ जायेगा। ३७९।

पूत बतनौ के भागी।

किसी निकम्मे बेटे पर व्यंग्य है। यदि बेटा कुछ काम नहीं कर सकता, तो क्या बातें भी नहीं बना सकता? कुछ करने की सामर्थ्य तो नहीं है, तो क्या बोलने की भी सामर्थ्य नहीं है। करनी कथनी में अन्तर होने पर प्रायः इस प्रकार व्यंग्य किया जाता है। ३८०।

पूतौ मीठ भतारौ मीठ केहि के किरिया खाय।

पता नहीं कैसे और क्यों, पर शपथ लेना, या कसम खाना सार्वभौमिक प्रथा है। अन्य को अपनी बात का विश्वास दिलाने के लिए लोग कसम खाते हैं। हमारे यहाँ कसमों के अनेक प्रकार हैं, गंगा की कसम, जनेऊ की कसम, बेटे की कसम, बाप की कसम इत्यादि। परन्तु झूठी कसम खाने पर अहित की आशंका रहती है: जिसकी कसम खायी जाये, बात झूठ होने पर, उसकी मृत्यु तक हो सकती है। इसलिए झूठे के सम्मुख समस्या पैदा हो गयी है कि किसकी कसम खाये, पति भी चाहिए पुत्र भी प्रिय है तो कसम किसकी खायी जाये। अर्थात झूठी कसम खाने वाले पर यह व्यंग्य है। ३८१।

पैसा न कौड़ी, कान छेदावैं दौड़ी।

कान छेदन एक संस्कार है। पुत्र के छेदन में काफी पैसे खर्च हो जाते हैं क्योंकि कम से कम भाई भैयाचारों को भोजन कराना पड़ता है, सोने की बाली बनवानी पड़ती है और सुनार को छेदन के लिए नेग देना ही पड़ता है। पैसे की व्यवस्था नहीं है, पर ललक या अभिलाषा इतनी है कि कान छेदाने के लिए व्याकुल है। अस्तु, आवश्यक सामर्थ्य के अभाव में भी जब व्यक्ति कुछ कठिन कार्य करने का साहस दिखाता है, तो लोग उसके इस साहस को अच्छा नहीं मानते और उस पर व्यंग्य कसते हैं। प्रायः ऐसा देखा-देखी और दूसरों की बराबरी करने की होड़ में होता है और समर्थ लोग उस पर हँसते हैं, व्यंग्य करते हैं। ३८२।

पौ बारह।

सफलता प्राप्त होने पर। किसी भाग्यशाली के लिए इस कहावत का उपयोग होता है। जुए में कौड़ियाँ फेंकी जाती हैं। पौ बारह होने पर उसकी विजय निश्चित है। अतः जब किसी व्यक्ति का भाग्योदय होता है और सफलता मिलने लगती है, तो कहते हैं कि तुम्हारे पौ बारह हैं। ३८३।

प्रभुता पाय काहि मद नाहीं।

गो० तुलसीदास जी की इस पंक्ति में जीवन का एक सत्य छिपा हुआ है। प्रभुता पाकर सभी में एक प्रकार का अभिमान आ जाता है। महत्ता, सत्ता, विशेषता, सफलता इत्यादि पा जाने पर मनुष्य घमण्डी हो जाता है। ऐस व्यक्ति विरल ही होगा जिसमें प्रभुता पाने पर भी अभिमान न पैदा हो। अभिमान लोगों में अकारण भी होता है, महत्व प्राप्त होने पर तो सभी को हो जाता है। ३८४।

(फ)

फटकचन्द गिरधारी, जिनके लोटिया न थारी।

फक्कड़ या मस्त आदमी जिसके पास कुछ भी नहीं है। कुछ भी न होने से उसे किसी प्रकार की चिन्ता भी नहीं है। अर्थात वह फटक चन्द गिरधारी है। किसी गृहस्थ के लिए ऐसा होना असंभव है। इसलिए प्रायः एक गृहस्थ ऐसे फक्कड़ लोगों से अपनी तुलना नहीं करते। एक गृहस्थ के पास गृहस्थी की चीजें होनी ही चाहिए जिनकी उसे चिन्ता रखनी ही पड़ेगी। गृहस्थ होते हुये भी कोई फटक चन्द गिरधारी नहीं हो सकता। अतः ऐसे व्यक्तियों के बारे में यही कहा जाता है कि वह तो निश्चिन्त व्यक्ति है उससे हमारी क्या तुलना? लापरवाह गृहस्थों के लिए इस कहावत का प्रयोग किया जाता है। ३८५।

फूहड़ उठी दुपहरी सोय।
हाथ बढ़निया दीन्हिसि रोय॥

जो स्त्री घर में सफाई और उचित व्यवस्था नहीं रखती वह फूहड़ कहलाती

है। लापरवाही स्त्री का सबसे बड़ा दुर्गुण है। इस कहावत की स्त्री दोपहर में सोकर उठी है और झाड़ू लेकर सफाई करने चली है। इतनी देर तक सोने के बाद जरा सा काम करना पड़ा तो वह रोने लगी। हमारे समाज में ऐसी स्त्री के प्रति सम्मान की भावना असंभव है। उसे फूहड़ माना जाता है। उसके आलस्य पर यह व्यंग्य है। ऐसी स्त्री घर, परिवार एवं समाज के लिए उपयोगी नहीं हो सकती। ३८६।

फूहड़ करैं सिंगार मांग ईंटाते पारैं।

फूहड़ औरत मूर्ख और गंवार स्त्री को कहते हैं जिसमें न शील है न व्यवहार कुशलता। जो आलसी है और कम अक्ल, जिसमें ढंग नहीं और न शऊर, जो अपना प्रसाधन भी ठीक से नहीं कर सकती। स्त्री और कुछ नहीं तो कम से कम अपना प्रसाधन तो कर ही सकती है परन्तु यदि वह यह भी न कर सके तो निश्चित ही फूहड़ है। और उसके फूहड़पने का सबूत यह है कि वह अपनी माँग सेन्दुर से न भर कर ईंट को पीस कर उसके चूर्ण से करती है। वह जानती है कि माँग में कुछ लाल भरा जाता है, पर वह इंट कोहरा और सेन्दुर में भेद नहीं जानती। ३८७।

फूहड़ पोतैं चूल्हा। की मटकावैं कूल्हा।

फूहड़ औरत इधर उधर अपनी कूल्हा मटकाती फिरती है। उसको इसी में आनन्द आ रहा है वह चूल्हा क्या पोतेगी? अर्थात घर के काम काज में उसका मन नहीं लगता। घर की सासु ननद उसके इस आचरण पर इसी प्रकार का व्यंग्य करती है। वह इधर उधर मटकती फिरती है। ३८८।

फूले की बिछिया मां एतना गुमान।
चांदी को होती तौ चलतीं उतान॥

स्त्रियों को आभूषण बहुत प्रिय होते हैं। यहाँ पर स्त्री के स्वभाव को चित्रित किया गया है। काँसे की बिछिया जो बहुत ही सस्ती होती है, उन्हें पहन कर वह अभिमान से चलती है, घमण्ड दिखाती है। दूसरी स्त्री उसके इस गुमान से अप्रसन्न होकर कहती है कि काँसे की बिछियों पर जब इतनी गुमान दिखा रही हो, कहीं चाँदी की होती तब तो छाती तान कर (उतान) चलती। किसी व्यक्ति के इतराने या गुमान दिखाने पर इस कहावत का प्रयोग होता है। मनुष्य छोटी-छोटी बातों पर प्रायः अभिमान करने लगता है परन्तु समाज कठोर है, वह उसके इस भाव को ठण्डा कर देता है। ३८९।

(ब)

बँधी मूठी लाखु बराबर ।

यह बहुत ही अर्थ पूर्ण कहावत है । जब तक मुट्ठी बँधी हुई है किसी को पता नहीं चलता कि इस मुट्ठी में कानी कौड़ी है या सोने की मोहर । पर एक बार मुट्ठी के खुल जाने पर अर्थात प्रकट हो जाने पर उसकी महत्ता घट जाती है । प्रायः इस कहावत का प्रयोग इसी दृष्टि से सामाजिक मर्यादा के लिए की जाती है । गरीबी में भी किस प्रकार सामाजिक सम्मान बनाये रखने के लिए लोग अनेक प्रकार की कठिनाइयाँ सहते हैं इस कहावत से प्रकट हो जाता है । मुट्ठी खुली कि हाथ फैला । और हाथ फैला कि मान मर्यादा सब समाप्त हो जाती है । क्योंकि असली स्थिति प्रकट हो जाती है । संयुक्त परिवार के पक्ष में भी इस कहावत का अच्छा प्रयोग हो सकता है । ३८० ।

बगुला मारे पखनं हाथ ।

बगुला मारने से कोई लाभ न होगा । 'गुनाह बेलज्जत' उर्दू की एक कहावत है जो इसी कहावत के समान है । बगुला मारने से हत्या तो हो जायेगी अर्थात पाप तो होगा पर लाभ के स्थान पर केवल थोड़े से पंख हाथ लगेंगे । बगुला के शरीर में माँस बहुत ही कम होता है । गुनाह भी किया जाये तो ऐसा जिससे कुछ लाभ हो । कभी कोई जमीन्दार या अन्य साहूकार अपने स्वार्थ के लिए किसी किसान को पिटवाते हैं तो कोई समझदार उन्हें समझता है कि इसको पिटवाने से क्या मिलेगा ? 'बगुला मारे पखना हाथ ।' ३८१ ।

बउरे गावँ ऊँट आवा कोऊ देखा कोऊ देखवं न भा ।

ऊँट कोई कुत्ता बिल्ली तो है नहीं है कि गाँव में आये कोई देखे भी नहीं । पर बेवकूफों के गाँव में ऊँट आया पर किसी ने देखा और किसी ने देखा हो नहीं । जब कोई विशेष बात हो, या घटना हो जाये, या कोई महत्वपूर्ण व्यक्ति आये और गाँव वाले उसे जाने भी नहीं तो इस कहावत का प्रयोग किया जाता है । बड़ी महत्वपूर्ण बात हो गयी और किसी को मालूम भी न हुआ । ३८२ ।

बछवन हरु चरै तो बैल को बेसाहै ।

अगर बछड़ों से हल जुत जाये तो लोग बैल क्यों खरीदें और तमाम रुपये खर्च करें । दो चार बछड़े तो हर किसान के घर में होते ही हैं । परन्तु हल

चींचना बछड़ों के बस का काम नहीं खेती के लिए तो बैलों की ही जरूरत है। अर्थात यदि महत्वपूर्ण कार्य बच्चों द्वारा हो जाय तो बड़ों को कौन पूछेगा? कभी-कभी बच्चे कोई बड़ा काम कर डालना चाहते हैं, कोशिश भी करते हैं परन्तु सफल नहीं होते तो इस कहावत को चरितार्थ करते हैं। बड़े लोग इस कहावत का उपयोग करते हैं। ३८३।

बजार नहीं लागि कि गरकटा तैयार।

बाजार में सभी तरह के चोर या गला काटने वाले एकत्र हो जाते हैं। पर बाजार से कुछ लाभ भी होता है। लोग अपनी जरूरत की चीजें पा जाते हैं। यदि बाजार लगने के पहले ही लोग चोरी करने लगें तो बाजार से कोई भी लाभ न होगा। कुछ मिलने के पहले ही खोने की स्थिति उत्पन्न हो जाये तो उपर्युक्त कहावत चरितार्थ होती है। बनिये ठगते हैं, कम तौलते हैं, बेईमानी करते हैं पर कुछ तो मिलता है। पर मिले कुछ नहीं और आदमी ठगा जाये तो बाजार लगने के पहले ही गलाकट जाने की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। चंचलातिश्योक्ति अलंकार के सहारे इस कथन में चमत्कार पैदा किया गया है। ३८४।

बटुई ब्यौहारे का चटुई त्यौहारे का।

ब्यौहार में देने के लिए बटुई का विशेष उपयोग है पर चटुई तो केवल त्योहारों में ही काम आती है। अर्थात हर चीज की अपनी अलग-अलग विशेषता एवं उपयोगिता है। ३८५।

बड़े-बड़े बहे जायँ गड़रेऊ थाह मांगैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि ग्रामीण समाज में गड़रिया सबसे हीन कोटि का प्राणी माना जाता है। नदी के थहाने का काम बड़े बड़े न कर पाये वह गड़रिया क्या करेगा? जब कोई साधारण, असमर्थ, निर्धन या निर्बल व्यक्ति कोई बड़ा काम करने का यत्न करता है, तो समाज पहले से ही उसे हताश करने लगता है। बड़े एवं समर्थ व्यक्ति तो अमुक काम न कर सके तू क्या करेगा। ऐसा करने वाला दुस्साहसी इस व्यंग्य की चोट सहता है। हो सकता है कि वह उस काम को पूरा कर ले पर लोगों ने पहले से ही उसके संबंध में एक निश्चित धारणा बना ली है। तो जहाँ बड़े-बड़े तैराक बह गये वहाँ गड़रिया क्या थाह पायेगा। ३८६।

बड़ौं बड़ौं कहाँ लै कै परौं।

इतना बड़ा समझते हैं कि समझ ही नहीं पाते कि घर में उनके अनुकूल स्थान भी होगा ? जब आदमी अपने अभिमान के कारण साधारण लोगों से विशेष प्रकार का व्यवहार करता है और यह बताना चाहता है कि वह उस प्रकार नहीं रह सकता, जिस प्रकार अन्य लोग रहते हैं तो उसके इस अभिमानी स्वभाव पर इस व्यंग्य वाक्य का प्रहार किया जाता है। समाज में ऐसे लोगों की कमी भी नहीं होती जो झूठमूठ दूसरों पर अपनी शान जमाना चाहते हैं, पर समाज के साधारण व्यक्ति अपनी साधारणता में भी काफी नैतिक शक्ति रखते हैं, और ऐसे झूठ को बरदाश्त नहीं करते। ३८७।

बनिया कै सखरज ठकुरक हीन।
बैद का बेटवा व्याधि न चीन्ह॥
पंडित गुपचुप बेसवा मलीन।
कहैं घाघ पाँचौं घर दीन॥

घाघ के घाघपन का अच्छा उदाहरण है। बनिया की उदारता, ठाकुर की हीनता, वैद्य के लड़के की रोग संबंधी अज्ञता, पंडित का चुपचाप रहना और वैश्या का मलीन होना, ये पाँचों स्थितियाँ इन पाँचों व्यक्तियों के लिए बहुत उलटी है। दूसरे व्यक्ति ऐसी स्थितियों में आसानी से जी सकते हैं पर ये पाँच अपनी इन विशिष्ट असमर्थताओं के कारण बिलकुल व्यर्थ या दीन हैं। इनको कोई नहीं पूछता अर्थात इनको दरिद्रता और दीनता का जीवन व्यतीत करना पड़ता है। ३८८।

बनियां जौरे परी परी, रहिमान ढकेलैं कुप्पा।

बनिया तो बेचारा परी परी करके तेल संचय करता है पर रहिमान उस तेल को जो परी परी करके कुप्पों में संचित हुआ है थोड़ी ही देर में नष्ट कर देते हैं। जब किसी गृहस्थ के घर में कोई लड़का या व्यक्ति ऐसा हो जाता है जो बहुत अनापशनाप खर्च करता है, तो इस कहावत के जरिये बनिये की संचय वृत्ति को निरर्थकता पर व्यंग्य किया जाता है। जब कुप्पों ढकेलने वाला घर में होगा तो परी परी संचय करने से कैसे काम चलेगा। घर में यदि कुपूत पैदा हो गया तो सम्पत्ति नष्ट हुए बिना न रहेगी। अस्तु, संचय करना निरर्थक ही हो जाता है। ३८९।

बरसो राम बवै धनिया।
खाय किसानु मरै बनिया॥

इस कहावत में भी बनिया के प्रति आक्रोश भाव प्रकट होता है। यदि माल सस्ता हो जायेगा तो किसान को सुख होगा और बनिये को घाटा होगा। बनिया समाज का शोषक है जो इस कहावत से स्पष्ट है। किसान को अपने जीवन की सभी आवश्यक चीजों को बनिये से ही खरीदना पड़ता है। अगर खूब पानी बरसेगा तो किसान के घर खूब पैदावार होगी जिससे वह अपनी उपज का पूरा उपभोग कर सकेगा और भाव गिरने से किसान के शोषक बनिये का नुकसान होगा। ४००।

बरु न बिआहु छठी खातिर धान कूटैं।

कभी-कभी बड़ी कर्त्ता औरतें बहुत से काम अगाऊ कर डालती हैं, जिससे कोई लाभ नहीं होता। अभी वर भी नहीं ढूँढ़ा गया, विवाह की कोई बात नहीं है, पर घर की पुरखिन नाती की छठी के लिए धान कूट-कूट कर रख रही है। ऐसी ही दूसरी कहावत है कि 'सूत न कपास कोरीवा ते लट्ठमलट्ठा।' अगाऊ काम करना अच्छा है पर इतनी भी जल्दी क्या कि बेटी के विवाह के पहले ही नाती की छठी के लिए धान कूटे जायें। व्यक्ति की जल्दबाजी और अत्यधिक भावुकता पर इस कहावत द्वारा व्यंग्य किया जाता है। ४०१।

बाँटा पूतु परोसी बराबर।

ठीक ही है; जब बँटवारा हो गया और बाप-बेटे अलग-अलग रहने लगे, तो फिर बाप बेटे का सम्बन्ध भी समाप्त हुआ समझना चाहिए। अगर पड़ोसी के बराबर भी सम्बन्ध चलता रहे तो भी कुशल है। प्रायः तो यह देखने में आता है कि अलग हुआ बेटा पड़ोसी से भी ज्यादा खतरनाक साबित होता है। परन्तु यह नीति वाक्य है और बाप के लिए सीख है, कि बँटवारा हो जाने के बाद उसे अपने बेटे को पड़ोसी के समान ही समझना चाहिए, नहीं तो अभी उसे और भी क्लेश और दुख उठाने पड़ सकते हैं। ४०२।

बाँझ का जानै पेटु पिराब।

जिसके बच्चा हुआ ही नहीं वह क्या पेट की पीड़ा समझ सकेगी। अर्थात जिसके जीवन में जो अनुभव नहीं हुए वह उस प्रकार के अनुभवों को नहीं समझ पायेगा। दूसरी कहावत बेवाई वाली है। "जाके पाँव न गयीं बेवाई सो का

जानै पीर पराई" हम बिना अनुभव के बहुत सी बातें नहीं समझ पाते। बच्चों को कितना ही समझाया जाये कि यह आग है इसको छूने से जल जाओगे पर वह नहीं मानेगा जब तक जलने की पीड़ा का अनुभव न कर लेगा। ४०३।

बाँदरु का जानै अदरख का सवादु।

अदरख कड़वी होती है। बन्दर उसे नहीं खाता। इसलिए कहावत बनी कि अदरख का स्वाद बन्दर नहीं जानता। जब कोई व्यक्ति किसी अच्छी चीज के स्वाद को नहीं जानता, या किसी चीज की उपयोगिता नहीं जानता तो उसे और भी हीन दिखाने के लिए ऐसा कहा जाता है। ऐसी चीजें बन्दर क्या जानेगा। बहुत सी कहावतें बड़ी निर्ममता के साथ कही जाती है सत्य को ऐसे कठोर शब्दों में प्रस्तुत किया जाता है कि सुनने वाला अपमान की पीड़ा से तड़प उठता है। पर दूसरों को इस प्रकार तड़पाने में भी मजा आता है। यह हास्य की क्रूर भावना है। ४०४।

बँदरे का धनु गाले माँ।

बन्दर की सम्पति उसके मुंह में रहती है। वह कहीं जाता है तो जल्दी-जल्दी खाता चला जाता है और गले में एकत्र करता जाता है। फिर किसी डाली पर बैठ कर इतमीनान से खाता है। उसका गाल फूला हुआ दिखाई देता है। इसी निरीक्षण पर कहावत बना है। इसका प्रयोग ऐसे आदमी पर होता है जो अपनी थोड़ी सी सम्पत्ति साथ लिये फिरता है; पर दुनिया जानती है कि वह कैसे उसे प्राप्त हुई है, और कितनी है। सम्पत्ति प्रदर्शन की वृत्ति और उसके स्वल्प होने का संकेत इस कहावत में छिपा हुआ है। ४०५।

बाँधा बछवा जाय मठराय।
बैठा ज्वान जाय तोंदियाय।

वह बछड़ा जो हमेशा बँधा रहता है, काम चोर या मट्ठर हो जाता है। अधिक नहीं चल पाता। उसी प्रकार जवान आदमी बैठे बैठे बेकार हो जाता है। उसके तोंद बढ़ आता है और वह अधिक कामकाज एवं परिश्रम करने से घबराता है। अस्तु, निष्कर्ष यह निकला कि जिस प्रकार बछड़े को खुल कर चरने देना चाहिए उसी प्रकार युवक को भी बैठने नहीं देना चाहिए; नहीं तो दोनों निकम्मे हो जायेंगे। ४०६।

बाछा बैल बहुरिया जोय।
न घरु रहै न खेती होय॥

बैल की जगह पर बछड़े का इस्तेमाल किया गया तो समझना चाहिए कि खेती चौपट हुई। बछड़ों से खेती नहीं होती और उस घर को उजड़ा हुआ समझना चाहिए जिस घर में पुत्र बधू (बहुरिया) को पुत्र का पिता पत्नी रूप में रखे। ऐसी बहुत सी घटनाएँ समाज में देखी गयी हैं कि पिता अपने पुत्र की पत्नी पर आकृष्ट है और उसकी वृद्धावस्था की इन्द्रिय लोलुपता इस अनुचित प्रकरण को उत्पन्न कर देती है। ऐसा होने पर निश्चित है कि घर नहीं चल सकेगा। ४०७।

बाढ़ै पूत पिता के धर्मा।
खेती उपजै अपने कर्मा॥

पिता के धर्माचरण एवं पवित्र विचारों से पुत्रों की संख्या में वृद्धि होती है। ऐसा भी कहा जा सकता है कि पुत्रों की उन्नति होती है और खेती अपने परिश्रम से अच्छी होती है। खेती बाप के धर्म-अधर्म से संबन्ध नहीं रखती। वह तो अपने परिश्रम पर निर्भर होती है। इस कहावत में इसी बात पर जोर दिया गया है कि खेती के मामलों में बाप दादों का पुण्य प्रताप काम नहीं देगा। अच्छी खेती के लिए परिश्रम की आवश्यकता है। भाग्य को कोसने से कुछ नहीं होता। ४०८।

बाप राजि न खाये पान।
उड़िगे झोटई रहिगे कान॥

बाप की कमाई में अगर ऐश न किया तो अपनी कमाई में क्या ऐश करेगा। बाप के पैसों से पान नहीं खाये तो अपने पैसों से पान खाने वाले के सारे बाल (चुटिया) नुच जायेंगे। नोचने के लिए केवल कान ही रह जायेंगे। अर्थात दिवाला निकल जायेगा क्योंकि गृहस्थी चलाना और ऐश करना दोनों एक साथ नहीं चल सकता। अस्तु, फिजूल खर्ची यदि संभव है तो बाप के पैसे से, खुद की कमाई से नहीं। बाप का दिवाला निकला भी तो शायद बेटा सँभाल ले पर बेटे का दिवाला निकाला तो कौन सँभालेगा? ४०९।

बापु न मरिसि पेढ़ुकी बेटा तीरन्दाज।

बाप ने एक फाख्ता भी नहीं मारा और बेटा बड़े तीरन्दाज बनने की

कोशिश करते हैं। फाख्ता या पेढ़की बड़ी ही भोली चिड़िया है जिसका मारना कठिन नहीं है पर बाप ने कभी एक पेढ़की भी नहीं मारी। पर बेटा अपनी बहादुरी का झण्डा लिये घूमते हैं; और शेखी मारते हैं। दुनिया ऐसे शेखीखोरों की शेखी पर इस कहावत से प्रहार करती है। ४१०।

बासी बचै न कूकुर खायँ।

आशय यह है कि अन्न बरबाद नहीं करना चाहिए। इतना ही बनाना चाहिए जिससे बचे नहीं। पकी हुई चीजें बासी होने पर खाने लायक नहीं रहती अतः ठीक अन्दाज से पकाना चाहिए। इस कहावत में और कोई विशेष व्यंग्यार्थ नहीं है। ४११।

बिड़रें जोत पुराने बिया।
तेहिकै खेती छिया-बिया॥

जिसने अपने खेत की जोताई बहुत घनी और अच्छी नहीं की है, (हल दूर-दूर चलाया गया है जिससे बीच-बीच में कठोर भूमि छूट गयी है) और बीज भी पुराना डाला है, उसकी खेती निश्चित ही अच्छी नहीं होगी। अच्छी खेती के लिए खेत को अच्छी तरह जोतना चाहिए और बीज भी अच्छा डालना चाहिए। ४१२।

बिधि का लिखा को मेटन हारा।

भगवान का लिखा हुआ, कौन अन्यथा कर सकता है? अर्थात् जो जिसके भाग्य में है उसे वह भोगना ही होगा। ऐसे भाग्यवादी लोगों का विश्वास है कि प्रत्येक व्यक्ति का भाग्य पूर्व निर्धारित है और उसी के अनुसार वह काम करता है और अपने कर्मों के अनुसार जीवन का भोग करता है। यही प्रारब्ध है जिसका लेखा विधाता करता है अतः उसे कोई मिटा नहीं सकता। बहुत बुद्धिवादी लोग इस प्रारब्ध में विश्वास नहीं करते। वे यह नहीं मानते कि मनुष्य का भाग्य पूर्वनिर्धारित है। वे समझते हैं कि मनुष्य स्वयं अपना भाग्य-निर्माता है और स्वयं ही अपने जीवन को बनाने बिगाड़ने वाला है। पर जीवन में प्राकृतिक, सामाजिक एवं मानसिक ऐसे तमाम तत्व हैं जो मनुष्य की कार्यशैली को प्रभावित करते रहते हैं। अतः निश्चित रूप से जीवन की अनन्त संभावनाओं का समझा नहीं जा सकता। ४१३।

बिन घरनी का घर।
जैसे नीम्बी का तरु॥

बिना घर वाली के घर का कोई अर्थ नहीं होता। घर में रहना भी नीम के नीचे रहने के समान है। घर संज्ञा की पूर्ण कल्पना घरवाली से जुड़ी हुई है। गृहस्थ जीवन में ही घर की कल्पना है जब मनुष्य ब्रह्मचर्याश्रम से निकलकर विवाह करता है, घर बसाता है और परिवार का लालन पालन करता है। तत्पश्चात तो वान प्रस्थाश्रम और संन्यास हैं, जिन आश्रमों में घर त्याग की योजना है। घर की कल्पना गृहस्थी से जुड़ी हुई है और गृहस्थी बिना घरवाली के नहीं हो सकती। ४१४।

बिन घरनी घर भूत का डेरा।

इस कहावत का अर्थ लगभग पहले वाली कहावत का-सा है, केवल घर के वातावरण का वर्णन अधिक है। विना घरवाली के घर सूना रहता है। जहाँ सुनसान रहता हैं वहाँ भूतों का वास माना जाता है। वह घर ऐसा प्रतीत होता है, मानो उसमें आदमी नहीं भूत रहते हों। इन दोनों कहावतों में घरनी पर विशेष बल दिया गया है। गृहस्थाश्रम में आकर मनुष्य को घर बसाना चाहिए और घरनी के होने से घर आबाद हो जाता हैं और उसके अभाव में घर बरबाद हो जाता है। घरनी=पत्नी। ४१५।

बिना बैलन खेती करै, बिन भैयन कै रार।
बिन मेहरारू घर करै, चौदह लाख लबार॥

यह एक नीति का दोहा है, कदाचित इसके लेखक घाघ हैं। विना बैलों के खेती करना, विना भाइयों के छेड़खानी या शरारत करना या झगड़ा करना, बिना पत्नी के घर वसाना असम्भव है। यदि कोई ऐसा करता है वह, यदि सोलह आने नहीं तो कम से कम चौदह आने, झूठा या मक्कार है।४१६।

बिन भय होत न प्रीति।

यह तुलसीदास की चौपाई का एक अंश है। तुलसीदास ने जीवन के व्यापक एवं गम्भीर अध्ययन और अनुभव के बाद रामचरित मानस की रचना की। उनके गहरे अनुभवों पर आधारित यह कथन बहुत ही सत्य है। तुलसीदास जी यहाँ आदर्श प्रेम की व्याख्या न करके, जीवन के व्यावहारिक सत्य का उद्घाटन कर रहे हैं। इस कथन के सत्य का अनुभव प्रायः होता रहता है; विशेषरूप से उन

आदर्श प्रेमियों को तो और भी जो प्रेम में अपना पूर्ण आत्म समर्पण कर बैठे हैं। आदर्श प्रेम में पूर्ण आत्मसमर्पण चाहिए। अस्तु, आत्म सम्मान भी समर्पण करना पड़ता है परन्तु आत्मसम्मान के समर्पण के उपरान्त व्यक्ति समाप्त हो जाता है फिर किससे प्यार हो ?४१७।

बिरान धनु और मँगनी का अहिबातु।

दूसरे की सम्पत्ति माँगे हुए सोहाग की भाँति है। सोहाग माँगने से नहीं मिलता। परन्तु मान लिया जाय कि किसी स्त्री ने कुछ क्षणों के लिये सधवा बनने की आकांक्षा से किसी का पति माँग ही लिया हो या किसी व्यक्ति को अपना पति मान लिया हो—पर वह उसका नहीं है। अस्तु, जिस प्रकार मँगनी का सोहाग एक क्रूर व्यंग्य के समान है उसी प्रकार दूसरे की सम्पत्ति भी। दूसरे की सम्पत्ति से कोई लाभ नहीं होता क्योंकि वह उसका उपयोग नहीं कर सकता, और जोखिम उठानी पड़ती है ? अस्तु, दूसरे की वस्तु व्यावहारिक दृष्टि से अर्थ-हीन है।४१८।

बिलारि खाई तौ खाई न खाई तौ ढरकाई।

दुष्ट प्रकृति का मनुष्य स्वभाव में बिल्ली की तरह होता है। जिस प्रकार बिल्ली या तो दूध मलाई वगैरह चुरा कर खा जायेगी या फैला देगी। दुष्ट मनुष्य भी दूसरे के अहित से बड़ा प्रसन्न होता है। दूसरे के हितों के लिए वह घी में मक्खी की तरह मरने के लिए तैयार रहता है। दूसरे का अपशकुन करने के लिए अपनी नाक तक कटाने के लिए तैयार रहता है। इस कहावत में केवल ऐसे ही दुष्टों का वर्णन किया गया है जिनका उद्देश्य किसी को नुकसान पहुँचाना तो नहीं होता, पर वे आदत से मजबूर होकर कुछ उलट-पुलट कर ही डालते हैं।४१९।

बिलारिन का मितूरि सौंपब।

बिल्ली शब्द के स्थान में प्रायः बन्दर शब्द का भी प्रयोग किया जाता है और कहावत के अर्थ में कोई परिवर्तन नहीं आता। बिल्ली या बन्दर को यदि भण्डार सौंप दिया जायेगा तो निश्चित है कि वह सुरक्षित नहीं रहेगा। चोर के यहाँ धरोहर रखने के समान है। बच्चों से कहा जाये कि यह अमरूद का पेड़ ताके रहना, इसके अमरूद कोई खाने न पाये, पर बच्चे स्वयं सारे अमरूद तोड़ कर खा जायेंगे। तकवाने का मकसद पूरा ही न होगा।४२०।

बिलरेऊ की भागि ते सिकहरु टूट ।

सींका या छीका रस्सी का बना होता है जिसमें दूध दही मक्खन वगैरह: रखा रहता है । उसका टूट कर गिरना बिल्ली की भाग्य का जागना ही समझिये । वह यही तो चाहती थी । तो जो व्यक्ति जैसा कुछ चाहता हो संयोग से वैसा ही हो जाये तो इस कहावत का प्रयोग होता है । संयोग से अनापेक्षित रूप से यदि कोई लाभ हो जाये और ऐसे व्यक्ति को जो उसके योग्य न हो (कम से कम कहावत का प्रयोग करने वाला उसे इस योग्य नहीं समझता) तो इस कहावत को चरितार्थ करता है ।४२१।

बीबी न पादीं तौ न पादीं, पादिन तो सुथनिही फारि डारेनि ।

यह घरेलू कहावत है जिसकी पृष्ठभूमि में घरेलू काम-काज की भनक है । संयुक्त परिवार में अनेक स्त्रियाँ होती हैं जिनमें से कुछ आराम पसन्द भी होती हैं और घर का काम नही करतीं । ऐसी स्थिति में घर की पुरखिन प्रायः उसे काम करने के लिए कहती रहती हैं पर बुरी आदत पड़ जाने से वह फिर भी नहीं करतीं । फिर उस पर ताने कसे जाते हैं और किसी दिन इन तानों से तंग आकर वह काम करने लगती है । काम करने की आदत न होने से उससे काम बनता नहीं और वह नुकसान कर बैठती है जिस पर उसे यह ताना सुनना पड़ता है ।४२२।

बुध बउनी, सुक लउनी ।

यह खेती के सगुन से सम्बन्ध रखती है । बुधवार के दिन बोना प्रारम्भ करना चाहिए और शुक्रवार के दिन काटना शुरू करना चाहिए । मुझे मालूम नहीं बुध को बोने के लिए क्यों अच्छा माना है, जब कि बुधवार को सामान्यतः निकम्मा, खाली दिन मानते हैं । शुक्रवार लउनी के लिए ठीक है क्योंकि शुक्रवार लक्ष्मी का दिन माना जाता है, उस दिन फसल काँटने से लक्ष्मी जी घर आयेंगी ।४२३।

बूढ़ सुआ राम-राम नहीं पढ़त ।

वृद्ध आदमी कुछ नया नहीं सीख सकता यह एक साधारण सत्य है । वृद्धावस्था के कारण व्यक्ति में जीवन के प्रति वह विधेयात्मक रुचि नहीं रह जाती जो बालक में होती है और उसकी स्मरण शक्ति तथा अन्य स्नायविक शक्तियाँ क्षीण हो जाती हैं जिससे वह कुछ नया आसानी से नहीं सीख सकता ।

उसकी प्रवृत्तियाँ इतनी दृढ़ एवं निश्चित हो जाती हैं कि उनसे पृथक् नहीं हो सकता। कुछ नया सीखने के लिए स्वभाव में लचीलापन चाहिए। नये को स्वीकार कर सकने की मानसिक तैयारी होनी चाहिए। ४२४।

बूढ़े मुँह मुँहासा लोग देखैं तमासा।

युवावस्था में खून में गर्मी रहती है और इसी गर्मी के कारण प्रायः युवा स्त्री-पुरुषों के गालों में छोटे-छोटे दाने निकलते रहते हैं जिन्हें मुँहासे कहते हैं। वृद्धावस्था में रक्त की उष्णता समाप्त हो जाती है और मुँहासे निकलने का कोई कारण नहीं होता। पर कभी-कभी कुछ बूढ़ों के मुँह में भी मुँहासे निकल आते हैं जो काफी अजीब बात है। इसीलिए वह एक प्रकार का तमाशा ही हो जाता है। आशय यह कि यदि वृद्ध व्यक्ति युवकों की सी हरकत करने लगते हैं तो व्यंग्य रूप इसी कहावत को चरितार्थ करते हैं। ४२५।

बेमन का बिआहु रचवन संग भौंरी।

जब कोई व्यक्ति परिस्थितिवश बेमन से कोई काम करता है, जिसे वह करना नहीं चाहता तो ठीक से नहीं करता। बेमन का विवाह चारपाई के पायों या मचवा के साथ भाँवर घूमने के समान है। वह पुरुष जो विवाह नहीं करना चाहता था और उसके साथ किसी लड़की का विवाह कर दिया गया तो वह व्यक्ति उस लड़की के लिए मचवा के समान ही निष्प्राण है। अर्थात बेमन विवाह करना मचवा के साथ विवाह करने के समान ही है। बेमन काम करना न करने के समान है। ४२६।

बैठे ते बेगार भली।

यह कहावत बड़ी ही सारगर्भित है। निठल्ले या सत्तारे या बेकार बैठने से बेगार का काम करना भी अच्छा है। काम न करने से मनुष्य आलसी हो जाता है। और आलसी आदमी बिलकुल निकम्मा होता है। काम न करने से आलस्य की आदत पड़ जाती है जो बहुत घातक होता है। काम करते रहने से काम करने की आदत बनी रहती है। अतः बेगार या बेकार का काम करने से भी लाभ है क्योंकि जब अच्छा, फायदे का काम मिलेगा तो उसे वह बड़ी रुचि से करेगा। काम करने की आदत डालने की सीख इसमें है। ४२७।

बैल चौंकना टुटही नाव ।
ई कौनेउ दिन देहैं दाँव ॥

चौंकने वाला बैल और टूटी हुई नाव किसी न किसी दिन जरूर धोखा देंगे । अतः सावधान रहना चाहिए या स्थिति में सुधार लाने की कोशिश करनी चाहिए । चौंकने वाले बैल से छुटकारा पा लेना चाहिए और टूटी नाव को ठीक कर लेना चाहिए या नई नाव लेनी चाहिए । ४२८ ।

बैलन कूदा, कूदी गोनि ।
यह तमासा देखै कौन ॥

सफेद झूठ बोलने का असफल प्रयत्न । बैल का कूदना और बोरे का कूदना या गिरना एक प्रकार का नहीं हो सकता । अन्धा व्यक्ति भी केवल ध्वनि या धमाके से समझ जायेगा । पर उसे समझाने के लिए झूठ बोला जाये । जिसके समक्ष यह झूठ बोला गया हो वह समझता हो कि यह झूठ है तो वह कहता है कि मुझे मत समझाओ की बोरा गिरा है मैं जानता हूँ बैल कूद गया है । यह झूठ किसी और को समझाना । ४२९ ।

बोली लोखरि फूली काँस ।
अब नाहिन बरखा कै आस ॥

लोमड़ी बोलने लग गयी हो और काँस फूलने लग गया हो तो समझ लेना चाहिए कि अब वर्षा की आशा नहीं है । लोमड़ी सर्दी के लिए बिल खोदने की तैयारी में शोरगुल मचाने लगती हैं और काँस वर्षा ऋतु होने के बाद फूलता है । अस्तु, यदि ये दोनों लक्षण उपस्थित हो जायें तो समझना चाहिए कि वर्षा का समय बीत चुका है । और अब वर्षा नहीं होगी । ४३० ।

ब्याहे न लाई पोति, गौने लाई जग जोति ।

यह भी एक घरेलू कहावत है और प्रायः बड़ी बूढ़ियों के मुँह से सुनी जाती है । यह सभी को अपेक्षा होती है कि जब बहू ब्याह कर आयेगी तो अनेक प्रकार के आभूषण और वस्त्रादि लायेगी । उस समय सभी गाँव की औरतें देखने आती हैं । उस समय तो एक पोत का दाना भी लेकर नहीं आयी तो औरतों को समझाया गया कि गौने में लायेगी । तो स्त्रियां कहती हैं जब विवाह में कुछ नहीं लायी तो गौने में क्या लायेगी । अवसर पर किसी बात के न होने पर यह कहावत चरितार्थ होती है । ४३१ ।

भरी जवानी माझा ढीला ।

जवानी में जबर शरीर शिथिल हो गया तो आगे भगवान ही पार लगाये । किसी ढीले ढाले कमजोर युवक पर तरस खाते हुए लोग इस कहावत का प्रयोग करते हैं । युवावस्था और शिथिलता ये दो विरोधी स्थितियाँ हैं, जो किसी को पसन्द नहीं । ४३२ ।

भरी नाव मां सूप्पू भारी ।

सूप बहुत हलकी चीज है जो नाव के बोझ को नहीं बढ़ायेगा पर नाविक उसे नाव में रखने के लिए तैयार नहा । अपने को कहीं स्वीकृत कराने की अपील है । तमाम लोग किसी जलसे में शामिल हैं परन्तु एक साधारण व्यक्ति को उसमें शामिल होने का अवसर नहीं दिया जाता । ऐसी स्थिति में कहा जा सकता है कि क्या भरी नाव में सूप ही भारी है । सभी शामिल हैं, उसको भी शामिल हो जाने दिया जाये । ४३३ ।

भले मारि दीन्हयो रोअसिहो रहैं ।

रोआसे आदमी को कोई बहाना चाहिए कि वह रोने लगे । किसी का मार देना उसके रोने का कारण बन जाता है, वस्तुतः वह बिना मार के भी रोने वाला था ! उसे इस मार से रोने का अच्छा बहाना मिल गया । जब कोई व्यक्ति कुछ करने के लिए पहले से ही तैयार होता है और उसके अनुकूल कोई कारण उत्पन्न हो जाता है तो वह उस कारण के बहाने स्वतंत्र होकर वह काम करने लगता है। परन्तु उसके इरादे छिपते नहीं और चतुर लोग भांप लेते हैं कि असली कारण क्या है । ४३४ ।

भाँड़न साथै खेती कीन गाय बजाय उनहिन लीन ।

भाँड़ों के साथ खेती करना सब कुछ खो देने के समान है । भाँड़ों का पेशा ही नाच गान एवं मनोरंजन करना है । उनके साथ खेती करने पर अकेले सारा काम करना पड़ेगा और वे नाच गाकर तुम्हारा मनोरंजन करेंगे जिसके पारिश्रमिक के रूप में वे खेत की सारी पैदावार ले लेंगे । अतः खेती का परिश्रम तुम्हारा और फायदा उनका । ऐसे व्यक्तियों के साथ साझे का काम नहीं करना चाहिए । ४३५ ।

भागे भूत कै लँगोटिही सही ।

जिससे कुछ पावना होता है पर मिलना असंभव होता हो तो जो कुछ मिल जाये उसी को बहुत समझना चाहिए । मान लीजिए कि किसी व्यक्ति ने कर्ज लिया है पर देता नहीं । बहुत पीछे पड़ने पर वह भाग जाता है या अन्यत्र कहीं चला जाता है पर कुछ चीजें छोड़ जाता है । उन्हीं को लेकर कर्ज देने वाला सन्तोष कर लेता है । चलो भागे भूत की लँगोटी ही सही । ४३६ ।

भूख भली कि पुतहू का जूठ ?

यह प्रश्न है, जिसमें संकेत भी छिपा हुआ है । भूखे रहना ठीक है या पुत्र-बधू का जूठा खा कर भूख मिटा लेना ठीक है । उचित तो यही है कि भूख बर्दाश्त की जाये और जूठे अन्न न खाने की मर्यादा का निर्वाह किया जाये पर यह व्यावहारिक सलाह नहीं है । मर्यादा के निर्वाह में खतरा है अतः ऐसी स्थिति में मर्यादा के प्रश्न को भूलकर जीवन निर्वाह का यत्न करना चाहिए । यही व्यावहारिक संकेत इस प्रश्न वाचक कहावत में छिपा हुआ है । आपद् धर्म भिन्न होता है । ४३७ ।

भूखे बेर अघाने गाँड़ा ।
ता ऊपर मूरी का डाँड़ा ।।

भोजन संबंधी कुछ स्थूल नियम है । भूखे या खाली पेट बेर खाने चाहिए । पेट भरा हुआ होने पर गन्ना चूसना चाहिए और उसके ऊपर मूली खानी चाहिए । अर्थात् मूली और गन्ना खाली पेट खाने से पेट में गड़बड़ी करते हैं, पर बेर खाली पेट खाये जा सकते हैं । ४३८ ।

भूतन घर बहुरिया नहीं टिस्टतीं ।

अर्थात् दुष्ट प्रवृत्ति के लोगों के यहाँ अच्छी चीजें नहीं टिकतीं । दूसरा अर्थ यह भी हो सकता है कि जिस घर में कोई न हो या कोई मर्द न हो तो बहुएँ नहीं टिकतीं । बहुओं के टिकने के लिए अनुकूल वातावरण आवश्यक है । अस्तु, जब वातावरण की प्रतिकूलता के कारण कोई अच्छा आदमी छोड़ कर चला जाता है तो इस कहावत का प्रयोग होता है । ४३९ ।

भेदिहा सेवकु सुन्दर नारि।
जीरन पट कुराज दुख चारि॥

घर का भेद देने वाला नौकर, सुन्दर औरत, फटे कपड़े तथा कुराज्य, ये चार महान दुख के कारण हैं।४४०।

भेंड़िन नाल बंधावा।

भेंड के पैरों में नाल नहीं लगायी जा सकती है, पर घोड़े की तरह दौड़ने वाली बनने का दिखावा करने के लिए देखा देखी भेड़ ने भी अपने पैरों में नाल लगवायी। यह व्यंग्य है। ऐसे व्यक्ति जो देखा देखी कुछ बड़े काम करने की असफल चेष्टा करते हैं, इस कहावत को चरितार्थ करते हैं।४४१।

भै गति साँप-छछूंदर केरी।

दुविधा में पड़ जाने की स्थिति में इस कहावत का प्रयोग होता है। मानव जीवन में अनेक ऐसी धर्म संकट की स्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं कि समझ में नहीं आता कि क्या किया जाये। साँप चूहे के धोखे में छछूंदर निगल जाता है, पर उसकी गन्ध उसे बर्दाश्त नहीं होती परन्तु न तो अब वह उगल सकता है और न हजम ही कर सकता है। दोनों संभावनाएँ लगभग समाप्त हो गयी हैं। ऐसी विकट स्थिति में इस कहावत का प्रयोग होता है।४४२।

भैंसा-बरध कै खेती करै, करजा काढ़ि कै खाय।
बैला खैंचे यह कैती का, भैंसा अन्ते लै जाय॥

घाघ की बुद्धिमत्ता का यह नमूना है। भैंसा और बैल की जोड़ी बनाकर खेती करने वाला, कर्ज लेकर जीवन निर्वाह करने वाला अपने जीवन में सन्तुष्ट नहीं हो सकता। बैल अपनी ओर खींचता है और भैंसा अपनी ओर। साहूकार कर्जदार को अपनी ओर खींचता है। इस तनावपूर्ण स्थिति में उसे कभी शान्ति नहीं मिल सकती।४४३।

भैंसि के आगे बीन बाजे भैंसि खड़ी पगुराय।

बहुत ही लोक प्रिय कहावत है। भैंस के सामने बीन बजायी जा रही है, पर वह निर्लिप्त खड़ी पागुर कर रही है। अन्योक्ति के रूप में इसी स्थिति को मानव जीवन पर घटाया गया है। व्यंग्य रूप में यह ऐसे व्यक्ति पर लागू होती है

जिसमें कला के प्रति कोई अभिरुचि नहीं होती तथा किसी प्रकार का बौद्धिक परिष्कार नहीं होता; और किसी सुन्दर वस्तु को सराहना नहीं कर सकता। ऐसा व्यक्ति भैंस के समान ही है जो बीन के माधुर्य से असम्प्रक्त है। ४४४।

(य)

मंगर बुध उत्तर दिसि कालू ;
सोम सनीचर पूरुब न चालू ;
जो बेपर्फ का दक्खिन जाय ,
बिना गुनाहै पनहीं खाय ॥

यात्रा शकुन की कहावत है। मंगलवार और बुधवार को उत्तर की ओर नहीं जाना चाहिए। सोमवार तथा शनिवार को पूर्व दिशा की ओर नहीं जाना चाहिए। और जो गुरुवार के दिन दक्षिण दिशा की ओर जाता है, वह निरपराधी होने पर भी दण्ड पाता है अर्थात् कष्ट पाता है। ये सामान्य विश्वास की बातें हैं, जिसमें तर्क का कोई प्रश्न नहीं उठता। ४४५।

मघा के बरसे, माता के परसे।

धरती तभी तुष्ट होती है जब मघा नक्षत्र में मेघ की झड़ी लगती है और बालक तभी तृप्त होते हैं जब माँ प्यार से उन्हें परोस कर खिलाती है। हमारे क्षेत्र में मघा नक्षत्र में माँ विशेष रूप से सभी बच्चों को आमंत्रित करती है और अनेक प्रकार के स्वादिष्ट पदार्थ बना कर तथा मँगा कर खिलाती है। ४४६।

मघा भुम्मि अघा।

वही बात है। मघा नक्षत्र की वर्षा से भूमि अघाती अथवा तृप्त होती है। बात यह है कि जब साधारणतः जोर की वर्षा होती है तो पानी बह जाता है। धरती सोख नहीं पाती। मघा नक्षत्र में पानी धीरे-धीरे बरसता रहता है, जो बह कर निकल नहीं जाता, बल्कि उसे धरती सोख लेती है। मघा में फुहारों की झड़ी कई दिनों तक लग जाती है। ४४७।

बइये माँ मैं, कितौ मोर नन्दोय।

मण्डप के नीचे या तो मैं ही आकर्षक या महत्वपूर्ण हूँ या मेरा नन्दोई जो

मेरी ननद को ब्याह कर ले जायेगा। विवाह के अवसर पर सँरहज का विशेष महत्व होता है। श्री वर जी से मज़ाक करने तथा उनके साथ जाने तक की इच्छा लेकर सरहज उस पर हर तरह से हावी होना चाहती है। मण्डप में कलेवे के समय सरहज की महत्ता को कभी भी देखा जा सकता है। उसी निरीक्षण के आधार पर किसी व्यक्ति पर व्यंग्य किया गया है जब वह आवश्यकता से अधिक महत्व-पूर्ण बनने या दिखाने की कोशिश करता है। ४४८।

मन चंगा तौ कठौती माँ गंगा।

मन साफ हो, पवित्र हो तो कठौती में रखा हुआ साधारण पानी भी गंगाजल के समान निर्मल हो सकता है। मन की शुद्धता एवं पवित्रता पर बल देते हुए गंगा की पवित्रता से उसकी तुलना की गयी है। मनुष्य गंगा नहाने, पूजा पाठ करने तथा अन्य धार्मिक और चारिकताओं के करते हुए भी मन से अपवित्र एवं दुष्ट भावनाओं वाला हो सकता है। उसका गंगा स्नान व्यर्थ है और यदि मन पवित्र है तो गंगा स्नान की आवश्यकता नहीं। अस्तु, मन की पवित्रता ही मुख्य है। ४४९।

मरी बछिया बाह्मन के नाम।

हिन्दू कर्मकाण्ड में गौदान महत्वपूर्ण माना गया है। अनेक अवसरों पर गौदान की व्यवस्था है। परन्तु परम्परा पालन के अन्तर्गत उसको मूल प्रेरणा समाप्त हो गयी है। अस्तु, किसी साधारण सी कमजोर बछिया या गाय का दान करके धर्म परम्परा का पालन कर लेते हैं। कर्मकाण्ड में तो अब सवा रुपये में गौदान हो जाता है। धर्म के नाम पर यह झूठ चल रहा है। तो ब्राह्मण को दान में मरि-यल गाय ही मिलेगी। अतः जब कभी कोई व्यक्ति किसी से कोई दान पाता है, परन्तु वह अच्छा नहीं होता तो वह इसी कहावत का उपयोग करता है। ४५०।

मरे पूत के बड़ी-बड़ी आँखीं।

बीत गयी स्थिति हमेशा बड़ी महत्वपूर्ण प्रतीत होती है। यह स्वाभाविक है। बेटे के मर जाने के उपरान्त जो शेष रहता है वह है स्नेहपूर्ण स्मृति जिसमें उसकी विशेषताएँ ही उभरती हैं। पर प्रायः ऐसे मौकों पर लोग बहुत अधिक बढ़ा चढ़ा कर बातें करते हैं जो यथार्थवादियों को नहीं रुचता और वे इन शब्दों में कटाक्ष करने से नहीं चूकते। अर्थात बीती हुई चीज की बड़ी बातों पर यह कटाक्ष गहरा आघात करता है। ४५१।

मरैं न माचा छोड़ैं ।

न मरता है और न खाट खाली करता है । जब लोग किसी से ऊब जाते हैं और उससे छुटकारा पाना असंभव-सा पाते हैं तो उस समय क्रोध में गाली के समान ऐसे अभद्र शब्द उनके मुँह से निकल जाते हैं । कोई व्यक्ति वृद्ध है, वर्षों से खाट में पड़ा रहता है और न मरता है, तो सेवा करने वालों की ऊब इन शब्दों में व्यक्त हो जाता है । बहुत कठोर मन के भाव हैं । ४५२ ।

महा के घर कहाँ, जहाँ देखौ तहाँ ।

जो व्यक्ति सर्वत्र पहुँच जाता है और किसी प्रकार की अड़चन का अनुभव नहीं कहता, जिसे किसी प्रकार का संकोच नहीं होता, ऐसे व्यक्ति के बारे में यह कहावत ठीक लागू होती है । इस कहावत को पूरी तरह चरितार्थ करने वाले नारद मुनि हैं जो सर्वत्र पहुँचे रहते हैं । ४५३ ।

माँगि न आवै भीख ।
तौ सुरती खाये सीख ॥

जिसे भीख माँगना न आता हो वह तम्बाकू खाना शुरू कर दे, भीख माँगना भी सीख जायेगा । तम्बाकू की लत पड़ जाने पर उसका छोड़ना असंभव है । अगर तम्बाकू पास में नहीं है तो वह बिना हिचक के माँग कर खा लेगा और इस तरह माँगना सीख जायेगा । ऐसे अनेक अवसर आते हैं जब तम्बाकू चुक जाती है, तब माँगने के सिवाय कोई चारा नहीं होता । यह एक व्यंग्य है तम्बाकू खाने वालों के सम्बन्ध में । ४५४ ।

माँगे बनिया गुरु ना देय ।
घूँसा मारे भेली देय ॥

बनिया कंजूस माना जाता है और उसके लिए यह स्वाभाविक ही है कि वह माँगने पर चीज न दे । अगर वह दान करता रहेगा तो व्यापार क्या करेगा ? अतः माँगने पर बनिया गुड़ नहीं देता । पर उसे धमकाओ या मारो तो वह बहुत-सा, भेली भर गुड़ दे देता है । इस उक्ति से बनियों के सम्बन्ध में दो बातें लक्षित होती हैं—एक तो यह कि वह कंजूस होता है और दूसरी बात यह है कि वह डरपोक होता है । इसी बात को किसी के ऊपर भी लागू करते हुए यह संकेतिक किया जाता है कि कुछ चाहते हो तो बल-प्रयोग करो मिल जायेगी ऐसे नहीं । ४५५ ।

माघ मास जो पड़ै न सीत।
महँग नाजु जान्यों मोरे मीत॥

माघ के महीने में यदि सर्दी न हुई तो यह समझना चाहिए कि अनाज महँगा होगा। ४५६।

माघ सकारे, जेठ दुपहरे, भादौं आधी रात।
इन समया माँ झाड़ा लागै, मानौं छाती फाट॥

माघ के महीने में प्रातः काल, जेठ के महीने में दोपहर में, भादों की काली बरसाती रात में यदि टट्टी लगी तो मुसीबत ही है। माघ महीने में सुबह बहुत सर्दी होती है, जेठ की दोपहर में कड़ी धूप होती है और भादों की रात में जब पानी बरसता हो, पानी सर्वत्र भरा हो, साँप बिच्छुओं का डर हो उस समय टट्टी के लिए बाहर जाना पड़ा तो बहुत कष्ट होता है। शहरों में ऐसी कोई समस्या नहीं होती क्योंकि पाखना घरों में होते हैं। ४५७।

माघै पूस बहै पुरवाई।
तौ सरसों का माँहू खाई॥

पूस और माघ महीने में यदि पूर्वा हवा चली तो सरसों में माँहू (एक प्रकार कीड़ा) लग जायेगा और सरसों नष्ट हो जायेगा। पुर्वा हवा बहुत ही निकम्मी होती है। इसमें नमी होती है और वह न केवल फसल को ही चौपट करती है, बल्कि मनुष्य के स्वास्थ्य पर भी बुरा असर करती है। कामसूत्र के अनुसार पुर्वा हवा में गर्भाधान का निषेध है। ४५८।

माटी की भवानी टीका टीका माँ बिलानी।

मिट्टी की बनी देवी की प्रतिमा, पूजा करते करते, टीका लगाते लगाते समाप्त हो गयी। किसी उपयोगी वस्तु के टिकाऊ न होने पर यह कहावत कही जाती है। ४५९।

माटी की भवानी पीना कै नौवेद।

जैसी देवी वैसी ही पूजा। मिट्टी की भवानी हैं तो नैवेद्य भी पीना की है। (पीना चावल के आटे के हलके मीठे लड्डू। पीना को पिन्नी भी कहते हैं। पिन्नी के बारे में प्रचलित है—"पिन्नी किम पकवानम्")। अर्थात जैसा व्यक्ति

होता है वैसा ही उसका मान-सम्मान होता है। कोई व्यक्ति जब अपने बारे में बहुत शिकायत करता रहता है कि मुझे उचित सम्मान नहीं मिला तो चतुर लोग कहते हैं कि माटी की भवानी पीना को नौवेद। दूसरी खड़ी बोली की कहावत है—मुँह देख कर थप्पड़ मारना। इससे अधिक भी व्यंग्यार्थ हो सकता है। मिट्टी की देवी के लिए पीना की नैवेद्य ? अर्थात किसी साधारण चीज की नैवेद्य होनी चाहिए। ४६०।

माय न जानै मायकु लरिका पूछै ननिहाउ।

जितना अधिकार औरत का अपने मायके पर होता है उतना और किसी का नहीं। परन्तु माँ को तो उसके माय के में कोई पूछता नहीं, पर बेटा ननिहाल की चिन्ता में है। अर्थात् जहाँ जिनका स्वाभाविक रूप से घनिष्ठ सम्बन्ध हो वहाँ उसकी पूछ न हो कदर ने हो—और दूसरा व्यक्ति जिसका इतना घनिष्ठ सम्बन्ध न हो, वह उस सम्बन्ध के लिए अधिक उत्सुक हो तो इस कहावत का प्रयोग करते हैं। माँ को तो मायके वालों ने कभी पूछा नहीं और बेटा ननिहाल ननिहाल चिल्ला रहा है। ४६१।

मारा चोरु उपासा पाहुन फिर नहीं लौटत।

मार खाया हुआ चोर और भूखा मेहमान कभी वापिस नहीं आता। चोट की वजह से रहस्य के खुलने के डर से या हिम्मत हार जाने के कारण चोर फिर उसी जगह कभी नहीं जाता। मेहमान किसी के यहाँ यदि भूखा रह गया तो फिर दोबारा वह अपना अपमान कराने और भूख से मरने नहीं आयेगा। यह एक प्रकार का नीति वाक्य है। ४६२।

भिभुकुरिन के सखरम।

मेंढकी को भी जुकाम होने लगा। मेंढकी तो हमेशा जल में रहती है। सर्दी और पानी ही उसका जीवन है और यदि उसे भी जुकाम होने लगे तो हद है। अस्तु, यदि कोई व्यक्ति कठिन परिस्थितियों, गरीबो और मुसीबतों का आदी हो, और वह उन मुसीबतों की शिकायत करता हो, और अपने को परेशान बतलाता हो, तो लोग कहते हैं कि "मेंढकीरी जुकाम पैदाशुद।" अर्थात् मेंढकी को भी जुकाम हो गया जो हमेशा पानी में ही रहती है। ४६३।

भिखुकुरी मदारन चलीं।

जब कोई साधारण व्यक्ति कोई असाधारण काम करने के प्रस्ताव और प्रयत्न करता है, तो कुछ सुविधा सम्पन्न व्यक्तियों को उसके उत्थान के प्रयत्न अच्छे नहीं लगते तब व्यंग्य में वे कहते हैं कि भेंढकी भी मदार पर चढ़ने चली है। अपने को सबके बराबर बनाने के प्रयत्न में निम्न वर्ग के लोगों पर यह आक्षेप प्रायः किया जाता है। ४६४।

मीठ और भरि कठौता।

एक तो मीठा और वह भी कठौता भर कर असंभव है। गुण और मात्रा दोनों का लाभ एक साथ दुर्लभ-सा ही होता है। कोई चीज अच्छी हो और मात्रा में भी अधिक हो ऐसा कदाचित ही होता है। ४६५।

मुंह देखि के थप्पड़ मारब।

अर्थात व्यक्ति को पहचान कर और अपने सम्बन्धों के अनुसार काम करना। मान लीजिए सत्यनारायण की कथा हुई है। सबको बताशे बाँटे जा रहे हैं। सबको बराबर ही बताशे देने चाहिए, परन्तु यदि बाँटने वाला अपने मित्रों को अधिक और दूसरों को कम दे तो आक्षेप रूप में इसी कहावत के द्वारा अपने कार्य की निन्दा सुनेगा। ४६६।

मुंह देखै का ब्यौहार।

जब तक व्यक्ति सामने हैं तब तक तो मीठी मीठी बातें और जाते ही उसको भूल जाना और फिर उसका आवश्यक कार्य भी न करना। ऐसे मुँह देखे या मुंह देखी प्रीति करने वाले "तोता चश्म" आदमी बहुत होते हैं। इतना ही नहीं इससे बढ़ कर होते हैं। मुंह पर तो प्रशंसा करते हैं पर पीठ पीछे निन्दा। ४६७।

मुंह माँ राम बगल माँ छूरी।

आचरण तो ऐसा करते हैं मानो बड़े भक्त हों पर निरन्तर कपट व्यवहार में तल्लीन रहते हैं। मुंह से तो राम राम का जाप करते रहते हैं जिससे यह प्रमाण पड़ता है कि आदमी बड़ा धर्म भीरू और सच्चा है; पर वास्तविक रूप में वह कपटी और धोखे बाज है। ४६८।

मुए चाम से चाम कटावै, भुंई सकरी मां सोवैं।
घाघ कहैं ई तीन्यू भकुआ उढरि जाय औ रोवैं॥

घाघ की यह उक्ति बहुत ही विख्यात है। मरे हुए चमड़े से अपनी चमड़ी कटवाना—अर्थात जूते पहन कर पैरों को कष्ट देना (जूते काटते हैं) जमीन में सोने पर भी तंग या सकरी जगह में सोना, और उढ़री के चले जाने पर रोना यह बेवकूफी है। व्याहता जाये तो रोना ठीक भी है पर उढ़री तो जैसे आयी थी वैसे ही जा भी सकती है। ४६८।

मूँड़ (झाँटन) के मुँड़ाये मुर्दा नहीं हलुकात।

शरीर की तुलना में बालों का बोझ कुछ नहीं होता। इसलिए सिर के बालों या गुप्तांग के पास के बालों के बना डालने से मुर्दा का बोझ कम नहीं होगा। जिस समय कोई व्यक्ति किसी समस्या के सुलझाने के लिए कोई ऐसा सुझाव पेश करता है जिससे समस्या का समाधान नहीं होता, तो इसी कहावत का प्रयोग करते हैं। अर्थात् ऊपरी समाधानों से कोई लाभ नहीं। ४७०।

मूँड़ मुड़ाये दुई नफा।
गरदन मोटी सिर सफा॥

सिर के बाल बनवाये रखने से दो लाभ होते हैं : एक तो गरदन मोटी होती है और दूसरे सिर साफ रहता है। बाल रखाना पिछली पीढ़ी तक, विशेष रूप से ग्रामों में, अच्छा नहीं समझा जाता था। पर अब तो सभी बाप और बेटे बाल रखाये हुए मिलते हैं। अब अंग्रेजी कट बालों को समाज में स्वीकार कर लिया गया है। ४७१।

मूँड़ मुँड़ौते पाथर परे।

सिर मुँड़ाते ही ओले गिरे। बाल सिर की कुछ रक्षा कर सकते थे। परन्तु ओले उस समय गिरे जब सिर के बाल साफ कर दिये गये थे। उस समय किसी कठिन स्थिति का उत्पन्न होना जब उसका प्रभाव सबसे अधिक भयानक हो सकता है। किसी कार्य के प्रारम्भ में ऐसी कठिन स्थिति का पैदा होना सबसे अधिक घातक होना है। फसल के काटते ही मानो वर्षा शुरू हो जाये तो अनाज सड़ जायेगा और ओसाना और माँड़ना असंभव हो जायेगा। ऐसी स्थिति में यही कहा जायेगा मूँड़ मुँड़ौते पाथर परे। ४७२।

मूँड़ मुँड़ावै औ छूरते डेराय ।

सिर के बाल उस्तरे से साफ कराये तो उस्तरे के लगने से डरे; और जो सिर मुँड़ाना ही नहीं है तो उस्तरे से क्यों डरना । जहाँ जिस आघात या तकलीफ की संभावना ही नहीं है तो डरने की भी जरूरत नहीं है । अर्थात् ऐसा कोई काम न करना जिससे किसी दुःखद स्थिति के प्रकट होने की संभावना हो, तो इस कहावत का उपयोग किया जा सकता है । ४७३ ।

मैदै गोहूँ, ढेलै चना ।

जो खेत अच्छी तरह जोता-पहटाया गया है और जिसकी मिट्टी मैदा की भाँति बारीक होकर एक-सा हो गयी है, उस खेत में गेहूँ अच्छा पैदा होगा । अतः गेहूँ के लिए खेत को अच्छी तरह बनाना चाहिए । परन्तु चना ढेले वाले खेतों में खूब होता है । अतः चना पैदा करने के लिए अधिक परेशान होने की जरूरत नहीं । चना तो जुँठैल खेत में भी खूब होता है । धान काट कर एक बार जोत कर उसी खेत में चना बो देने से भी खूब उगता है । ४७४ ।

मोर पिया मोरि बातों न पूछै मोर सुहागिनि नाम ।

पति अपनी पत्नी की बात भी नहीं करता और पत्नी है कि अपने पति पर बड़ा गर्व करती रहती है । जब ऐसी एक तरफा स्थिति मानवीय संबन्धों में उत्पन्न हो तो यह कहावत उपयोगी होती है । प्राय. हम बड़े सत्ताधारी एवं अधिकारी व्यक्तियों को अपना मित्र या रिश्तेदार बताते फिरते हैं; परन्तु जिनकी हम चर्चा करते नहीं अघाते वे हमारी चिन्ता भी नहीं करते, कभी-कभी उन्हें हमारा नाम भी याद नहीं होता ऐसे सम्बन्ध के प्रति गर्व करने वालों पर उपर्युक्त कहावत चरितार्थ होती है । ४७५ ।

मोर पेट हाहू-मैं न देहौं काहू ।

मेरा पेट बहुत बड़ा है । मैं किसी को नहीं दूँगा । स्वाभाविक है कि जब किसी व्यक्ति ने अपनी आवश्यकताओं को इतना अधिक बढ़ा लिया है कि वह उसकी पूर्ति नहीं कर पाता तो दूसरों की आवश्यकताओं की क्या पूर्ति करेगा ? ऐसे पेटू, स्वार्थी व्यक्ति पर यह व्यंग्यवाण है । ४७६ ।

(य)

यह मुँह का चटनी।
(बड़ा मुँह चटनी का)

चटनी इस मुँह के लिए नहीं है। जब कोई व्यक्ति किसी वस्तु की अभिलाषा रखता हो, और लोग उसे उसके योग्य नहीं समझते, तो बड़ी निर्ममता के साथ इस कहावत का प्रयोग करते हैं। ४७७।

यह ईसुर कै माया।
कहूँ घाम कहूँ छाया॥

ईश्वर की माया निराली है क्योंकि एक ही समय कहीं धूप है और कहीं छाया है। अनेक रूपी एवं विविधतापूर्ण जगत की इन शब्दों में व्याख्या की गयी है। किसी को सुख और किसी को दुख—यही बहुरंगी दुनिया है। प्रायः सच्चे भले आदमी को दुख उठाने पड़ते हैं और झूठे एवं मक्कार मजे करते हैं। ईश्वर की माया है, जिसके सामने मनुष्य की इच्छा-अनिच्छा का कोई महत्व नहीं। ४७८।

(र)

ररा के आए ररा।
खीस निपोरे परा॥

निर्धन और निर्लज्ज व्यक्ति के यहाँ कोई दूसरा निर्धन और निर्लज्ज व्यक्ति आया पर उसे कोई चिन्ता नहीं। बेशर्म आदमी स्वागत-सत्कार करने की बजाय हँसता हुआ लेटा है। जैसा मेहमान है वैसा ही मेज़बान भी है। ऐसे मेज़बान के घर केवल बेशर्म मेहमान ही जायेंगे। अर्थात् जब दोनों एक ही प्रकार के सामर्थ्यहीन व्यक्ति हों और जिन्हें अपनी असमर्थता के प्रति कोई लज्जा का भाव न हो तब इस कहावत का उपयोग किया जाता है। ४७९।

रसरी आवत-जात ते सिल पै होत निसान।

रस्सी मुलायम होती है और सिल (शिला) कठोर; परन्तु बार-बार के घर्षण से मुलायम रस्सी भी पत्थर में गहरा निशान बना देती है। तात्पर्य यह कि बार-बार के प्रयत्न से कठिन से कठिन कार्य साध्य हो जाते हैं। यह एक बहुत आशावादी एवं प्रेरणोत्पादक दृष्टान्त है। इसके जरिये निराश एवं थके हुए मन को बडा बल मिलता है। ४८०।

रसरी जरि गै मुदा ऐंठनि न गै।

रस्सी जल जाती है पर उसकी ऐंठन बनी रहती है। जब कोई अभिमानी व्यक्ति असफल होने पर भी अपनी स्थिति को न समझते हुए अभिमान करता है, तो समझदार समाज यही कह कर सन्तोष कर लेता है कि रस्सी जल गयी पर ऐंठन न गयी। झूठे अभिमान पर यह कटाक्ष है। ४८१।

रहै का टटिया माँ सपन महलन के।

स्थिति तो निर्धनों की है, परन्तु अकांक्षाएँ एवं अभिलषाएँ बड़ी ऊँची हैं। जब कोई व्यक्ति अपनी वास्तविक स्थिति को भूल कर ऊँचे-ऊँचे सपनों की दुनिया में विचरण करता रहता है, तो यथार्थ वादी समाज इस कहावत के जरिये उसके यथार्थ और कल्पना जगत के अनमिलवर्तन को मिटाने का प्रयत्न करत है। ४८२।

राँड़ का साँड़।

विधवा का हृष्ट-पुष्ट, राह चलते रार करने वाला बेटा। विधवा स्त्री के बेटे के सिवाय और कोई नहीं है। उसके पास जो कुछ धन-सम्पत्ति है वह अपने बेटे को खिलाने-पिलाने में लगा देती है। बेटा भी अपने इस प्रकार के लालन पालन के कारण समाज के प्रति अपने साधारण दायित्वों को भूल जाता है। वह उद्दण्ड हो जाता है। लोगों को छेड़ता और सताता है। उस विधवा औरत का समाज कुछ बिगाड़ नहीं सकता क्योंकि पहले ही सब कुछ बिगड़ चुका है। उसे भी किसी प्रकार की चिन्ता नहीं। ऐसी स्थिति में दायित्वहीन आचरण करने वाले राँड़ के साँड़ की संज्ञा पाते हैं। ४८३।

राँड़ मेहरिया अन्ना भैंसा
जो बिगरै तौ होवै कैसा।

उसी बात को इस कहावत में आगे बढ़ाया गया है। विधवा औरत अगर

बिगड़े तो अर्ना भैंसा की तरह सबके लिए घातक हो सकती है। और जिस प्रकार अर्ना भैंसा को कबू में लाना असंभव है उसी प्रकार विधवा औरत को नियंत्रण में लाना असंभव। उसके जीवन में चरम हताशा आ चुकी है। अतः ऐसे हताश व्यक्तियों को समाज में यदि उचित मान-सम्मान न मिला तो सारा समाज खतरे में पड़ सकता है क्योंकि उन्हें समाज की चिन्ता क्यों सतायेगी। ४८४।

राँड़ मरै न खण्डहर ढहैं।

बड़ी ही भावपूर्ण और गहरे अनुभव की कहावत है। अच्छे महलों और किलों को खण्डहर होने मे देर नहीं लगती पर खण्डहर ज्यों के त्यों बने रहते हैं। जिस प्रकार महल मिट कर खण्डहर बन गये, उसी प्रकार खण्डहर मिट कर समाप्त हो नहीं जाते। खण्डहर बने रहते हैं। सधवा से विधवा हो जाती है, पर विधवा बनी रहती है, वह जल्दी मरती भी नहीं। सधवाएँ मरती चली जाती हैं पर विधवाओं की अवस्था बढ़ती ही जाती है। सामान्यतः यह सत्य है कि विधवाएँ दीर्घजीवी होती हैं। जीवन का सौंदर्य मिट कर कुरूपता में परिणत हो जाता है परन्तु यह कुरूपता नहीं मिटती। सौंदर्य मिट कर कुरूपता के रूप संचित एवं अमर-सा हो जाता है। ४८५।

राई असि बिटिया भाँटा असि आँखि।

अनुपातहीनता पर आक्षेप करते हुए इस कहावत का उपयोग किया जाता है। जब कोई व्यक्ति अपने सामर्थ्य से कहीं अधिक बड़ा काम उठाने की कोशिश करता है तो यह कहावत चरितार्थ होती है। लड़की तो राई के समान छोटी है परन्तु आँख बैगन के समान बड़ी है। इसी असंभव अनुपात को संभव करने के असफल प्रयत्न में इस कहावत की उपयोगिता सार्थक होती है। ४८६।

राजा ते को कहै ढाँकि लेओ।

राजा के सामने किसका साहस होगा कि कहे तुम नंगे दिखाई दे रहे हो, ढँक लो। कोई साधारण व्यक्ति कोई नग्नता प्रकट करे, कुछ अनुचित करे, तो उसे समझा बुझा कर ठीक मार्ग पर लाया जा सकता है, परन्तु यदि राजा ही ऐसी कोई भूल करे तो उसे कौन समझायेगा। प्रजा के आचरण को सुधारा जा सकता है, पर राजा के दुराचार या आचरणहीनता को कैसे सुधारा जा सकता है। सत्ता सम्पन्न व्यक्ति को शक्तिहीन व्यक्ति उचित मार्ग कैसे दिखा सकता है? ४८७।

राजा रिसाई राज लेई, का मूंड़ लेई।

राजा नाराज होगा तो अपना दिया हुआ अधिकार वापिस ले लेगा, और क्या जान लेगा ? यहाँ इस उक्ति में विद्रोहात्मक भावना के साथ समर्पण की भावना छिपी हुई है। विद्रोह की भावना तो है क्योंकि उसे परवा नहीं कि राजा नाराज हो जायेगा, राजा नाराज होकर अपना दिया अधिकार वापस ले लेगा और क्या करेगा—मार तो नहीं डालेगा ? अर्थात् राज्य से बाहर जाने की भी सामर्थ्य नहीं है, जान बची रहे—उसे अधिकार नहीं चाहिए। असमर्थ व्यक्ति होकर ऐसा उद्‌गार प्रकट करता है। ४८८।

रातिन छोटि कि च्वारै भकुआ।

रात ही छोटी है कि चोर ही मूर्ख है कि सारी रात बीत गयी और अभी तक चोरी नहीं कर पाया ? आशय यह है कि चोर ही मूर्ख है, नहीं तो कितनी भी छोटी रात हो वह कुछ न कुछ तो अपना काम कर ही लेता। यह कथन बड़ी ही चतुराई से व्यक्ति की मूर्खता और अकुशलता पर व्यंग्य करता है। बहुत सुन्दरता से व्यंग्य को प्रस्तुत किया गया है। ४८९।

राह बतावै तौ आगे चलै।

रास्ता बताने वाले को आगे चलना पड़ता है। केवल रास्ता दिखा देने से प्रायः काम नहीं चलता। इसलिए जब कभी किसी को किसी की सहायता करने में अधिक परेशानी उठानी पड़ती है तो वह व्यंग्य में कहता है—ठीक है 'राह बतावै तो आगे चलै' केवल बताना काफी नहीं है। ४९०।

राह माँ हगै ऊपर ते आँखी गुरेरै।

जब अपराधी व्यक्ति अपने अपराध को न स्वीकार करे और दूसरों पर शान भी जमाये तो यह कहावत चरितार्थ होती है। ऐसी ही एक अन्य कहावत है—'उलटा चोरु कोतवाल का डाँटे।' गाँवों में, विशेषरूप से बरसात में जब घास उग आती है, तब ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है। दिशा मैदान के लिए जाने वाला व्यक्ति साफ जगह की खोज में शीघ्रतावश राह या पगडण्डी में ही टट्टी कर देता है; और जब कोई डाँटता है तो वह उसे उलटा आँख दिखाता है और अपनी भूल को नहीं मानता। ४९१।

रोजु कुआँ खोदब रोज पानी पियब ।

अर्थात रोज कमाना और रोज खाना। किसी दिन मेहनत-मजदूरी नहीं की तो पैसे नहीं मिलते और खाना मिलना भी दुर्लभ हो जाता है। अस्तु, जब व्यक्ति ऐसी स्थिति में होता है कि उसके पास जीवन निर्वाह के लिए कोई उचित प्रबंध नहीं होता और रोज कुछ कमा कर जीवन निर्वाह करना पड़ता है तो रोज कुआं खोद कर पानी पीने के समान ही है। इसीलिए प्रत्येक गृहस्थ ऐसी व्यवस्था करता है कि उन दिनों भी उसे कठिनाई न उठानी पड़े। हमेशा तो हर आदमी में इतनी शक्ति नहीं होती कि वह मेहनत ही करता रहे। ४८२।

रोटी खाय घिउ सक्कर ते।
दुनिया ठगै मक्कर ते॥

यह चालाकी की बात है कि दुनिया को छल कपट से ठगो, पैसे कमाओ और ठाठ से घी शक्कर के साथ रोटी खाओ। बहुत हीं अनैतिक एवं असामाजिक सीख है; पर अनुभवों पर आधारित है। दुनिया में यही दिखाई देता है कि जो झूठे, बेईमान एवं धोखेबाज हैं वे चैन से जीवन व्यतीत करते हैं और बेचारे ईमानदार आदमी तकलीफ उठाते हैं। ४८३।

रोटी न कपरा सेंति का भतरा।

न रोटी देना और न कपड़े, पति बने रहना। कोई पत्नी अपने निखट्टू पति से ऊब कर ऐसा कहती है। कहावत रूप में आशय यह कि कर्तव्य तो एक भी न करना परन्तु अधिकारों का उपभोग करना। यदि पति के रूप में स्त्री पर आदमी के कुछ अधिकार हैं तो कुछ कर्तव्य भी हैं। यदि वह अपने कर्तव्यों का पालन नहीं करता और केवल अधिकार ही जताता रहता है, तो वह मुफ्तखोर 'भतार' के समान है। ४८४।

लम्बे घूंघट चप्पे पांय।
घूंघट भीतर बड़े उपाय॥

जो शालीनता का बड़ा प्रदर्शन करता है वह हमेशा सच्चा नहीं होता। उस आडम्बरपूर्ण आचरण के पर्दे में वह काफी दुराचारी भी हो सकता है। अस्तु, जब अच्छा बनने का दिखावा किया जाता है, तो उसके भीतर बुराई पलती रहती है। कंठी माला धारण करने वाले प्रायः बड़े बेईमान होते हैं। कंठी माला उनकी बुराई को ढकने का आवरण मात्र होता है। बड़ा सा लम्बा घूंघट काढ़ने

वाली, बड़े दबे पाँव चलने वाली स्त्री भीतर ही भीतर बड़ी भयंकर भी हो सकती है। अस्तु दिखावा बुराई को छिपाने का प्रयत्न है। ४८५।

लहिलन का चबाब सहनाई का बजाउब।

चना चबाते हुए कोई शहनाई नहीं बजा सकता। चने चबाना वैसे ही कष्ट साध्य कार्य है फिर शहनाई बजाने के समय तो असंभव ही है। दोनों काम ऐसे हैं जो एक साथ नहीं हो सकते। जब कोई व्यक्ति कठिन कार्यों को एक साथ करने का असफल प्रयास करता है तो समझदार व्यक्ति इसी कहावत के ज़रिये उसको इस व्यर्थ के प्रयत्न से रोकने का यत्न करते हैं। मुँह में चने रख कर यदि शहनाई फूंकी जायेगी तो चने शहनाई में घुस जायेंगे। साँस नलिका में एक भी दाने के चले जाने में मृत्यु अवश्यम्भावी हैं। ४८६।

लातन के देव बातन ते नहीं मानत।

बिना मार खाये जो व्यक्ति बात को नहीं समझता उसके बारे में यह कहा जाता है। प्रायः बच्चों के साथ ऐसा होता है कि वे माँ बाप की बात नहीं मानते। उन्हें समझाते समझाते जब माँ-बाप थक जाते हैं, तब उन्हें गुस्सा आ जाता है और बच्चे को धमकाते हैं—'बिना मार के तुम नहीं समझोगे। तुम्हारी पूजा लातों से करनी पड़ेगी।' बच्चा समझे या न समझे पर मार के डर से वह बात को स्वीकार कर लेता है। इसी तरह इस धमकी का प्रयोग वयस्कों के प्रति भी किया जाता है। जमीन्दारों के यहाँ इस कहावत का प्रयोग किसानों के लिए प्रायः होता था। ४८७।

लादि देब, लदाय देब, लादनहारे साथ देब।

"राह बतावै तौ आगे चलै" काली कहावत का विस्तार इस कहावत में दिखाई देता है। एक तो कुछ सामान दो, ऊपर से उसके लादने का प्रबंध करो और लादने वालों को साथ भी भेजो। प्रायः विवाहों में ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है। लड़की वाला बहुत सी चीजें दहेज में देता है। केवल देता ही नहीं, उनके लादने और लड़के वाले के घर तब सुरक्षित रूप से भेजने का प्रबन्ध भी करता है। देना भी इक प्रकार गुनाह हो जाता है। इसी प्रकार जब अच्छा काम करना भी अनेक अन्य कठिनाइयों के कारण कष्टसाध्य हो जाये तो इस कहावत का उपयोग किया जाता है। ४८८।

लाल-पियर जो होय अकास ।
तौ नहीं बरखा कै आस ।।

यदि आसमान लाल-पीला हो जाये तो समझना चाहिए कि अब पानी नहीं बरसेगा । वैसे एक अन्य कहावत में कहा गया है कि "लाल भरैं ताल ।" पता नहीं क्या ठीक है । वर्षा संबंधी अनेक संकेत सार्थक होते हुए भी कभी-कभी गलत साबित हो जाते हैं । ४८८ ।

लाल भरे ताल ।

जब आममान में लाल बादल छाये हों तो समझना चाहिए कि वर्षा खूब होगी और तालाब भर जायेंगे । ५०० ।

लेय घुँघटाही, लागे चिरकुटाही ।

फटे कपड़ों में घूँघट काढ़ने से लाज कैसे बचेगी ? फटी हुई साड़ी से स्त्री के अंगों की लज्जा तो पहले ही उघड़ रही है घूँघट काढ़ने से लाज नहीं बच सकती है । यहाँ पर इस कहावत में ऐसी गरीब स्त्री के लज्जा न ढाँक सकने पर तरस नहीं खाया गया है, बल्कि क्रूर व्यंग्य किया गया है, कि पहनने ओढ़ने के लिए साबुत कपड़े तो हैं नहीं, पर घूँघट काढ़ कर लाजवंती बनने का ढोंग करती है । केवल घूँघट काढ़ने से ही सामाजिक मर्यादा नहीं मिल सकती । गरीबी ऐसे प्रतिष्ठा प्रदर्शन को उघाड़ देती है । ५०१ ।

लोखरीवा का अस बिहान ।

लोमड़ी रात के पहले पहर में बसेरा लेने के पहले बहुत शोर मचाती है । उससे यह कल्पना की गयी है कि वह रोज आने बसेरे के लिए परेशान होती है, और इसलिए ऐलान करती है कि सबेरा होने पर वह अपने बसेरे के लिए घर बना लेगी । रोज ऐसा ही होता है; घर कभी नहीं बनाती । कहावत इस प्रकार झूठे वायदे या ऐलान करने वाले के प्रति व्यंग्य रूप में कही जाती है कि तुम्हारा वायदा तो लोमड़ी की तरह का है, जो रोज शाम को घर बनाने की बात कहती है, पर पूरा कभी नहीं करती । ५०२ ।

(स)

सँकरे माँ समध्यान ।

जहाँ बहुत लोगों ने अपने लड़के ब्याह रखे हों वहाँ सम्बन्ध करना सँकरे में समध्यान करने के समान है । अर्थात जहाँ जगह न हो वहाँ जगह बनाने का कष्टसाध्य प्रयत्न अधिक हितकर नहीं है । एक बेंच पर पहले से ही पाँच आदमी बैठे हैं, और एक अन्य व्यक्ति उसी बेंच पर बैठने की कोशिश कर रहा है—वह सँकरे में समध्यान कर रहा है । रेलगाड़ियों में यात्रा के समय ऐसे बहुत से मौके आते ही रहते हैं । ५०३ ।

सँदेसन खेती नहीं होति ।

खेती तो उसी की ठीक होती है, जो खुद करता है । हुकुम और संदेशों से खेती नहीं होती । खेतों में काम करने वाला तभी ठीक काम करेगा जब कोई निरीक्षक हो । बिना खुद की देख-रेख के नौकरों की लापरवाही से खेतीं बिगड़ जाती है । खेत में कब पानी देना चाहिए, कब निराना चाहिए, कीड़े तो नहीं लग रहे, इत्यादि बातों पर हमेशा ध्यान देना चाहिए तभी खेती अच्छी होती है । ५०४ ।

सकल चुड़ैलन के-मिजाज परिन के ।

जब कोई कुरूप औरत बहुत नखरे करती है, तो अन्य स्त्रियों को बर्दाश्त नहीं होता और वे गाली की तरह इस कहावत का प्रयोग करती हैं । ऐसी कहावतें पीठ पीछे बुराई करने में बड़ी मदद करती हैं और गाँवों में स्त्रियाँ काफी चबाव करती रहती हैं । ५०५ ।

सगी सासु का सासु न कहैं; धोबइन जीजी पैयाँ लागौं ।

सासु-बहू के बिगड़े हुए सम्बन्ध के कारण ऐसा हो जाता है कि नयी बहू को बाहर वालों से अधिक सहानुभूति पाने से उनके साथ अधिक घनिष्ठता हो जाती है । सासु को यह बहुत बुरा लगता है । वह अपनी कमी तो समझती नहीं । बहू बाहर वालों के साथ इतनी ममता क्यों रखती है, इससे वह चिढ़ती हैं । अगर सासु बहू के साथ अच्छा व्यवहार करे तो बहू सासु को सबसे अधिक सम्मान

देगी पर अनेक कारणों से ऐसा नहीं होता, और बहू के लिए धोबिन भी जीजी के समान हो जाती है। घरेलू चित्र उपस्थित करने वाली कहावत है। ५०६।

सत्तारी बुढ़िया खैले घुरिया।

सत्तारी बूढ़ी औरत क्या करे—धूल में बच्चों के समान चित्रकारी करे—यानी धूल से खेले। सामान्यता कम ही बूढी औरतें दिखायी देंगी जो काम में न लगी रहती हों। परन्तु शरीर से शिथिल हो जाने के कारण वे कोई काम नहीं करतीं तो धूली में ही खेलती रहती हैं। आखिर समय व्यतीत करने के लिए कुछ तो चाहिए ही। ५०७।

सबके पांय नउनिया धोवै आपन धोवत लजाय।

छोटे ही बड़ों के पैर धोते हैं। कभी कोई बड़ा छोटे के पैर नहीं धोयेगा। सबके पैर धोकर छोटी बनने पर भी नाउन को लाज नहीं लगती, पर अपने पैर धोने में वह लजाती है मानो वह अपने पैर धोने से छोटी हो जायेगी। अर्थात दूसरों का छोटा काम करने में लाज नहीं लगती परन्तु अपना काम करने में लाज आती है। अपने घर या गाँव में अपनी शान बनाये रखने के लिए बहुत से लोग ऐसे काम नहीं करते जिन्हें शहरों में जाकर दूसरों के लिए करते हैं। बहुत से लोग शहरों में बर्तन चौका करते हैं पर अपने गाँव लौटने पर अपने घर का चौका बर्तन भी नहीं करते। ५०८।

सबै जन दाढ़ी रखा लेहैं तो चूल्हु को फूंकी ?

दाढ़ी रखा लेने पर चूल्हा फूंकने में दाढ़ी के जल जाने का खतरा रहता है। अतः दाढ़ी की हिफाजत के बहाने दाढ़ी वाला रसोई के काम से मुक्त हो जाता है। पर यदि सभी दाढ़ी रखा लेंगे तो चूल्ह कौन फूकेगा ? जीवन में हर तरह की स्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं, जिनका सामना करने के लिए तैयार रहना चाहिए। कुछ ऐसे भी काम होते हैं जो किसी को अच्छे नहीं लगते पर यदि उन्हें कोई न करेगा तो काम कैसे चलेगा। फिर खाने पकाने का काम यदि कोई न करना चाहेगा तो भोजन कैसे मिलेगा ? ५०९।

सब गुन भरी बैदरा सौंठि।

वैद्य की सोंठ सभी गुणों से पूर्ण होती है। जब कोई व्यक्ति सर्वगुण सम्पन्न होने का प्रयत्न करता है तो न होने पर यह व्यंग्य किया जाता है, और इस कहावत

का प्रयोग किया जाता है। बहुत चालाक आदमी की चालाकी पर भी इस कहावत से कभी-कभी व्यंग्य कर दिया जाता है। ५१०।

सब गुरु लीटा होइगा।

गुड़ बनाते समय चासनी ठीक न बनने से कभी-कभी ऐसा होता है कि भेली नहीं बनती और गुड़ बहने लगता है। कभी-कभी सीलन की जगह में रखने की वजह से भी गुड़ लोटा या लपिटा हो जाता है, जिसे बच्चे बहुत पसन्द करते हैं। ऐसी ही एक अन्य कहावत है—"सब गुरु गोबर होइगा।" सारा गुड़ बिगड़ गया। अर्थात् जब लगभग बना-बनाया काम बिगड़ जाये तो इस कहावत का उपयोग किया जाता है। ५११।

सब धान बाईस पसेरी।

अच्छे-बुरे में भेद न करने पर इस कहावत का प्रयोग होता है। अच्छे और बुरे सभी धान एक ही भाव बिकेंगे तो उनके गुण में अन्तर क्या हुआ। यदि अच्छे और बुरे आदमी के साथ समाज एक-सा ही व्यवहार करेगा तो फिर अच्छा बनने की क्या आवश्यकता? व्यक्ति के गुणों का सम्मान होना ही चाहिए और उसकी बुराइयों की कदर्थना भी होनी चाहिए, तभी समाज में अच्छाई बढ़ेगी और बुराई घटेगी। ५१२।

सत्तारा बनिया का करै।
यह कोठी के धान वोहि कोठी धरै॥

बुड्ढी औरत की तरह बनिया भी सत्तारा या निठल्ला बैठा नहीं रह सकता। बिना काम के उसे बहुत कष्ट होता है। अतः सत्तारा होने पर यदि और कोई काम न मिला तो वह एक स्थान से दूसरे स्थान पर चीजों को रखता उठाता रहता है। परन्तु यह बेकार का काम है। अस्तु, जब कोई इसी प्रकार का बेकार का काम करता दिखाई देता है, तो लोग व्यंग्य करते हैं कि सत्तारे बैठे-बैठे क्या करे यही सही। ५१३।

सभा पराई को बैठक मां चहिऐं एक कोखि दुइ भाय।
एकु ते बातें होवन लागैं दूसर लेंचि लेय तरवारि॥

यह आल्हखण्ड से उद्धृत है। दूसरे की सभा में उसी समय उपस्थित होना ठीक है, जब दो सहोदर भ्राता हों। जब तक एक से गर्मी-गर्मा की बातें होने लगें

तब तक दूसरा तलवार खींच ले। दूसरे के राज्य में अकेले नहीं जाना चाहिए, और जो साथी हो वह भी ऐसा हो जैसे सहोदर भाई, जो तुरन्त मरने मारने के लिए तैयार हो। राजपूती शान के समय की बात है। ५१४।

समरथ का नहिं दोस गोसाईं।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने इस कथन में जीवन के घोर सत्य का उद्घाटन किया है। जो व्यक्ति समर्थ एवं शक्तिशाली है, वे कुछ भी करें उन्हें कोई दोषी नहीं ठहरा सकता। आजकल पैसे वाले और सत्ताधारी कुछ भी करें उनका कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता। समर्थ व्यक्ति अपने समस्त दोषों एवं भूलों पर पर्दा डाल सकते हैं। समाज में उनकी बुराई की यदि कोई चर्चा करता भी है, तो दूसरे यही कह कर आगे बढ़ जाते हैं कि वे तो बड़े लोग हैं उनको सब माफ है। ५१५।

सरग ते गिरा खजूर माँ अँटका।

किसी कठिन कार्य में सफलता प्राप्त करते-करते मार्ग में फिर बाधा उपस्थित हो जाये। स्वर्ग से तो चीज चली पर खजूर में अटक गयी। काम बनते बनते रह जाये तो इस कहावत का उपयोग किया जाता है। एक बाधा दूर हुई तो दूसरी आ गई। ५१६।

साँपौ मरि जाय और लाठिउ न टूटै।

कोई भी कार्य हो ऐसी चतुराई से करना चाहिए कि काम भी बन जाये और किसी प्रकार का नुकसान भी न हो। साँप मारने में यदि लाठी टूट गयी तो कोई चतुराई या कुशलता की बात न हुई। ऐसी होशियारी से साँप को मारना चाहिए कि साँप मर भी जाये और लाठी भी न टूटे। बिना किसी प्रकार के नुकसान उठाये कार्य को सम्पादन कर लेने पर उपर्युक्त कहावत चरितार्थ होती है। ५१७।

साँपन की लड़ाई माँ जीभिन का लपलपौआ।

साँप की लड़ाई में और क्या होगा सिवाय जीभ लपलपाने के। बहादुर लोग लड़ते हैं तो लाशें गिर जाती हैं, तलवारें चलती हैं, परन्तु यदि चालाक बेईमान लोग लड़ते हैं तो केवल मुँह से। उनकी केवल जीभ चलती है। जीभ की लड़ाई भी कोई लड़ाई है? वह तो मुँह लड़ाना है—झगड़ा है। तो जब कहीं

लोग मुँह लड़ाने लगते हैं तो कुछ बहादुर लोग कहते हैं; 'अरे कुछ न होगा सब जवानी जमा खर्च है। साँपों की लड़ाई में जीभ लपलपाने के सिवाय और क्या होगा ? ५१८।

साझे कै खेती गदहौ न खाय।

साझे में खेती नहीं करनी चाहिए। उसमें अनेक प्रकार के झगड़े खड़े हो जाते हैं। ऐसी खेती गधे के भी काम की नहीं होती। ५१९।

सारा पजावै खंभरु है।

पजावा-ईटों के पकाने का भट्ठा। सारी ईटें अधिक पक कर अनगढ़ बन गयी हैं। अर्थात् पजावे को सारी ईटें खराब हो गयी हैं। जब अप्रत्याशित रूप से किसी जगह की सभी चीजें अथवा किसी समुदाय अथवा किसी परिवार के सभी लोग बुरे निकलें तो इस कहावत का प्रयोग करते हैं। एक-दो बुरे हों तो कुछ कहा-सुना जाये या कुछ किया जाये परन्तु जब सभी खराब हों तो क्या किया जा सकता है ?। ५२०।

सावन के अँधरे का हरै हरा सूझत है।

सावन में अंधे होने वाले को हमेशा हरा हरा ही दिखाई देता है क्योंकि आँखों ने आखरी दृश्य हरा हरा ही देखा था। वह वैसा ही समझता है। अत्यधिक आशावादी दृष्टिकोण के कारण जब कोई व्यक्ति किसी खराबी को नहीं देख पाता और हमेशा यही समझता है कि सब कुछ बिलकुल ठीक है तो इसी कहावत को चरितार्थ करता है। हमेशा हरा भरा दिखाई दे तो बड़े आनन्द की बात है; परन्तु यथार्थ जीवन में ऐसा नहीं होता। आशावादी होना अच्छा तो है, परन्तु यथार्थ को न देख पाना भी अच्छा नहीं है। ५२१।

सावन घोड़ी भादौं गाय, माघ मास जो भैंसि बिआय।
घाघ कहैं यह पक्की बात, आपु मरै कि मलिकै खात॥

घाघ की कही सगुन संबन्धी कहावत है। सावन में घोड़ी, भादों में गाय और माघ मास में भैंस का बियाना अच्छा नहीं होता। या तो वह स्वयं मर जायेगी या मालिक की मृत्यु का बहाना बनेगी। अतः ऐसी घोड़ी, गाय और भैंस को दान में दे देना चाहिए। परन्तु ये जानवर इतने जरूरी और महँगे होते हैं कि लोग असगुन को जानते हुए भी उन्हें न बेचते हैं और न दान में देते हैं। ५२२।

"ससुरारि सुख कै सारि !"
"जो रहे दिना दुई चारि ।"
"जो रहै एकु पखवारा !"
"तौ हाथ माँ खुरपी बगल माँ खारा ।"

ससुराल सुख की सार है। जीवन की असली एवं पूर्ण सुख ससराल में ही मिलता है। पर शर्त यह है कि दो-चार रोज ही ठहरे; ज्यादा नहीं। जो एक पखवाड़ा (१५ दिन) रहा तो हाथ में खुरपी और बगल में खारा लेकर घास छीलने जाना पड़ेगा। यह वार्तालाप घाघ और उनकी पतोहू के बीच का बताया जाता है। कहीं भी अधिक दिनों तक खातिर नहीं हो सकती। अधिक सम्पर्क से मान घटता है। कोई कहाँ तक दिखावे के लिए सेवा करता रहेगा ?। ५२३।

सासु ते बैरु नग्र से नाता।
ऐसि बहुरिया न देय बिधाता ।।

'सगी सासु का सासु न कहैं, धोबइन जीजी पैयाँ लागौं।" दोनों कहावतें एक ही भाव को व्यक्त करती हैं। सासु ।बहू का अच्छा सम्बन्ध नहीं बन पाता क्योंकि जिस अधिकार से सासु बहू के साथ बर्ताव करती है वह उसे सुखकर नहीं होता। अस्तु, स्वाभाविक ही है कि वह अन्यत्र ऐसे सम्बन्ध खोजे जहाँ उसे कुछ अपनत्व या प्यार मिल सके। सासु के कारण ही उत्पन्न होने वाली यह स्थिति सासु को बहुत बुरी लगती है। इस कहावत में सासु बहू के इसी व्यवहार पर ताना मार रही है। ५२४।

सासो पदनी, नन्दो पदनी, हमरेहे पादे होय बेबादु।

सासु बहू के सम्बन्ध की एक और झाँकी इस कहावत में प्रस्तुत होती है। सासु और बहू के बिगड़े हुए संबन्ध को ननद और भी बिगाड़ देती है। बहू ऐसी स्थितियों पर कह बैठती है कि भूल सासु ननद सभी करती हैं पर कोई नहीं बोलता जब मुझसे कोई भूल हो जाती है तो सभी लोग विवाद करने लगते हैं। पादने के समान ही भूल करना भी मनुष्य के लिए स्वाभाविक है। परन्तु बहू कहती है कि अपनी भूलों पर सासु और ननद कोई ध्यान नहीं देतीं, मेरी भूल पर मुझे तानें देती हैं। ५२५।

सिंहा गरजै, हथिया लरजै।

सिंह नक्षत्र में बादल गरजते हैं और हाथी नक्षत्र में खूब बिजली चमकती

है। अर्थात इन दोनों नक्षत्रों में खूब वर्षा होती है। ये वर्षा ऋतु के नक्षत्र हैं। ५२६।

सिकार की बेरिया कुतिया हगासो।

जिस समय जिसकी जरूरत हो, वह उसी समय गैरहाजिर हो जाये तो यह कहावत बहुत अच्छी साबित होती है। शिकार के समय कुत्ते की सबसे अधिक जरूरत होती है और कुत्ता उसी समय गायब हो जाता है। अक्सर क्रोध में आकर यह कहावत कही जाती है, जिसमें से गाली का-सा प्रभाव उत्पन्न हो जाता है। ५२७।

सियारन के मनाए डग्गरु न मरी।

सियार अमंगल के प्रतीक हैं। ऐसे दुष्टों की इच्छाएँ कभी पूरी नहीं होतीं। डग्गर अर्थात भेड़िया या बाघ, ऐसों के मनाने से नहीं मर सकता। बाघ अपनी शक्ति से जीता है; वह शक्तिशाली है। वह सियारों की बददुआ या इच्छा से नहीं मरेगा। कमजोर आदमी प्रायः अपनी विवशता में शक्तिशाली लोगों को गलियाँ देते रहते हैं या उनकी अहित कामना करते हैं परन्तु शक्तिसम्पन्न व्यक्तियों का उनकी अहित कामना से कुछ नहीं बिगड़ता। ५२८।

सीधी अँगुरी घिउ नहीं निकरत।

सर्दियों में जब घी जम जाता है और सख्त हो जाता है तब घी बड़ी मुश्किल से निकलता है। ऐसी कहावत है कि घी निकालने में भी फाँसें लगती हैं। इस प्रकार जमे हुए घी में सीधी अंगुली नहीं धँसती। अँगुलियाँ टेढ़ी करके बकोट से निकालना पड़ता है। अन्योक्ति रूप में यह कहावत काम की कठिनाई की ओर संकेत करती है और सुझाव पेश करती है कि सीधे या आसानी से यह काम नहीं होगा। इस काम को पूरा करने के लिए कुछ हिकमत लगानी होगी और हो सकता है कि कुछ टेढ़ा या बुरा भी बनना पड़े। किसी उलझे हुए मुश्किल कार्य को पूरा करने के लिए जब कुछ अनुचित उपाय करने की जरूरत महसूस हो तो इस कहावत से संकेत दिया जाता है। ५२९।

सीधे का मुँह कुकुर चाटैं।

सीधे आदमी की कोई भी परवाह नहीं करता, यहाँ तक कि कुत्ता भी उसका मुँह चाटता है। इस विचित्र दुनिया में उसी की कदर होती है जो दबंग होता

है। लोग आतंकित होकर सम्मान करते हैं। इसीलिए तुलसी दास जी ने ठीक ही कहा है कि "बिन भय होत न प्रीति।" लोगों के मन में भय पैदा करो, लोग मानने लगेंगे, और स्नेह एवं सम्मान भी देंगे। सीधे बने रहने पर कोई नहीं पूछता कैसी विचित्र बात है पर कितनी सच। ५३०।

सुखन बीबी पीना नहीं खातीं।

खुशी से कोई पीना नहीं खाता क्योंकि उसका स्वाद अच्छा नहीं होता। परन्तु धार्मिक एवं परम्परागत ऐसी अन्य बाध्यताएं उत्पन्न हो जाती हैं कि विवश होकर खाना पड़ता है। जब कोई व्यक्ति जबरदस्ती बेमन कोई काम करता है, और अन्य व्यक्ति उसकी प्रशंसा में कुछ कहता है तो जानकार व्यक्ति परिस्थिति को स्पष्ट करते हुए उसे बताता है कि वह खुशी से ऐसा नहीं कर रहा है। करने के लिए विवश है। दूसरा अर्थ भी लगभग ऐसा ही है कि व्यक्ति खुशी के काम नहीं करता जब जोर डाला जाता है तो मजबूर होकर करने लगता है। अर्थात दबाव से ही काम होता है, खुशी से नहीं। ५३१।

सुकबार की बादरी, रही सनीचर छाय।
ऐसा बोलै भड्डरी, बिन बरसे न जाय॥

इस कहावत पर लोगों को बहुत विश्वास है। वर्षा के दिनों में तो इस कहावत का प्रयोग अक्सर ही सुनाई देता है। शुक्रवार के दिन की आयी बदली यदि शनिवार को भी छायी रही तो भड्डरी का ऐसा कहना है कि वह बिना बरसे नहीं जायेगी। शुक्रवार और शनिवार के बादल जरूर बरसते हैं। ५३२।

सूत न कपास कोरीवा ते लट्ठम लट्ठा।

निराधार बड़ी-बड़ी बातें करना। न सूत है न कपास, कपड़ा बिनाने के लिए व्यर्थ में कोरी से विवाद किया जा रहा है। कभी-कभी लोग बड़े-बड़े सपनों के महल बनाते रहते हैं, कभी-कभी लोग भविष्य की चिन्ता में बेमतलब परेशान होते रहते हैं, कभी कभी लोग बेमतलब किसी से झगड़ा मोल ले लेते हैं इन सभी स्थितियों में इस कहावत का उपयोग किया जाता है। कोरी से बात करना तभी सार्थक होगा जब सूत हो या कपास हो जिससे कपड़ा बिना जा सके। अब तो बहुत करके यह पेशा ही बन्द हो गया है। ५३३।

सूप का उलारा सूपै माँ न रही ।

बच्चा जब पैदा होता है तब सूप में लिटाया जाता है । धीरे-धीरे वह बढ़ता है और इतना बड़ा हो जाता है कि वह सूप में नहीं लेट सकता । विकास के कारण जो परिवर्तन आ गया है उसकी ओर ध्यान आकृष्ट किया जाता है । कभी-कभी लोग भोलेपन में किसी व्यक्ति को हमेशा एक-सा समझते हैं परन्तु भिन्न रूप में पाकर चकित होते हैं तो वही व्यक्ति या कोई अन्य उसे समझाता है कि भाई सूप का उछाला सूप में ही नहीं रहेगा बाहर जायेगा, बढ़ेगा । ५३४ ।

सूप बोलै तौ बोलै चलनो का बौलै जेहिमाँ बहत्तर छेद ।

यह कहावत बड़ी ही दिलचस्प है । सूप प्रतीक निर्दोषिता का और चलनी प्रतीक है मानवीय भूलों का । जो व्यक्ति निर्दोष है वह अगर दूसरे के दोषों की निन्दा करे तो ठीक है पर यदि स्वयं दोषी है तो दूसरे के दोषों की निन्दा करना उसे शोभा नहीं देता । ऐसी स्थिति में जब कोई दोषी व्यक्ति किसी अन्य को भूलों का बखान करता है तो कोई टोक देता है कि सूप बोले चलनी क्या बोले जिसमें बहत्तर छेद । उसके दोष तो सूप की अपेक्षा छेदों के रूप में प्रकट हैं । सूप में तो एक भी छेद नहीं । ५३५ ।

सेतुआ माँ गड़ुवा करै नहीं जानत ।

जब कोई आदमी बिलकुल भोला या अनजान या निर्दोष बनने का नाटक करता है तो व्यंग्य रूप में यह कहावत सुनता है । आप इतने भोले हैं कि आपको सत्तू में गड़ुवा करना भी नहीं आता । सत्तू में गड़ुवा करके उसमें नमक या शक्कर और पानी डाला जाता है और उसे सान कर खाया जाता है । गड़ुवा करने की बात में थोड़ा सैक्स संबंधी संकेत भी हो सकता है । ५३६ ।

सेर भरे के बाबा सवा सेर क संख ।

जब कोई व्यक्ति अपनी सामर्थ्य से अधिक कार्य करने की कोशिश करता है तो इसी कहावत को चरितार्थ करता है । कभी-कभी लोग बहुत अधिक बोझ उठाने की कोशिश करते हैं । बाबा जो स्वयं तो सेर भर के हैं पर शंख सवा सेर का लादे घूमते हैं । इसका दूसरा व्यंग्यार्थ भी है जो महत्वपूर्ण है । कभी-कभी लोग प्रदर्शन के लिए अथवा अपनी विशिष्टता के लिए अपनी सामर्थ्य से बाहर का दिखावा करते हैं, जो लोगों की समझ में शीघ्र ही आ जाता है ।

अपने साधुत्व का विश्वास दिलाने के लिए बाबा जी बड़ा भारी शंख बाँधे घूमते हैं। ५३७।

सैंया कहैं पदनी, मैं बलि बलि जाओं।

मूर्ख लोग प्रायः यह नहीं समझ पाते कि उनकी बुराई हो रही है या प्रशंसा। कभी-कभी अपनी बुराई को भी वे अपनी प्रशंसा समझ लेते हैं और दुनिया भर को सुनाते फिरते हैं। लोग सुनते हैं और उसकी मूर्खता पर हँसते हैं। पति ने अपनी मूर्खा पत्नी को कुछ व्यंग्य में बुरा कहा, वह समझी कि उसके पति ने उसकी बड़ी बड़ाई की—वह बड़ी खुश हुई। सैंया तो बुराई कर रहा है और बीबी जो खुशी से फूली नहीं समाती। ५३८।

सैंया भये कोतवाल अब डर काहे का।

जब अपने सैंया ही शहर के कोतवाल हों तब डर किस बात का? शहर में कोतवाल का राज्य होता है, फिर उसकी पत्नी के क्या कहने? जब कोई व्यक्ति सत्तारूढ़ दोस्त या रिश्तेदार की शक्ति के बल पर मनमानी करने लगता है तो लोग व्यंग्य से इस कहावत का उपयोग करते हैं। किसी अन्य की शक्ति के आधार पर जब कोई साधारण शक्तिहीन अनाधिकार और अनुचित कार्य करने लगता है, तो लोग व्यंग्य कसे बिना नहीं रहते। ५३९।

सो जीतै जो पहिले मारै :

पहले मारने वाला जीतता है। अँग्रेजी में भी कहावत है—ofence is the best defence। मार के मामलों में पहला हाथ मारने से विपक्षी पर धाक जम जाती है। वह कुछ डर जाता है। और जब बदले में मारने लगता है तब बहुत से लोग एकत्र हो जाते हैं और उसके विपक्ष में जनमत तैयार हो जाता है। अथवा बीच बचाव कर देते हैं और वह बदला नहीं ले पाता। जो मार ले गया सो मार ले गया, जीत गया। फिर दूसरी कहावत भी तो है कि 'मारि कै टरि रहै।' फिर मार ऐसी भी लग सकती है कि व्यक्ति उलट कर मारने लायक ही न रहे। अनुभव जगत की यह बात सर्वथा सच्ची है। ५४०।

सोनु जानै कसे, मनई जानै बसे।

सोने की परीक्षा कसौटी पर कसने से ही होती है और आदमी की परीक्षा उसके साथ या पड़ोस में रहने से। दूर रहते हुए आदमी अच्छा बनने का सफल

प्रदर्शन कर सकता है पर जब नित्य प्रति अच्छाई की परीक्षा होगी तब पता चलेगा। थोड़े समय में दूर दूर रहते हुए कोई व्यक्ति किसी के संबंध में सही राय कायम नहीं कर सकता। अनुभव से ही व्यक्ति को जाना और परखा जा सकता है। ५४१।

सौख बड़ी घरु कोलिया माँ।

शौक तो बड़ी है, पर क्या करें—घर सँकरी गली में है। बेचारे शौकीन बाबू की सारी शौकी उनसे मकान की स्थिति से बिगड़ जाती है। जब कोई व्यक्ति अपनी सुरुचि का बहुत प्रदर्शन करता है और बना-बना घूमता है, तो यथार्थवादी समाज उसके इस प्रदर्शनकारी रूप से प्रभावित नहीं होता बल्कि उसके झूठ का भण्डाफोड़ कर देता है। रहना तो कोलिया (सँकरी गली में) और शान दिखाना ऐसी मानों किसी राजपथ पर अव्यस्थित बँगले में रहते हों। ५४२।

सौखीन बुढ़िया चटाई का लहँगा।

इस कहावत का उपयोग उपर्युक्त कहावत की भाँति ही होता। यहाँ इस कहावत में किसी बुढ़िया की शौक पर व्यंग्य किया गया है। बुड्ढी इतनी शौकीन है कि विशेष दिखने के लिए चटाई का लहँगा पहने हुए है। बुड्ढी शौकीन तो बहुत है पर लहँगा चटाई का बना हुआ है। यह कहावत भी व्यक्ति की प्रदर्शनकारी वृत्ति पर कटाक्ष है। इस कहावत की विशेषता यह है कि इसमें स्त्री का आधार लिया गया है। व्यंग्य और भी मार्मिक हो जाता है जब बुढ़िया की शौकीनी की चर्चा की जाती है। स्त्री बुड्ढी होने पर भी शृंगार प्रिय होती है। ५४३।

(ह)

हंसा रहैं सो मरि गए, कौआ भए दिवान।
जाहु विप्र घर आपने, को काको जजमान॥

हंस विवेक और उदारता का प्रतीक है और कौआ स्वार्थलिप्सा, कुरूपता और चालाकी का प्रतीक है। इसी आधार पर यह दोहा कहा गया है, कि जब तक हंस राज्य के दीवान थे, तब तक सबको यथायोग्य समुचित मान-सम्मान प्राप्त होता था और अब उनकी मृत्यु के उपरान्त कौआ दीवान हुआ है, अतः अब कौन किसका सम्मान करेगा? हे ब्राह्मण देवता अब तुम लौट जाओ। राज्य

या परिवार में परिस्थितियों के बदल जाने से जो प्रतिकूलता उत्पन्न हो जाती है और जिस व्यक्ति के कारण ऐसा है—उस पर यह व्यंग्य है। 'कौआ भये देवान।' ५४४।

हँसिया दूर कि पड़ोसिन कै नाक।

न हँसिया दूर है और न पड़ोसिन की नाक। अगर तुम सच कहते हो और चाहते हो कि मैं तुम्हारी बात का विश्वास कर लूं तो उस हँसिया से पड़ोसिन की नाक काट कर दिखा दो। ऐसा प्रतीत होता है कि स्त्री को अपने पति के आचरण पर विश्वास नहीं है, क्योंकि उसे ऐसा मालूम हुआ है कि उसके पति का पड़ोसिन से अनुचित संबंध है। पति अपनी पत्नी को भरोसा दिलाना चाहता है कि यह गलत है। पर स्त्री इस प्रकार मानने वाली नहीं—जब तक प्रमाण न प्रस्तुत किया जाये। बड़े सच्चे बनते हो तो जाओ पड़ोसिन की नाक काट कर ले आओ। जब झूठा आदमी प्रमाण प्रस्तुत करने में असमर्थ होता है और केवल बातें बनाता है तब……। ५४५।

हग्गा के तीनि काम, हगैं, उठावैं, डारैं जायँ।

हगनेवाले के तीन काम—हगना, उठाना और उसे बाहर फेंकने जाना। फूहड़ व्यक्ति की व्याख्या की गयी है। काम करने का ढंग इतना बुरा है कि पहले तो तमाम गन्दगी पैदा हो जायेगी फिर उसे उठाना और फेंकने जाना पड़ेगा। एक काम करेंगे तो दूसरा काम पैदा कर लेंगे। मान लीजिये तरकारी काटने का काम है—तरकारी काटी, छोलो और छिलके फैला लिये; तो बाद में उन्हें समेटना ही पड़ेगा। शऊरदार व्यक्ति तरकारी काट छील कर एक बर्तन में रखेगा और छिलके किसी दूसरे बर्तन में। गन्दगी नहीं फैली। बेशऊर और फूहड़ लोगों पर यह व्यंग्य है। ५४६।

हन्ना अपनी घात बहेलिया अपनी।

हिरन अपनी घात में है और बधिक अपनी ताक में। जब दो विरोधी व्यक्ति अपनी अपनी घात में लगे हों और होशियारी से एक दूसरे को परास्त कर देना चाहते हों तो इस कहावत का उपयोग किया जाता है। हिरन बचने की कोशिश में है तो बहेलिया मारने की। दोनों बाहोश हैं; अपनी अपनी युक्तियाँ लड़ा रहे हैं। ५४७।

हैथिया पूँछि डोलावै ।
घर बैठे गेहूँ आवै ।।

हाथी नक्षत्र व्यतीत होते होते यदि थोड़ा भी पानी बरसा तो गेहूँ की फसल बहुत अच्छी होगी ।५४८।

हमरे घर ते आगि लाई नाम धरेनि बसंधरू ।

जब कोई व्यक्ति किसी अन्य का ऐहसान नहीं मानना चाहता और उसी के घर से लायी हुई चीज का नाम बदल कर अपना बताना चाहता है, तो देने वाले व्यक्ति का मन उसकी कृतघ्नता से खिन्न हो उठता है । ऐसे ही कृतघ्न व्यक्ति के प्रति यह आक्षेप है । मेरे घर से माँग कर आग ले गयीं और अपने घर पैदा की और जब आग पैदा कर ली तो उसका नाम वसन्धर रख दिया जिससे कोई यह न समझे कि वह दूसरे के घर से माँग कर आयी है । आज भी प्रायः गाँवों में दूसरे के घर से आग माँग कर आग पैदा कर ली जाती है । ५४९ ।

हरहँटी के साथ कपिलौ का नास ।

जंगली गाय के साथ अगर घरेलू अच्छी कपिला गाय आने-जाने लगेगी तो समझना चाहिए कि वह भी जंगली हो जायेगी । संग के प्रभाव को, विशेषरूप से कुसंग के कुभाव को व्यक्त किया गया है । बुरी संगति में पड़कर प्रायः अच्छे लड़के तथा लड़कियाँ भी बुरे हो जाते हैं । हमारे देश में सत्संग पर, इसीलिए, बहुत जोर दिया गया है । ५५० ।

हरु लाग पताल ।
तौ टूटि गा अकाल ।।

अगर खेत को गहरा जोता जायेगा तो पैदावार अच्छी होगी और अकाल की आशंका नहीं रहेगी । ५५१ ।

हरु हरवाहे का ताव, बहुरिऐ कजरै का ताव ।

हल जोतने वाले को हल लेकर खेत में जाने की जल्दी है तो नई बहू को अपने शृंगार का ध्यान है । हलवाहा हल चलायेगा और बहू पीछे पीछे चल कर बीज बोयेगी पर उसका ध्यान तो शृंगार की ओर है । जब दो या अधिक व्यक्तियों को अपनी अपनी बातों का ही ध्यान रहता है और एक दूसरे के

आवश्यकताओं की ओर ध्यान नहीं देते तो इस कहावत का उपयोग किया जाता है। ५५२।

हाथन कै अरसई मुँह माँ मोंछा जायँ।

इस कहावत में आलसी आदमी पर व्यंग्य किया गया है। मुच्छ के बाल प्रायः बड़े होने के कारण मुँह के भीतर चले जाते हैं, तो हाथ से उन्हें हटा दिया जाता है। पर आलसी आदमी इसकी चिन्ता नहीं करता और मुँह में मुच्छ के बालों को जाने देता है। जरा सी बात है और वह अपने लिए ही, पर आलसी आदमी अपने लिए भी हाथों को इतना कष्ट नहीं देना चाहता जब कि पशु भी पूँछ हिला कर अपनी मंखियाँ हाँकते रहते हैं। ५५३।

हाथ कंगन का आरसी का।

जो हाथ में कंगन पहने हुए है उसे दर्पण को क्या जरूरत है—जब चाहा जड़े हुए कंगन के हीरों में (काँच में) मुँह देख लिया। प्रत्यक्ष प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती। प्रमाण देने की निरर्थकता की बात इस कहावत में कही गयी है क्योंकि उसकी सत्यता स्वतः प्रकट है। ५५४।

हाथिन साथ गाँड़ा खायँ।

बड़े लोगों के साथ बराबरी का व्यवहार करना और किसी दिन मुसीबत में पड़ना। हाथी किसी खेत में घुस कर गन्ने खाता है—बेचारा किसान उस हाथी का कुछ नहीं कर सकता। वह डरता है। परन्तु उसी के साथ कोई अन्य छोटा पशु गन्ना खायेगा तो किसान उसको ठिकाने लगा देगा। अन्य व्यक्ति की शक्ति के सहारे कुछ ही समय तक आराम मिल सकता है। अन्ततोगत्वा ऐसे व्यक्ति को कष्ट ही उठाना पड़ेगा। इस कहावत में ऐसी ही चेतावनी है और व्यंग्य भी। ५५५।

हाथी का पेटु पिराय, गदहा दागा जाय।

कमजोर और सीधे व्यक्ति को ही इस दुनिया में तकलीफें उठानी पड़ती हैं। दर्द हाथी के पेट में है जिसका इलाज होना चाहिए। पर इलाज के लिए हाथी को दागने की किसी में हिम्मत नहीं, अतः उसके इलाज के लिए बेचारे गधे को दागा जाता है। बहुत यथार्थ है। बड़े आदमी से सभी डरते हैं अतः उससे कुछ नहीं कह सकते; परन्तु उसकी भूलों के लिए किसी सीधे-सादे व्यक्ति को दण्डित करते हैं। जीवन में प्राय. ऐसा होता रहता है। ५५६।

हित अनहित पसु पच्छिम जाना।

तुलसीदास जी की चौपाई का अंश है। कोई कितना भी मूर्ख या अज्ञानी क्यों न हो अपना हित अनहित सब कोई पहचानता है। पशु पक्षी भी जानते हैं कि कहाँ उनके लिए खतरा है, और कहाँ सुख। अपने हित-अनहित को सभी पहचानते हैं। ५५७।

हियाँ कुम्हड़ बतिया कोऊ नाहीं।

ये लक्ष्मण जी के प्रख्यात वचन हैं जब वे परशुराम से बातें कर रहे हैं। वे परशुराम के फरसों से न डरते हुए, निर्भीक होकर कह रहे हैं कि यहाँ कोई कुम्हड़ा (कासी फल) की बतिया नहीं, कि अँगुराने (अंगुलिनिर्देश मात्र) से मुरझा जाये। ऐसी लोक मान्यता है कि कुम्हड़ा की बतिया की ओर अंगुली नहीं उठानी चाहिए नहीं तो बतिया नहीं बढ़ेगी—कुम्हला जायेगी। इसी लोक मान्यता का तुलसीदास जो ने यहाँ पर सुन्दर उपयोग किया है। ५५८।

हिसकन पादैं भण्ड कै घोड़ी।

भण्ड व्यक्ति—अशुद्ध व्यक्ति। ऐसे व्यक्ति की घोड़ी देखा-देखी या होड़हाड़ी पादती है। किसी को देख कर कोई व्यक्ति पाद नहीं सकता। परन्तु यह आदमी ऐसा है कि नकलबाजी से बाज नहीं आता। पाद नहीं आ रहा फिर भी पाद रहा है। बिना जरूरत जब कोई किसी की देखा देखी करता है, जिससे उसको कोई लाभ नहीं होता तो इस कहावत का उपयोग किया जाता है। इस कहावत में नकलबाजी की निन्दा की गयी है। कभी-कभी कुछ लोग दूसरों की देखा-देखी अपने को बीमार तक बताने लगते हैं जो कि बीमार नहीं होते। ५५९।

हिसकन हिसकन गदही बियानि,
गदही के बच्चा मरि मरि जायँ।

नकलबाजी से कोई चीज किसी तरह हो तो गयी पर उसको सम्हाल कर न रखा जा सका। देखा-देखी मान लो गदही ब्याती पर बच्चे मर मर जाते हैं। इस कहावत में भी नकलबाजी पर कठोर कटाक्ष किया गया है। दूसरे की नकल से कुछ प्रारम्भिक सफलता मिल भी गयी तो क्या अन्त में तो वही होगा जिसकी योग्यता व्यक्ति में होगी। अयोग्य व्यक्ति नकल के सहारे हमेशा सफल नहीं हो सकता। ५६०।

होइहै वहै जो राम रचि राखा ।

तुलसीदास जी की चौपाई का अंश है । उनका राम पर अटल विश्वास था । उनकी इच्छा के विपरीत पत्ता भी नहीं हिलता । वही होगा जो राम ने सोच रखा है या जिसकी योजना प्रभु के मस्तिष्क में है । मनुष्य के सोचने-विचारने से कुछ नहीं होता यदि राम का इच्छा नहीं होती । तुलसीदास जी की इसी मनोवृत्ति का दर्शन हमारे देश में सामान्य रीति से होता है । यही भाग्यवादी मनोवृत्ति है । ५६१ ।

होनहार बिरवान के होत चीकने पात ।

होनहार लोगों के व्यवहार से पहले ही आभास मिलने लगता कि आदमी होनहार होगा । पूत के पाँव पालने में ही दिखाई देने लगते हैं । किसी अच्छे व्यक्ति की अच्छाई पहले से ही प्रकट होने लगती है । ५६२ ।

होम करत हाथ जरति हैं ।

अच्छा काम करने में भी जब मनुष्य को कष्ट उठाने पड़ते हैं तो इस कहावत का उपयोग किया जाता है । जीवन में प्रायः ऐसी स्थितियाँ आती हैं जबकि अच्छे इरादों से अच्छे काम करने वालों को भी अपयश भोगना पड़ता है । अग्नि में आहुति डालने में हाथ कुछ जलते ही हैं अतः कष्टों से घबड़ा कर अच्छा काम करना बन्द नहीं कर देना चाहिए । ५६३ ।

29423